जीवन-सङ्गी

सम्पादक—
शिवदेव उपाध्याय 'सतीश', बी०ए०, बी०एल०

जून, १९४० | वर्ष ८, खण्ड १६ | अङ्क ३, पूर्ण संख्या ९३ | ज्येष्ठ, १९९७

गीत

क्या जाने क्यों कहता हूं मैं—
सुख - दुखमें मेरे साथ रहो !

वह देखो किरणें आज यहां—
आनेमें क्यों सकुचाती हैं।
क्या जाने कैसी द्विधा आज—
आते - आते रुक जाती हैं !!

मेरे पथका यह तम अजेय—
जीवनको ढंकता जाता है।
मैं ज्यों ज्यों कदम बढ़ाता हूं—
आंखें बरबस झप जाती हैं !!

फिर भी टटोलकर चलना है—
हो शीत - घाम, सब साथ सहो !
इसलिए कहा करता हूं मैं—
तुम दीपक बनकर साथ रहो !!

उस तिनके-सा सागरमें हूं—
तट आज बने जिसके सपने !
जो लहरोंपर गिरता - उठता ;
सब छूट गये जिसके अपने !!

जिसको इसका कुछ भान नहीं—
वह आता-जाता किधर कहां !
बुद्बुद् बन उठते आस - पास—
सोनेके सपने थे जितने !!

फिर भी अकुलाहट भीतरकी—
कहती है, मेरे साथ रहो !
इसलिए कहा करता हूं मैं—
सुख - दुखमें मेरे साथ बहो !!

—"रमण"

प्रेतात्माओंके चित्र या विचार-चित्रण

डा० महेन्द्रकुमार, एम० एस-सी०

क्या यह सम्भव है कि मर जाने, पार्थिव शरीरका अस्तित्व मिट जानेके बाद भी किसी व्यक्तिका, उसके सूक्ष्म शरीरका चित्र लिया जा सके ?

संसारमें आज इस तरहके चित्रोंके हजारों उदाहरण मौजूद हैं और जिनका विश्वास है, वे यह कहते हैं कि अवश्य ही चित्र लिये जा सकते हैं; परन्तु इसके विपरीत जिनका वैसा विश्वास नहीं है, वे उतने ही जोरके साथ कहते हैं—"नहीं।"

परलोकवास और पुनर्जन्ममें जिनका विश्वास है, उनके मनमें अपने परलोकवासी मित्रों और सम्बन्धियोंके चित्र लेनेकी इच्छा होना तो स्वाभाविक ही है; परन्तु इस सम्बन्धमें अमेरिका और यूरोपमें बड़ा कार्य हुआ है, प्रेतात्माओं, मृत व्यक्तियोंके जहां हजारों चित्र लिये गये हैं, वहां वैज्ञानिक प्रणालीसे उसका रहस्य जाननेके लिए भी बड़ा प्रयत्न हुआ है और अभी तक हो रहा है।

मृत व्यक्तिका चित्र लेनेकी एक रोचक घटना कई साल हुए, फ्रान्समें हुई थी। पेरिसके एक प्रसिद्ध फोटोग्राफर प्रोफेसर ब्यूगेट लन्दनमें अपना कार्य करते थे। वे जब पेरिस लौटे, उनपर जालसाजीका मामला चला। जिस समय उनके मामलेकी पेशी हुई, वे अपना केमरा साथ लेते गये। उन्हें आशा थी कि वे अपनी इस कलाका परिचय देकर ही छुटकारा पा सकते हैं। अदालतमें उन्होंने थोड़ी हिम्मतसे काम लेकर जजसे कहा—"अगर आप इजाजत दें, मैं आपका एक चित्र ले लूं।"

"ऐसा तो कभी नहीं हुआ। फिर भी, क्या बात है, ले सकते हो।"

ब्यूगेटने चित्र लिया और प्लेट निकालकर जजको देते हुए कहा—"कृपया इसे किसीसे धुलवा लीजिये।"

कुछ समय बाद वह प्लेट और उसपरसे लिये हुए कुछ चित्र जजके पास लाये गये। जजने उन्हें देखा और उसके बाद ब्यूगेटके चेहरेपर निगाह गड़ाकर कहा—"खूब! इसमें एक तो मेरा चित्र है और दूसरा मेरे दादाका—मालूम होता है, उनकी छाया हो! किन्तु चित्र उनका है, इसमें सन्देह नहीं है। वे मेरे पीछे खड़े हुए हैं। चित्र लिये जानेके समय मुझे उनकी याद आ रही थी।"

ब्यूगेटने नम्रतापूर्वक पूछा—"आपको सन्तोष हो गया?"

"ब्यूगेट तुम शैतान हो?" यह कहते हुए जजने मामला खारिज कर दिया और ब्यूगेटको रिहा कर दिया। इस तरहके कितने ही उदाहरण हैं।

फोटोग्राफीके इस चमत्कार, खासकर 'विचार-चित्रण' के विषयमें शोध करनेमें जेम्स पी० स्केल्टनने बहुत समय लगाया है और बड़ा परिश्रम किया है। अमेरिका और यूरोपमें वे इस विषयके विशेषज्ञ माने जाते हैं। उनके पास प्रेतात्माओंके बहुमूल्य चित्रोंका अच्छा संग्रह है।

स्केल्टनने यह सुना कि लन्दनमें विलियम होप नामक एक विचित्र फोटोग्राफर हैं, जिन्हें सर विलियम क्रुक्स और अन्य प्रसिद्ध ब्रिटिश वैज्ञानिकोंके कथनानुसार अद्भुत शक्ति प्राप्त है।

फोटोग्राफीकी कलाको स्केल्टन अच्छी तरह जानते थे। वे यह भी जानते थे कि केमरा धोखा नहीं दे सकता; परन्तु चालाक फोटोग्राफरको उसमें कुछ भी कठिनाई नहीं हो सकती। इसीलिए उन्होंने विलियम होपके पास जाने और प्रेतात्माओंके चित्र ले सकने सम्बन्धी उनकी क्षमताकी जांच करनेका निश्चय किया।

लन्दनमें जब उन्हें विलियम होपके स्थानका पता चल गया, ३० जनवरी १९२२ को वे फोटो लेनेके कितने ही प्लेटोंके साथ विलियम होपसे मिलने गये। पहिचानके लिए उन्होंने इन प्लेटोंपर अपना नाम सङ्केताक्षरोंमें लिख दिया था। विलियम होपको स्केल्टनके प्लेटोंपर चित्र लिये जानेमें कुछ भी आपत्ति नहीं हुई। स्केल्टनने स्वयं ही अपना प्लेट विलियम होपके केमरेमें लगा दिया। विलियम होप उस समय केमरेसे काफी दूर खड़े हुए थे। कमरेमें खासा प्रकाश था। सब कुछ तैयार कर लेनेपर स्केल्टन केमरेके सामने बैठ गये। विलियम होपने केमरेमें हाथ लगाये बिना एक बार

बल्ब दबाया और एक कदम आगे बढ़कर स्केल्टनसे कहा कि "इन प्लेटोंको आप धो लीजिये।"

स्केल्टनने प्लेटोंको स्वयं निकाला और डार्क रूममें ले जाकर उन्हें स्वयं ही साफ भी किया। प्लेटमें स्केल्टनके अलावा एक अन्य चेहरा भी था। ज्यों-ज्यों प्लेट साफ होने लगा, यह चेहरा भी साफ होने लगा। स्केल्टनने प्लेट साफ हो जानेपर उस चेहरेको देखकर कहा—"यह तो मेरी मांका चेहरा है। मेरी मांकी ऐसी कोई तस्वीर मेरे पास नहीं है; परन्तु यह है मांकी तस्वीर—इसमें सन्देह नहीं है।"

"आपको पूर्ण विश्वास हो गया?"—विलियम होपने पूछा।

स्केल्टनको अभी तक सन्देह बना ही हुआ था। उसने कहा—"हां, हो गया; परन्तु केवल तस्वीरके सम्बन्धमें। मेरी मांको मरे हुए २६ दिन हो गये हैं और यद्यपि प्लेटको मेरे सिवाय किसी अन्यने नहीं छुआ, तथापि उसमें मेरी मांका चेहरा साफ है।"

स्केल्टनको अपने इस अनुभवसे बड़ा आश्चर्य हुआ। नकली तस्वीर उतारनेके कितने ही हथकण्डे उन्हें स्वयं भी मालूम थे; परन्तु यह प्लेट तो स्वयं उन्हींने लगाया था और उसे स्वयं ही साफ भी किया था।

इस घटनाके बाद स्केल्टन चमत्कारी चित्रोंके अध्ययनके लिए सङ्गठित ब्रिटिश सोसाइटी और उसकी अन्तरङ्ग सभाके मेम्बर हो गये। सर ओलीवर लाज, सर विलियम क्रुक्स, कोनन डोयल और डब्लू० एच० मेयर्स भी इसी सोसाइटीमें थे। फोटोग्राफर विलियम होपकी मृत्यु १९३१ में हुई। उस समय तक ये वैज्ञानिक मृतकोंके चित्र लिये जानेके चमत्कार-का निरन्तर शोध करते रहे और आश्चर्यजनक परिणाम निकाला।

कुछ समय बीता, जब विटवेलमेन अमेरिकामें भ्रमण कर रहे थे, स्केल्टनने उन्हें बतलाया कि "प्लेट हम स्वयं ले जाते और केमरेमें लगा देते थे। इन प्लेटोंपर पहिचानके लिए नामके सङ्केताक्षर लिखे होते थे। इसके बाद विलियम होप केमरेसे चित्र लेते। केमरेसे प्लेट निकालने और उसे धोनेका काम अक्सर मैं स्वयं करता। होप उसे कभी न छूते थे। रेडियोके ध्वनि-ग्राहक-यन्त्रकी भांति वे केवल माध्यम थे, जिनके द्वारा कोई विचित्र शक्ति काम करती थी। ९० सैकड़े

बेलफास्ट (आयलैंण्ड) के विलियम मैगी—जिनके दो पुत्र स्नान करते समय समुद्रमें डूब गये थे। विलियम होपने जब उनका चित्र लिया, दोनों मृत पुत्रोंका चेहरा भी उसमें आ गया।

चित्रोंमें कोई-न-कोई अतिरिक्त चेहरा आ जाता था।"

सावधानीके लिए—धोखेबाजीसे बचनेके लिए जितनी बातें की जातीं, विलियम होपने उनपर कभी आपत्ति नहीं की, जिससे फोटोग्राफीके इस चमत्कारकी सचाई साबित हो सके। इन प्रयोगोंमें मृत मित्रों और सम्बन्धियोंके न केवल चेहरों और शरीरोंके चित्र आये, लिखित सन्देश भी प्राप्त हुए। ये सन्देश उन प्लेटोंपर पाये गये, जिन्हें खोला तक नहीं गया था।

बेलफास्टके प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० डब्लू० जे० क्राफर्डको मरे हुए थोड़े ही दिन हुए थे। डा० डोनाल्डसन और लन्दनके एक पत्रकार जे० डब्लू० गिलमूरको साथ लेकर एक दिन स्केल्टन विलियम होपके पास गये। उनके पास फोटो लेनेके प्लेट अपने थे। इस बार दिनमें ही मित्रमण्डली फोटो खिंचवानेके लिए बैठी। विलियम होप भी साथमें ही बैठ गये और प्लेटोंके बन्द पैकटोंको अपने हाथमें लेते हुए कहने लगे—"यह नया तरीका भी मनोरञ्जक होगा।" प्लेटोंके

बन्द पैकेट विलियम होपके हाथोंमें थे। दो मिनट पीछे एक चमत्कार दिखलाई पड़ा—विलियम होपका हाथ कांप रहा था। स्वयं विलियम होप भी कुछ हिल गये। एक क्षण पीछे उन्होंने कहा—"बस!"

इसके बाद स्केल्टनने उन प्लेटोंको खोलकर धोया। एक प्लेटपर डा० डब्लू० जे० क्राफर्डका सन्देश अङ्कित था। स्केल्टनने उसकी कितनी ही प्रतियां छापकर उनके लन्दनके मित्रोंके पास भेजीं। अच्छी तरह जांच करने और मिलानेपर मालूम हुआ कि प्लेटके सन्देशकी सारी लिखावट डाक्टर डब्लू० जे० क्राफर्डके अक्षरोंमें थी। उन्होंने अपने जीवन-काल-में जो चिट्ठियां अपने मित्रोंको लिखी थीं, उनसे प्लेटकी लिपि ज्योंकी त्यों मिल जाती थी।

इसी तरह एक अन्य अवसरपर परलोकवासी टी० कौली नामक एक अन्य व्यक्तिका सन्देश आ गया। इसमें उन्होंने प्रेतात्माओंके चित्र लेनेकी पूरी विधि बतलायी थी। उन्होंने लिखा था—

प्रिय मित्र,

बड़ी खुशीके साथ मैं आपका यहां फिर स्वागत करता हूं। आपकी सहायताके लिए जो कुछ हम कर सकते हैं, पहलेकी भांति उसे अवश्य करेंगे। हमारी हिदायतोंके अनुसार काम कीजिये, आपको जरूर सफलता होगी। दूसरी तरह आपने किया और विफलता निश्चित है। बक्सको मोमकी मुहर लगाकर बन्द कर दो और दो भले आदमियों-से उसपर हस्ताक्षर ले लो। फिर उसे जल्दीसे, बहुत ही जल्दीसे पानीमें डुबा दो। इसके बाद उसे सुखाकर माध्यमके मस्तकसे लगाओ। इतना हो जानेपर किसी अन्य मित्रको सेण्टर प्लेट धोनेके लिए दे दो। प्लेटको हलके मसालेसे धीमे-धीमे साफ करना और उसका परिणाम देखना चाहिए। ईश्वर आपका मङ्गल करे। —टी० कौली।

इन सूचनाओंका पालन किया गया। प्लेटोंके बन्द पैकटोंको मोमसे बन्द कर पानीमें डुबा दिया और उसे माध्यमके सिरसे लगाया। धोनेपर देखा गया कि सेण्टर प्लेटपर गुलाबका एक बड़ा फूल बना हुआ है। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। मस्तकसे लगाये जानेके समय क्या माध्यम व्यक्ति गुलाबके फलके विषयमें सोच रहा था? यह कोई नहीं
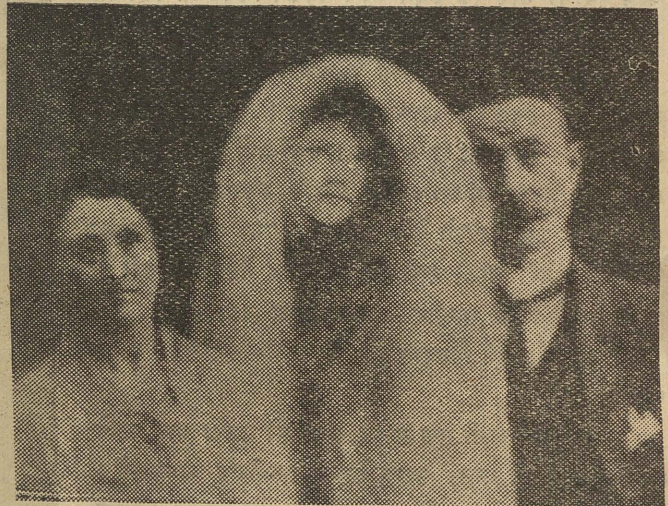
माता और पिताने जब अपना फोटो खिंचवाया, मृत पुत्रका चेहरा भी उसमें आ गया।

कह सकता; परन्तु "टी० कौली" की लिखावटकी जांच हस्त-लिपि-विशेषज्ञ द्वारा करायी गयी और उसने यह मत प्रकट किया कि वह लिखावट मृत आर्च डीकन कौलीकी लिपिमें है।

इसी तरहकी परिस्थितिमें विलियम टी० स्टीडके चेहरे और कन्धेका चित्र लिया गया। टिटानिक जहाजके समुद्रमें डूब जानेसे उनकी मृत्यु हुई थी। जहाजपर बैठनेसे कई दिन पहले उन्होंने अपने मित्र विलियम वाकरसे कहा, "कृपया लिखते रहिये। क्या आप लिखेंगे नहीं?"

विलियम टी० स्टीडके मर जानेके बाद उनका एक चित्र लिया गया। उसके नीचे लिखा हुआ था—"प्रिय वाकर, मैं आपको लिखते रहनेकी कोशिश करूंगा।"

ये चमत्कारपूर्ण चित्र केवल लन्दनमें ही नहीं, अन्य स्थानोंमें भी आते हैं।

पेरिसमें मेटाफिजिक्स इन्स्टीट्यूटके डाइरेक्टर हैं मोशिये डारडेने। स्केल्टनने उनके कार्यकी भी जांच की। मोशिये डारडेने न तो माध्यम हैं और न उनका विश्वास ब्रिटिश सोसाइटीके प्रेतात्मा-सम्बन्धी सिद्धान्तोंमें है। उन्होंने स्केल्टनसे कहा—"आप जो चित्र लेते हैं, वे प्रेतात्माओंके हो सकते हैं। मैं उसकी सम्भावनाको अस्वी-कार नहीं करता; परन्तु यहां हम भी तो वही करते हैं। हम

माता-पिताके फोटोमें जिस मृत पुत्रका चेहरा आ गया है, उसका जीवित अवस्थाका चित्र।

बन्द प्लेटोंपर चित्र उतारते हैं। इन चित्रोंको 'विचार-चित्रण' कहते हैं।"

स्केल्टनने मुहरबन्द प्लेट मोशिये डारडेनेको दिया। मोशिये डारडेने और एक अन्य व्यक्तिने उसे कुछ देर तक मसालेमें धोया। इस बीचमें मोशिये डारडेने एक पञ्चकोण सितारेका ध्यान कर रहे थे। जब प्लेट साफ हुआ, उसपर एक पञ्चकोण सितारा बना हुआ था।

एडिनबराके मशहूर फोटोग्राफर सर विलियम क्रुक्स जब तक जिन्दा रहे, उन्होंने कभी यह बतलानेकी कोशिश नहीं की कि प्रेतात्माओंकी तस्वीर आखिर आ कैसे जाती है। परन्तु जब वे मर गये, उन्होंने लन्दनके एक माध्यम द्वारा मि० डब्लू० जे० वेस्टपर उसका रहस्य प्रकट किया। ऐसे प्रयोगोंमें जैसा होता है, एक तुरही-जैसे यन्त्रसे आवाज निकलती थी और वह सर विलियम क्रुक्सकी आवाजसे मिलती थी। उन्होंने बतलाया—"अच्छा वेस्ट, एक बात तो तुम्हें जान ही लेनी चाहिए कि प्रेतात्माका जो चित्र आता है, उसका किसी तरह भी ऐसी किसी चीजसे सम्बन्ध नहीं होता, जो केमरेके लेन्सके सामने प्रत्यक्ष हो। सच तो यह है कि उस चित्रके साथ केमरेका कोई सम्बन्ध ही नहीं होता। होता यह है कि जिस व्यक्ति, वस्तु, सन्देश या हस्तलिपिका चित्र लेना होता है, माध्यम उसके विषयमें अपने मनमें खूब सोचता है, उस वस्तुको अच्छी तरह देखता है और फिर विचारकी लहरों द्वारा उसे फोटोके प्लेटपर पहुँचा देता है। इसके बाद उस प्लेटको साफ कर लिया जाता है।"

पेरिसमें मोशियेडारडेनेके 'विचार-चित्रण' सम्बन्धी प्रयोगोंको देखकर जब स्केल्टन इंगलैण्ड लौटे, उनके आयरलैण्ड निवासी एक मित्र मि० जे० मैगीने उनसे विलियम होपसे मिलकर प्रेतात्माओंके चित्र लेने सम्बन्धी प्रयोग करनेके लिए कहा। मि० मैगीके दो पुत्र स्नान करते समय समुद्रमें डूब गये थे; परन्तु वे यह विश्वास करते थे कि किसी-न-किसी लोकमें उन्हें अवश्य होना चाहिए। एक दिन प्रयोग हुआ और मि० मैगीके चित्रके साथ अन्य दो चेहरे प्लेटमें उतर आये। साफ होनेपर मि० मैगीने देखा कि वे दोनों चेहरे उनके दोनों लड़कोंके थे। मि० मैगीने कहा—"निश्चित रूपसे ये दोनों चेहरे मेरे दोनों बच्चोंके हैं। मैं उन्हें कहीं भी पहचान सकता हूँ।"

मि० मैगीसे तो स्केल्टनने कुछ नहीं कहा; परन्तु विलियम होपसे उन्होंने कहा—निश्चित रूपसे यह कोई नहीं कह सकता कि ये चित्र प्रेतात्माओंके हैं या वास्तवमें "विचार-चित्र" हैं। यह है तो रहस्यपूर्ण ही; परन्तु "विचार-चित्र" होनेके सिद्धान्तके आधारपर उसका कारण बतलाया जा सकता है। इसमें तो सन्देह ही नहीं है कि जब आप मि० मैगीका चित्र ले रहे थे, वे अपने लड़कोंकी याद कर रहे थे।

प्रेतात्माओंके चित्र लेनेका पहला प्रयोग लगभग ८० वर्ष पहले अमेरिकामें हुआ था। आज इस कार्यको करनेवाले कितने ही व्यक्ति हैं; परन्तु विलियम होपकी विशेष ख्याति-का कारण यह हुआ कि तत्कालीन वैज्ञानिकोंने उनके प्रयोगोंको कसौटीपर अच्छी तरह कसा और उनमें कभी चालाकी नहीं पायी गयी। विलियम होप पहले बढ़ईका

काम करते थे। एक दिन जब वे घूमने गये हुए थे, उन्होंने अपने साथियोंके कई फोटो लिये। एक फोटोमें विलियम होपके मित्रके अलावा एक युवतीका भी चेहरा आ गया। उनके मित्रने देखते ही कहा—"यह तो मेरी बहन है। दो साल पहले उसका देहान्त हो चुका है।" इस घटनाके बाद ही विलियम होप इस कार्यमें खास तौरसे प्रवृत्त हुए थे।

मर जानेके बाद लिखा हुआ सन्देश। विलियम होपने केवल हाथमें प्लेट पकड़ लिया था और केमरेका उपयोग किये बिना ही प्लेटपर यह सन्देश आ गया था।

आज सारे संसारके वैज्ञानिकोंकी दृष्टि उन प्रयोगोंकी ओर लगी हुई है, जिन्हें ड्यूक यूनिवर्सिटीके डा० राइन मनोविचार-प्रक्षेपण-विज्ञानके क्षेत्रमें और स्टेनफोर्ड विश्व-विद्यालयमें डा० जान केनेडी एक यन्त्रकी सहायतासे मस्तिष्ककी तरङ्गोंको नापनेके लिए कर रहे हैं। केम्ब्रिजमें डा० ई० डी० एड्रियनको वेदना, शिरोपीड़ा और अन्य मानसिक एवं शारीरिक व्यथाओंका चित्र लेनेमें सफलता मिल चुकी है। इन शारीरिक और मानसिक व्यथाओंका चित्र लेनेमें सफल होनेका अर्थ है उन लहरोंका चित्र लेनेमें सफल होना, जो वैसी अवस्थामें पीड़ित व्यक्तिके शरीरसे उत्पन्न होती हैं। अभी तक जैसा माना जाता है, कितने ही वैज्ञानिकोंका दावा है कि मस्तिष्कसे जब खास तरहकी तरङ्गें उठती हैं, तब इन तरङ्गोंको, अभी तक अज्ञात किसी तरीकेसे, यह सम्भव है, केमरेके प्लेट तक पहुंचाया जा सके—ठीक वैसे ही, जैसे ध्वनिकी तरङ्गोंको रेडियो ग्रहण कर लेता है। इससे हो सकता है, प्रेतात्माओंके चित्र उतर आनेका रहस्य प्रकट हो जाय; क्योंकि जब शिरोपीड़ाका चित्र लिया जा सकता है, तब वैज्ञानिकोंकी दृष्टिमें यह बिलकुल सम्भव है कि किसीको अपने किसी मृत आत्मीयकी स्मृति हो और उस स्मृतिका चित्र लिया जा सके।

———

युद्ध-काल और वाणिज्य-व्यवसाय

श्री हरिश्चन्द्र अग्रवाल, बी० काम०

आज प्रायः नौ महीनेसे यूरोपमें युद्ध चल रहा है, और इसका अन्त कब होगा, यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। युद्धको यदि राजनीतिक झञ्झावात या बवण्डर कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति नहीं। इससे सामाजिक और आर्थिक अवस्थामें बहुत उलट-फेर हो जाता है। युद्धसे जो भीषण क्षति होती है, उसकी पूर्ति सहज ही नहीं हो सकती। युद्धके समान धन-जन-नाशकारक और कोई वस्तु नहीं। वर्तमान युगमें कई कारणोंसे युद्धका खर्च बहुत अधिक बढ़ गया है। गत यूरोपीय महायुद्धमें कितना धन खर्च हुआ था, उसका अन्दाज लगाना आसान नहीं। एक अमेरिकन पत्रने उसका हिसाब लगाकर बतलाया था ३९ हजार करोड़ डालर। यदि डालरका मूल्य तीन रुपया लगाया जाय, तो यह रकम १ लाख ९ हजार करोड़ रुपया होती है। इतना रुपया उपार्जन करनेमें कितने दरिद्र एवं अभागे श्रमिकोंको अपने शरीरका पसीना बहाना पड़ा होगा, उसका अनुमान करना कठिन है। उस युद्धमें केवल धनकी ही हानि नहीं हुई थी, लाखों ही आदमियोंका भी संहार हुआ था। उसके फलस्वरूप संसारकी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थामें कितना विराट् परिवर्तन हुआ, उसका कोई हिसाब नहीं।

समाज-गठनके आरम्भ-कालसे युद्ध चला आ रहा है। परन्तु प्राचीन कालके युद्धमें इस प्रकार विपुल धनका विनाश नहीं होता था। आज लाखों पौण्ड खर्च करके एक जङ्गी जहाज तैयार किया जाता है और वही समुद्रमें बैठायी गयी सुरङ्गसे स्पर्श होते ही तत्काल समुद्रके गर्भमें बैठ जाता है। धनके साथ बहुत-से आदमियोंकी जान भी जाती है। वायुयान और तोप-निर्माणमें भी बहुत ज्यादा रुपया खर्च होता है। युद्ध बढ़ते ही सभी चीजोंके मूल्यमें वृद्धि हो जाती है, इसलिए जीवन-निर्वाहका व्यय भी बहुत अधिक बढ़ जाता है। पुराने जमानेमें चङ्गेज खां या कुबलाह खां जैसे विजयी वीर जब दिग्विजय करनेके उद्देश्यसे किसी देशपर चढ़ाई करते, तब वे उस देशकी धन-सम्पत्ति लूटते, गांवों-शहरोंमें आग लगा देते, आदमियोंके खूनसे पृथ्वीको रंग देते। इससे आक्रान्त देशकी जो धन-सम्पत्ति और खाद्य-सामग्री विनष्ट होती, उससे उस देशके लोगोंको कितना अर्थ-कष्ट होता होगा, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इसपर भी ऐतिहासिकोंने इन अत्याचारी डाकुओंकी वीरत्व-कहानीसे इतिहासके पन्ने रंग डाले हैं। पर इन वीरोंके कार्योंसे क्या उपकार हुआ, यह आज तक कोई बतला नहीं सका।

देशमें युद्ध उपस्थित होनेपर जन-साधारणमें आतङ्क छा जाता है। पुराने जमानेमें अगर किसी देशपर आक्रमण होता, तो उस देशके लोग अपने धन या सञ्चित मूल्यवान वस्तुओं-को जमीनके नीचे गाड़कर मृत्युकी प्रतीक्षामें अपने घरके दरवाजेपर बैठे रहते अथवा अपनी जान लेकर किसी दूसरे देशमें भाग जाते थे। बहुत-से आदमी दिग्विजयी आक्रमण-कारियों द्वारा आहत या निहत होते। जो किसी प्रकार इस भीषण विपत्तिसे अपनी रक्षा कर लेते, वे खाद्य तथा अन्य सामग्रियोंके मूल्यमें वृद्धि होनेके कारण अत्यन्त कष्टसे अपना जीवन व्यतीत करनेको बाध्य होते। प्रतिदिन व्यवहारमें आनेवाली चीजोंको बहुत ऊंचे दामोंमें खरीदना पड़ता और फसलकी हानि होनेके कारण कई स्थानोंमें घोर दुर्भिक्ष उपस्थित हो जाता। आज उस अवस्थामें कुछ परिवर्तन अवश्य दिखाई देता है, पर लोगोंके आतङ्कका ह्रास नहीं हुआ है। विलियम शाने लिखा है कि किसी बड़े युद्धके उपस्थित होनेपर उसका तत्काल प्रभाव देशके चालू सिक्केपर पड़ता है। सभी अर्थ-सञ्चय करते हैं और उसे पानेके लिए सभी व्यग्र हो उठते हैं। सभी तरहके सिक्कोंके सम्बन्धमें यह बात लागू होती है, चाहे वह सिक्का धातुका हो या कागजका। जिस देशमें बैङ्कोंकी व्यवस्था जितनी अच्छी होती है, उस देशमें युद्धका फल उतना ही शीघ्र अनुभूत होता है। केवल पैसेका लोभ ही इसका कारण नहीं है, इसका मुख्य कारण है स्नायविक आतङ्क। जिसके पास नगद रुपया रहता है, उसे वह गुप्त रूपसे सञ्चित करके रखता है। इसका कारण

है, भय। जिसके पास कम्पनी कागज रहता है, उसे वह भुनाकर नगद रुपया लेना चाहता है। जिसका रुपया बैङ्कमें जमा रहता है, उसे निकालनेके लिए वह सबसे पहले चेष्टा करता है। इसका मूल कारण भय है। यदि यही दशा अबाध रूपसे रहे, तो सभी देशोंकी आर्थिक अवस्था सिर्फ एक सप्ताहमें डांवाडोल हो जाय।

युद्ध उपस्थित होते ही रुपये अथवा चालू सिक्केकी कमी पड़ जाती है। इसका कारण यह है कि वर्तमान समयमें प्रायः सभी प्रदेशोंमें बैङ्कमें रुपया जमा करनेकी प्रथा है। बैङ्कोंमें जितना रुपया जमा रहता है, उतने सिक्के देशमें चालू नहीं रहते। उसका कुछ हिस्सा चालू रहता और खरीद-बिक्रीके काममें लगा रहता है। इसलिए चेष्टा करनेपर भी बैङ्क जितनी जल्दी चाहे, उतनी जल्दी जमा किये हुए रुपयेको लौटा नहीं सकता। इसी कारण उस समय देशमें आर्थिक उलट-फेर होता है। ऐसा होना वस्तुतः अनिवार्य है। १८४४ में ग्रेट ब्रिटेनमें जो बैङ्क-सम्बन्धी कानून बना, उसमें यह व्यवस्था की गयी थी कि बैङ्क जितने रुपयेके नोट बाजारमें बाहर रखेगा, उतने मूल्यका सोना अपने यहां हर समय सञ्चित रखना होगा। सञ्चित सोनेके अतिरिक्त एक फार्दिङ्गका भी नोट बैङ्कोंको बाजारमें रखना नहीं होगा। पर सङ्कटके समय इस व्यवस्थाके कारण बैङ्कोंको बहुत कठिनाईका सामना करना पड़ता था। इसीलिए बैङ्क-सञ्चालन सम्बन्धी इस व्यवस्थाको रद्द कर बैङ्क आफ इंगलैण्ड-को अतिरिक्त नोट बाहर करनेका अधिकार दिया गया।

गत यूरोपीय महायुद्धमें जब यह मालूम हुआ कि ग्रेट ब्रिटेनको भी सम्मिलित होना पड़ेगा, उसी समयसे इंगलैण्ड-के बाजारमें सावरिन गिनी जैसे अदृश्य होने लगी। १ अगस्त १९१४ के पहले पांच दिनके अन्दर बैङ्क आफ इंगलैण्डको अमानतदारोंको २ करोड़ ७० लाख पौण्ड चुकाना पड़ा। १ अगस्तको बैङ्कके अधिकारियोंने हिसाब लगाकर देखा कि बैङ्कमें जितना सोना जमा है, उससे और अधिक दिन तक अमानतदारोंकी मांग पूरी नहीं की जा सकती। उन्होंने अपनी कठिनाई उस समयके अर्थ-मन्त्रीको बतलायी। अर्थ-मन्त्रीने उसी समय उन्हें प्रचलित नियमका उल्लङ्घन कर बाजारमें अधिक नोट चलानेकी अनुमति दी और पार्लमेण्टकी मार्फत कुछ ही दिनोंमें इस सम्बन्धमें एक कानून बनवा दिया। पांच दिनके अन्दर ही वह कानून पास होकर जारी हो गया। उसके अनुसार उस समयसे ही इंगलैण्डके बाजार-में १ पौण्ड और १० शिलिङ्गके अपरिशोधनीय नोट जारी किये गये। उस सङ्कटके समय धातुके सिक्कोंके अभावको दूर करनेके हेतु केवल अस्थायी भावसे खरीद-बिक्रीके कार्यको चलानेके लिए ही ये नोट जारी किये गये थे।

किन्तु इन अतिरिक्त नोटोंके जारी करनेका फल शीघ्र ही फलित होने लगा। इससे खाने-पीनेकी वस्तुओंकी दर बढ़ गयी और जनसाधारणके जीवन-निर्वाहका खर्च भी बढ़ गया। युद्धके समाप्त होनेके बाद भी कुछ दिनों तक यह व्यवस्था जारी रही। पर ग्रेट ब्रिटेनने चतुराईसे ऐसी व्यवस्था कर रखी थी कि देशके क्रय-विक्रयकी आवश्यकता-नुसार बाजारमें अतिरिक्त नोटोंका व्यवहार कम होने लगा। इसलिए ग्रेट ब्रिटेनमें वस्तुओंके मूल्यमें फ्रान्सकी अपेक्षा बहुत कम वृद्धि हुई।

इस सम्बन्धमें एक और भी विचारणीय बात है। वर्तमान समयमें संसारमें जो अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य फैला हुआ है, युद्धके समय उसमें बाधा उपस्थित होती है। इसलिए दूर देशोंमें मालकी रफ्तनी करना असम्भव हो जाता है। इस-लिए जो देश अपने यहांका कच्चा माल बाहर भेजता है, विदेशोंमें उसकी बिक्री नहीं होती। स्वदेशमें भी अनेक कारणोंसे उसकी मांग कम हो जाती है। इसके कारण उसका मूल्य भी कम हो जाता है। पराधीन देशोंमें मुद्राके मूल्यको बढ़ाकर चीजोंके मूल्यको कुछ ऊपर उठाया जाता है। फलस्वरूप इस घटती-बढ़तीके बीच पड़कर वस्तुओंका मूल्य ऐसे स्थानपर आकर रुक जाता है कि यह अनुमान करना कठिन हो जाता है कि आगे इसकी क्या स्थिति होगी। जो चीजें विदेशोंको भेजी जाती हैं, किसान और शिल्पी उन्हें इतने अधिक परिणाममें तैयार करते हैं कि वे देशकी आवश्यकतासे बहुत अधिक होती हैं। इसलिए अतिरिक्त या बढ़े हुए मालकी खपत देशमें नहीं होती। उस दशामें मूल्यमें कमी न होनेपर भी उसके खरीदार नहीं जुटते। फलस्वरूप देशके माल-उत्पादक किसानों और शिल्पियोंको क्षतिग्रस्त होना पड़ता है। पर जो शिल्पी विदेशी मालके साथ प्रतियोगिता करनेमें अपनेको असमर्थ पाते हैं, वे अगर ऐसे समयमें चेष्टा करें, तो उन्हें बहुत सुविधा

मिल सकती है। विदेशी मालका आना कम हो जाता है और विदेशी वस्तुओंके मूल्यमें वृद्धि होनेसे वे आसानीसे विदेशी मालके साथ प्रतियोगिता कर सकते हैं। ऐसे ही मौकेसे लाभ उठाकर शिल्पहीन देशोंमें नाना प्रकारके शिल्पोंका जन्म होता है। गत यूरोपीय महायुद्धके समय ऐसे कई देशोंमें कल-कारखाने खुले। युद्धसे उन्हें अपने पैरोंपर खड़े होनेका अवसर मिला। पराधीन देश इस सुविधाका उपयोग बहुत दिनों तक नहीं कर सकते, पर स्वाधीन देश तो इससे लाभ उठाकर अपनेको समृद्धिशाली बना सकते हैं।

वर्तमान समयमें हमारे देशमें नाना प्रकारके रोगों और व्याधियोंका जैसा प्रकोप है, उससे इस देशमें औषधियां जितने सुलभ मूल्यमें मिलेंगी, उतना ही देशके लिए हितकर होगा। आजकल युद्धके कारण बाहरसे औषधियोंका आना प्रायः बन्द ही हो गया है, इसलिए यहां उनके दाम बढ़ गये हैं। इससे इस देशके गरीब लोगोंको बहुत कष्ट हो रहा है। औषधि न मिलनेकी वजहसे बहुत-से रोगियोंकी समुचित चिकित्सा नहीं हो पाती। ऐसी अवस्थामें सबसे पहले हमें इस बातकी चेष्टा करनी चाहिए, जिससे हमारे देशमें ही आवश्यकतानुसार औषधियां तैयार हो सकें। ऐसे सुअवसर बहुत कम मिलते हैं। इस समय देशके हरएक व्यक्तिका कर्तव्य है कि वह राष्ट्र-कल्याणको अपने जीवनका लक्ष्य बनाये। राष्ट्र-हितके अतिरिक्त जो व्यक्तिगत या साम्प्रदायिक स्वार्थ-साधनकी चेष्टा करते हैं, उनका पतन अवश्यम्भावी है, इसलिए जब तक हम राष्ट्रीय हितके लिए अपने क्षुद्र स्वार्थोंका बलिदान नहीं कर देते, तब तक हमारी दुरवस्था दूर नहीं हो सकती।

यह प्रायः देखनेमें आया है कि युद्धके फलस्वरूप देशके शिल्प और वाणिज्यकी गति परिवर्तित हो जाती है। गत यूरोपीय महायुद्धके अवसरपर तो यह परिवर्तन विशेष रूपसे देखा गया था। जिन देशोंमें शिल्प और उद्योग-धन्धे अवनत अवस्थामें पड़े थे, वहां युद्धके समय व्यवसाय-वाणिज्यकी बड़ी उन्नति हुई। जिन देशोंके शिल्प और वाणिज्य-व्यवसाय उन्नतावस्था में थे, उनकी अवनति हो गयी। यूरोपीय महायुद्धके पहले ब्रिटेन और जर्मनी उद्योग और वाणिज्य-व्यवसायमें सब देशोंसे आगे थे। किन्तु युद्धके बाद अमेरिका तथा रूस बहुत आगे बढ़ गये। रूस पहले कृषि-प्रधान देश था और वहां पुराने तरीकेपर खेती होती थी। पर अब वह शिल्प-प्रधान देश होनेकी चेष्टा कर रहा है। रूसकी प्राकृतिक सम्पत्ति इतनी अधिक है कि यदि वह शिल्प-प्रधान देश हो जाय, तो अन्य शिल्प-प्रधान देशोंको उसके साथ प्रबल प्रतिद्वन्द्विता करनी होगी। वर्तमान यूरोपीय युद्धसे लाभ उठाकर रूस जिस प्रकार बालकन देशों तथा पश्चिमी एशियामें अपना प्रभाव बढ़ा रहा है, उससे ऐसा जान पड़ता है कि निकट भविष्यमें ही पूर्वी यूरोप और एशियाके बहुत बड़े भागमें वह अपने मालका प्रचार कर लेगा। केवल कल-कारखानोंकी स्थापनासे ही किसी देशका कल्याण नहीं होता। पर उन कारखानोंमें बने हुए मालकी खपत बढ़ानेकी व्यवस्था करनेसे देशको वास्तविक लाभ होता है। इसलिए ऐसा सुयोग पाकर रूस अपने मुंहपरसे पर्दा हटाकर अपने उद्योग-धन्धोंको बढ़ानेकी चेष्टामें लग गया है। रूस इस मौकेकी तलाशमें था कि बाल्टिक सागरमें उसे अपने जङ्गी और व्यापारी जहाज रखनेका सुयोग मिल जाय और इसके लिए कितने ही अड्डे बनाये जायं, तो उसके वाणिज्य-व्यवसायको विशेष सुविधा मिलेगी। इसीलिए उसने फिनलैण्डपर आक्रमण किया और उसपर विजय भी पायी। गत यूरोपीय महायुद्धके समयसे ही यूरोपके अनेक देश आत्म-निर्भरशील होनेकी चेष्टा करते आ रहे हैं। इस बारके महायुद्धसे उन्हें अपने प्रयत्नमें और भी अग्रसर होनेका अवसर मिलेगा। फलतः उद्योग-धन्धे तथा वाणिज्य-व्यवसायकी गतिमें और भी परिवर्तन होंगे। यदि यह युद्ध अधिक दिन तक जारी रहता, तो शिल्प और वाणिज्यके क्षेत्रमें नयी गति और नयी पद्धतियां दिखाई पड़तीं। एक प्रसिद्ध अंगरेज लेखकने लिखा है कि शान्तिके समय राष्ट्रोंका क्षय और युद्धके समय उनका प्रादुर्भाव होता है। प्राचीन समयमें राष्ट्र क्षात्रशक्ति-प्रधान होते थे। संग्राम और सङ्घर्षमें ही उनकी सामरिक शक्तियोंका विकास होता था। इस युगके राष्ट्र व्यवसाय-प्रधान हैं। इसलिए इस समय युद्ध-कालमें वाणिज्य-शक्तिका विकास होगा। नेपोलियनके समयमें युद्धके फलस्वरूप ग्रेट ब्रिटेनमें जो प्रगति हुई, उससे वहांका व्यवसाय-वाणिज्य विशेष रूपसे उन्नत हुआ। अमेरिकामें उद्योग-धन्धोंकी उन्नति वहांके गृहयुद्धके बाद

हुई और फ्राङ्को-प्रशियन युद्धके बाद जर्मनीके शिल्प-वाणिज्यका सितारा चमका ।

क्यों ऐसा होता है ? रणचण्डीके अट्टहास और ताण्डवमें जब विनाशके स्फुलिङ्ग दशों दिशाओंमें फैलने लगते हैं, तब उससे मानव-समाजकी गतिविधि परिवर्तित हो जाती है, उसका क्या अर्थ है ? संहारके भीतर सृष्टि-रचना प्रकृतिका एक अगम्य रहस्य है। विनाशके भीतर सृष्टिका बीज निहित रहता है । गत यूरोपीय महायुद्धके बाद शिल्प-वाणिज्य-क्षेत्रमें जो क्रान्ति हुई है, उससे जापानने विशेष रूपसे लाभ उठाया । वर्तमान युद्ध अभी एक प्रकारसे आरम्भ ही हुआ है और अभी कब तक चलेगा, ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता । इसमें भी दोनों ओरसे बहुत आदमी हताहत होंगे और बहुत रुपया खर्च होगा । इस बारके युद्धसे भी संसारके शिल्प-वाणिज्य-क्षेत्रमें विप्लव होगा । इस समय सर्वत्र वैश्य-शक्ति प्रबल होती जा रही है । इस सुयोगसे भारतवर्षको भी लाभ उठाना चाहिए । आत्मरक्षाके लिए उसे अपने शिल्प-वाणिज्यकी उन्नति और विकासकी ओर ध्यान देना चाहिए । इसलिए देशके प्रतिभाशाली व्यक्तियोंका परम कर्तव्य है कि देशमें वैश्यशक्तिको जागृत करनेके लिए वे चेष्टा करें । यद्यपि पराधीन देशके लिए ऐसा करना कठिन है, तथापि हमें अपना प्रयत्न अवश्य करना चाहिए । जहां तक सम्भव हो, आर्थिक विषयोंमें हमें आत्म-निर्भर होना चाहिए । हमारे खेतोंमें ज्यादा फसल पैदा हो, हमारे कल-कारखानोंमें देशकी मांग पूरी करनेके लिए माल तैयार हो, गुण और मूल्यमें हमारे देशकी बनी चीजें बाहरकी चीजोंके मुकाबलेमें ठहर सकें, यदि हम ऐसा कर सकें, तो हम वर्तमान युद्धसे मिले हुए अवसरसे उचित लाभ उठा सकेंगे ।

जापानकी साम्राज्य-लालसा

प्रो० शङ्करसहाय सक्सेना, एम० ए०, एम० काम०

एशियाके पूर्वीय क्षितिजपर एक भयानक धूमकेतुके समान जापानका उदय हो रहा है। पिछली दो दशाब्दियोंमें जापान पूर्वीय एशियाके लिए भीषण खतरा बन गया है । चीन तो आज शिन्तोके भयानक साम्राज्यवादका शिकार बन ही रहा है, साथ ही चीनकी स्वतन्त्रता भी खतरेमें पड़ गयी है । किन्तु यह पीली विपत्ति केवल चीनको तहस-नहस करके ही सन्तुष्ट होनेवाली नहीं है । यदि महाराष्ट्र चीनकी भाग्यश्रीने पलटा खाया और चीनको जापान उद्रस्थ करनेमें सफल हो गया, तो पूर्वीय एशियाके राष्ट्र, पूर्वीय द्वीप-समूह तथा आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्डको भी बारी-बारीसे शिन्तोके प्रबल प्रवाहका सामना करना होगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । जापानी साम्राज्यवादी नीतिके पीछे कौन-सी शक्ति काम कर रही है, यह जाननेके लिए हमें अस्सी वर्ष पीछेकी अवस्थाका अध्ययन करना होगा ।

यह द्वीप-समूह लगभग २०० वर्षोंसे शेष संसारसे अपनेको पृथक् किये हुए था । राज्य किसी भी जापानीको विदेश-भ्रमण अथवा विदेशियोंसे व्यापार करनेकी आज्ञा नहीं देता था । इस नियमके विपरीत आचरण करनेवालोंको प्राण-दण्ड दिया जाता था । लगभग अस्सी वर्ष हुए कि कप्तान पैरीकी अधीनतामें अमेरिकाके ब्लैक शिप्स नामक जहाजी बेड़ेने जापानी राष्ट्रका प्रवेश-द्वार बलपूर्वक खोल दिया । एक बार पश्चिमीय सभ्यता तथा विचारोंके सम्पर्कमें आनेपर जापानियोंने जिस शीघ्रतासे पश्चिमीय आदर्शको अपनाया, वह आश्चर्यजनक है । बीस वर्षोंमें ही जापानने अपनी नौ-सेनाको द्रुतगतिसे बढ़ाया और शीघ्र ही वह एक प्रबल सामुद्रिक शक्ति बन गया । इन्हीं दिनों जापानने पश्चिमी राष्ट्रोंसे अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेके लिए सैनिक-शक्तिको भी खूब बढ़ाया । इस समय तक पश्चिमी राष्ट्रोंने चीनमें अपना प्रभाव जमा लिया था । वे उत्तर-चीनपर रूसके बढ़ते हुए प्रभावसे सशङ्क हो उठे, अतएव उन्होंने जापानको अपनी सामरिक शक्ति बढ़ानेसे नहीं रोका, इसके विपरीत उन्होंने जापानको प्रोत्साहन दिया । वे चाहते थे कि एशियाके सुदूर-पूर्वमें रूसका एक प्रबल प्रति-

द्वन्द्वी खड़ा हो जाये। जापानको आगे बढ़ानेमें रूसका चिर-शत्रु ब्रिटेन सबसे आगे था। १९०२ में जापान तथा ब्रिटेनमें एक सैनिक सन्धि हुई, जिससे जापानको अपनी शक्ति बढ़ानेमें बड़ी सहायता मिली। जापानको आरम्भसे ही अन्तर्राष्ट्रीय अशान्तिके कारण अनुकूल परिस्थिति मिलती गयी, नहीं तो शक्तिशाली यूरोपीय राष्ट्र सुदूर पूर्वमें एक प्रबल सामरिक शक्तिको उत्पन्न ही नहीं होने देते। दो वर्षोंके उपरान्त रूस और जापान भिड़ गये, पश्चिमीय राष्ट्रों और विशेषकर ब्रिटेनकी सहानुभूति जापानके साथ थी। संसारने चकित होकर देखा कि एशियाके एक छोटे-से देशने जारके शक्तिमान् साम्राज्यको बुरी तरह परास्त कर दिया।

रूस-जापान-युद्धमें विजय प्राप्त करनेके उपरान्त जापानने अपना साम्राज्य स्थापित करनेकी ओर ध्यान दिया। इसके पूर्व भी जापानने कुछ छोटे-छोटे समीपवर्ती द्वीपोंपर अपना अधिकार कर लिया था, १८९५ में उसने फारमोसाको विजय कर लिया। १९०५ में रूस-जापान-युद्धके परिणाम-स्वरूप जापानने सखालियनका दक्षिण भाग रूससे पट्टेपर ले लिया, और मन्चूरियामें महत्त्वपूर्ण राजनीतिक तथा आर्थिक सुविधायें प्राप्त कर लीं। १९१० में जापानने चीनके एक भाग कोरियाको चीनसे छीन लिया।

एक बात ध्यानमें रखनेकी है, जापानमें सर्वप्रथम १७२१ में जन-संख्याकी गणना हुई थी, उस समय जापानकी जन-संख्या दो करोड़ साठ लाख थी। १८४० तक जापानकी जन-संख्या लगभग स्थिर रही; परन्तु १८४० के उपरान्त जन-संख्या शीघ्रतासे बढ़ने लगी। १८७२ में जन-संख्या तीन करोड़से अधिक, १८८९ में चार करोड़ तथा १९०९ में पांच करोड़ हो गयी। तब बढ़ती हुई जन-संख्याकी समस्या जापानके सामने उपस्थित हुई। जन-संख्या केवल पांच करोड़ तक नहीं रही, पिछले तीस वर्षोंमें जापानकी जन-संख्या दुगुनी हो गयी। १९३९ की मनुष्य-गणनाके अनुसार जापानकी जन-संख्या दस करोड़के लगभग है। जापानकी भूमि अधिकतर खेती-बारीके लिए अनुपयुक्त है। समस्त भूमिके केवल १६ प्रतिशत भागपर खेती-बारी हो सकती है। खेती योग्य भूमिके अनुपातसे जापानकी जन-संख्या संसारमें सब देशोंसे अधिक घनी है। जापानकी आधीसे कुछ कम जन-संख्या खेती-बारीमें लगी हुई है, और अधिकका भूमिसे गुजारा नहीं होता। यदि कृषिकी उन्नति करनेका प्रयत्न किया जाये और बांसकी घासको नष्ट करके अधिक भूमि खेती-बारीके योग्य बनायी जाये, तो खेती-बारीसे अधिक जन-संख्याका पालन हो सकता है। परन्तु इसके लिए धन चाहिए। राज्य यदि भूमिका सुधार करना चाहे, तो केवल दो ही रास्ते हैं—सेनाके व्ययमें कमी करके अथवा उद्योग-धन्धोंपर कर लगाकर। परन्तु आज जापान-राष्ट्रकी वास्तविक शक्ति सेना तथा व्यवसायियोंके हाथमें है। अतएव यह तो होना नहीं है। इसका फल यह हो रहा है कि जापानके नगरोंकी जन-संख्या भयानक वेगसे बढ़ रही है। पिछले थोड़े-से वर्षोंमें जापानके नगरोंकी जन-संख्या पचासी प्रतिशत बढ़ गयी है। जापानी अपने देशको छोड़ना नहीं चाहते, जापानी जाति प्रवास-भीरु है। १९२६ से १९३० के बीचमें जापानकी जन-संख्यामें सैंतालीस लाख व्यक्तियोंकी वृद्धि हुई; परन्तु इसी समयमें केवल अट्ठाइस हजार जापानियोंने प्रवास किया। जापानियोंको बहुत वर्षोंसे कोरिया तथा मन्चूरियामें जाकर बसनेकी सुविधायें प्राप्त हैं; परन्तु इन दोनों प्रदेशोंमें अभी तक बहुत कम जापानी जाकर बसे हैं। अनुमानतः प्रति वर्ष जापानकी जन-संख्यामें दस लाखकी वृद्धि होती है, अतः जापानके सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि इस बढ़ती हुई जन-संख्याको देशमें ही रखकर कैसे भोजन दे सकता है। जापानके राजनीतिक विधाताओंने स्वभावतः ऐसी दशामें देशकी औद्योगिक उन्नतिको ही इस समस्याको हल करनेका साधन बनाया। सारेका सारा राष्ट्र आज जापानकी औद्योगिक उन्नतिमें राष्ट्रका भविष्य अन्तर्हित देखता है। यही कारण है, राज्य सब प्रकारसे व्यवसायियोंको प्रोत्साहन देना अपना धर्म समझता है। किन्तु जब जापानी राष्ट्र स्थायी रूपसे अपने विदेशी व्यापारके द्वारा अपनी बढ़ती हुई जन-संख्याके भरण-पोषणकी समस्याको हल करनेपर तुला हुआ है, तब वह एक बड़ी जोखिम भी उठा रहा है। यदि भविष्यमें वह कच्चा माल तथा खनिज पदार्थ यथेष्ट मात्रामें प्राप्त न कर सका अथवा अपने मालकी खपतके लिए विदेशी बाजारोंको सुरक्षित न रख सका, तो जापानका आर्थिक सङ्गठन छिन्न-भिन्न हो जायेगा और उस समय जापानके सामने जो भयङ्कर

राष्ट्रीय विपत्ति आयेगी, उसका ध्यान करनेसे ही भय प्रतीत होता है। जापानी राजनीतिज्ञोंके मस्तिष्कमें यह बात घूम रही है। वे जानते हैं कि राष्ट्रने जो मार्ग पकड़ा है, वह जोखिमका है; अतएव उन्हें यह आवश्यक प्रतीत होने लगा है कि साम्राज्य-विस्तारके द्वारा कच्चे माल तथा खनिज पदार्थोंकी पूर्ति और पक्के मालकी खपतकी समस्याको स्थायी रूपसे हल कर दिया जाये। यदि यह मान भी लिया जाये कि शान्तिके समय जापानको चीनसे कच्चा माल मिल सकेगा और वह जापानके तैयार मालकी खपतका बाजार बना रहेगा (जो कि सम्भव नहीं है), तो भी किसी भावी युद्धमें जापानका इस प्रकार आर्थिक दृष्टिसे परावलम्बी होना उसके राजनीतिक पतनका कारण बन सकता है। यही कारण है कि जापान चीनपर राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करके अपनी सैनिक शक्तिके द्वारा अपने आर्थिक सङ्गठनको अक्षुण्ण बनाये रखनेकी युक्ति सोच रहा है।

किन्तु जो लोग जापानी साम्राज्यवादके पीछे केवल आर्थिक प्रश्नको ही देखते हैं, वे चित्रकी एक ओर ही देख रहे हैं। जापानी साम्राज्यवादको पूर्णतः समझनेके लिए यह आवश्यक है कि हम जापानी राष्ट्रकी आत्माको समझें। जापानका छोटेसे छोटा बच्चा भी इस भावको विश्वासके साथ अपने हृदयमें पोषित करता है कि जापानी जाति संसारकी अन्य जातियोंसे श्रेष्ठ है और उसका आविर्भाव संसारकी शान्तिको अक्षुण्ण रखने तथा अन्य जातियोंपर शासन करनेके लिए हुआ है। जापानी, वह चाहे किसी धर्मको माननेवाला क्यों न हो, शिन्तो धर्ममें विश्वास अवश्य रखता है। गृह-सचिवने अभी हालमें शिन्तो धर्मकी व्याख्या करते हुए कहा था—"वह राष्ट्रीय कर्तव्य है, जो धर्मके ऊपर है।" वास्तवमें शिन्तो धर्म एक राजकीय धर्म है, जिसमें सम्राट्को भगवान् सूर्यका सीधा वंशज तथा जापानियोंको भगवान् सूर्यकी सन्तान माना जाता है। इसी आधारपर जापानी अपनेको सर्वश्रेष्ठ जाति तथा संसारके नेतृत्वका अधिकारी मानते हैं। शिन्तो धर्ममें राज्य तथा सम्राट्की पूजाका विशेष महत्त्व है। सम्राट् और राज्यके विरुद्ध कोई बात जापानमें सहन नहीं की जा सकती। सम्राट्की दैवी उत्पत्तिमें जापानका साधारण कुली और विश्वविद्यालयका प्रोफेसर, सभी एक समान विश्वास करते हैं। विश्वविद्यालयोंमें विद्वान् अध्यापक शिन्तोके आदर्शोंपर व्याख्यान देते समय सम्राट्के दैवी अवतारका उसी भक्ति और विश्वासके साथ वर्णन करते हैं, जिस विश्वास तथा भक्तिके साथ एक भक्त अपने आराध्य देवके मन्दिरमें जाता है। इस राष्ट्रीय धर्मकी छत्र-छायामें अनेक राष्ट्रीय सङ्गठन शिन्तोके आदर्शवादको व्यवहारिक रूप देनेके लिए स्थापित हो चुके हैं। इनमेंसे दो मुख्य हैं—प्रथम ब्लैक-ड्रैगन-सोसायटी और दूसरा शोवा रेस्टोरेशन मूवमैण्ट। सम्राट् तथा राज्यकी पूजाका भाव जापानियोंमें ऐसा दृढ़ हो गया है कि प्रति वर्ष बहुत-सी ऐसी घटनायें होती रहती हैं कि यदि किसी राज्य-कर्मचारीसे कोई राजकीय कार्य बिगड़ जाता है अथवा उसका प्रयत्न विफल हो जाता है, तो वह हरकीरी करके अपनी आत्म-हत्या कर लेता है।

ब्लैक-ड्रैगन-सोसायटी एक गुप्त संस्था है, इस संस्थाके सदस्य लाखोंकी संख्यामें हैं। ब्लैक-ड्रैगन-सोसायटीके सदस्य गुप्त रूपसे कार्य करते हैं, उनकी सभायें गुप्त होती हैं और जब कभी किसी राजनीतिज्ञके कार्यको जापानके साम्राज्य-विस्तारकी दृष्टिसे हानिकारक समझती है, यह संस्था अपने किसी सदस्यके द्वारा उसका वध करवा देती है। अधिकतर सैनिक इस संस्थाके सदस्य हैं और इस संस्थाके नेताके सङ्केतपर सेना मन्त्रिमण्डलकी परवाह न करके स्वयं अपने उत्तरदायित्वपर साम्राज्य-विस्तारके कार्यको अपने हाथमें ले लेती है। वास्तवमें जापानकी वैदेशिक नीतिका निर्णय करनेवाली सरकार नहीं है, वरन् इन दोनों संस्थाओंके नेता हैं। दूसरी संस्थाके सदस्य अधिकतर तरुण सैनिक हैं। कर्नल ऐजावाने अगस्त १९३५ को जनरल नागाटाका वध किया था, कोर्ट मार्शलके सामने उपस्थित होकर उसने जो अपना बयान दिया था, उससे "शोवा रैस्टोरेशन आन्दोलन" का अभिप्राय समझमें आ जाता है। कर्नलने कहा था—"सम्राट् भगवान्का अवतार है, अतएव समस्त राजनीतिक तथा आर्थिक अधिकार सम्राट्के हाथमें ही होना चाहिए, प्रजातन्त्र एक भयङ्कर भूल है। इसी उद्देश्यसे प्रेरित होकर मैंने जनरलका वध किया था।" दोनों ही संस्थायें प्रजातन्त्रके विरुद्ध हैं, आये दिन जापानमें राजनीतिक वध

होते रहते हैं। जिस किसी मन्त्रीने अन्य राष्ट्रोंसे ऐसी सन्धि की कि जिससे जापानके साम्राज्य-विस्तारमें रुकावट पहुंचनेकी सम्भावना हो, अथवा यदि किसीने प्रजातन्त्रके पक्षको अधिक दृढ़ बनानेका प्रयत्न किया, तो उसका वध अवश्यम्भावी हो जाता है। राजनीतिज्ञोंका वध करनेके उपरान्त बहुत-से युवक-घातक, हरकीरी कर लेते हैं, और यदि पकड़ जाते हैं, तो जापानी न्यायालय भी इनसे इतना भयभीत रहता है कि वह उनको दो या तीन वर्षोंसे अधिककी सजा नहीं करता। ये घातक देशभक्त कहलाते हैं और उनका सम्मान होता है। एक ऐसे ही अवसरपर हजारों जापानी स्त्री-पुरुषोंने अपने रुधिरसे हस्ताक्षर करके एक प्रार्थना-पत्र न्यायालयको इस आशयका दिया था कि हत्यारे छोड़ दिये जायें, और हत्यारे वस्तुतः मुक्त कर दिये गये। फरवरी १९३६ में होनेवाले टोकियो-विद्रोहकी तहमें यही भावना काम कर रही थी। इस आन्दोलनके सूत्रधार दो मुख्य व्यक्ति हैं—माजाकी* तथा अराकी×। इन दोनों व्यक्तियोंने, जो कि सेनासे सम्बन्धित रहे हैं, तरुण सैनिकोंको यह उपदेश देना आरम्भ किया कि जापानका यह दैवी कर्तव्य है कि वह संसारको सभ्यता सिखाये और शान्ति स्थापित करे। जापानके शासन-विधानमें यह स्पष्ट रूपसे लिखा हुआ है कि जापानी जातिकी उत्पत्ति भगवान्से है और उसपर एक ऐसा वंश शासन करता है, जो कि सृष्टिके प्रारम्भसे है और अन्त तक रहेगा। यद्यपि प्रजातन्त्रवादी भी इन सिद्धान्तोंमें पूर्ण विश्वास करते हैं; परन्तु उन्होंने इनका स्पष्टीकरण करते हुए प्रजातन्त्र शासन-यन्त्रको जापानमें खड़ा किया। परन्तु सैनिक नेता प्रजातन्त्रको जापानी सिद्धान्तोंके विरुद्ध मानते हैं। सारे जापानमें शिन्तो धर्मकी भावना परिवेष्टित है। राष्ट्रीय नीति आज पूर्णतः सेनाके हाथमें है, प्रजातन्त्रका भवन खण्ड-खण्ड होकर गिरना चाहता है और भविष्यमें फासिज्म अथवा राजकीय समाजवादके स्थापित होनेकी सम्भावना बढ़ती जा रही है। जापानी साम्राज्यवादकी ये शक्तियां भयानक वेगसे कार्य कर रही हैं, यही कारण है कि जापान आज पूर्वका भयङ्कर खतरा बन गया है।

गत यूरोपीय महायुद्धने जापानके लिए साम्राज्य-विस्तारकी बहुत-सी सुविधायें उत्पन्न कर दीं। यूरोपीय महायुद्धमें जब यूरोपीय राष्ट्र नर-संहारका भयानक खेल खेल रहे थे, जापानको अपनी औद्योगिक उन्नति करनेका सुन्दर अवसर मिला। मित्र-राष्ट्र जापानके द्वारा उत्पन्न की हुई प्रत्येक वस्तुको अधिक मूल्य देकर खरीद रहे थे, यही नहीं, चीनका अत्यन्त विस्तृत बाजार जापानके लिए खुला पड़ा था—कोई भी औद्योगिक राष्ट्र जापानकी स्पर्धाके लिए वहां मौजूद नहीं था। इसका फल यह हुआ कि उन चार वर्षोंमें आश्चर्यजनक तीव्रगतिसे जापान एक महत्त्वपूर्ण औद्योगिक देश बन गया। महायुद्धसे जापानको केवल यही लाभ हुआ हो, यह बात नहीं है। महायुद्धके उपरान्त लीगने उन जर्मन द्वीपोंपर, जो संयुक्त राज्य अमेरिका तथा चीन और फिलीपाइन्सके समुद्रीय मार्गको रोकते हैं, जापानका संरक्षण स्वीकार कर लिया। जापानको एक तीसरा लाभ यह भी हुआ कि मञ्चूरियापर वस्तुतः उसका आर्थिक प्रभुत्व स्थापित हो गया।

वाशिङ्गटन-सम्मेलनके उपरान्त जापानने उग्र रूप धारण करना आरम्भ किया। उसने देखा कि महायुद्धमें जर्जर पश्चिमीय राष्ट्र अब थोड़े दिनों तक युद्धका विचार भी नहीं करेंगे, अतएव उसने साम्राज्य-विस्तारकी नीतिको दृढ़तापूर्वक अपनाया, यह स्पष्ट दिखलाई देने लगा कि जापान चीनको हड़प जाना चाहता है। जनरल अराकीके नेतृत्वमें सेना अधिक प्रभावशाली हो उठी थी, बहुत बार सेनाके अधिकारियोंने सरकारकी नितान्त अवहेलना करके चीनमें सैन्य-सञ्चालन किया और चीनी प्रदेशपर अधिकार कर लिया। विवश होकर सरकारको भी सेनाके कार्योंका समर्थन करना पड़ता था। १९३० में लन्दनमें (नैवल कान्फरेन्स) नौ-शक्ति-सम्मेलनमें जापानने ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिकाके बराबर ही समुद्रीय शक्तिको बढ़ानेका दावा पेश किया। बहुत कठिनाईसे जापानके प्रतिनिधियोंने इंगलैण्ड तथा संयुक्तराज्यसे अपनी समुद्रीय शक्ति कुछ कम रखना स्वीकार कर लिया। इसका फल यह हुआ कि एकके बाद दो प्रधान मन्त्री श्रीयुत हामागूची तथा इनुकाई गुप्त

---

* माजाकी १९२९ से ३६ तक सैनिक शिक्षाका डायरेक्टर रह चुका है।

× अराकी युद्ध-सचिव रह चुका है।

संस्थाके युवक देशभक्तों द्वारा मार डाले गये। १९३१ के उपरान्त तो जापान पश्चिमीय राष्ट्रोंको धता बताकर अपने साम्राज्य-विस्तारके लिए तीव्रवेगसे चल पड़ा है और पश्चिमीय राष्ट्र तथा संयुक्तराज्य अमेरिका टुकुर-टुकुर बैठे देख रहे हैं, उनका यह साहस ही नहीं होता कि वे उसको रोक सकें।

१९३१ का मुकडन काण्ड, जिसके द्वारा जापानने मञ्चूरियापर वस्तुतः अपना आधिपत्य जमा लिया, जापानकी साम्राज्यवादी योजनाका एक अंश-मात्र था। वास्तवमें यदि देखा जाये, तो उससे ही जापानकी चीन साम्राज्यको हड़प जाने और प्रशान्त महासागरमें पश्चिमीय राष्ट्रोंकी शक्तिको नष्ट कर देनेकी योजनाका सूत्रपात होता है। जापानके सैनिक राजनीतिज्ञोंने अन्तर्राष्ट्रीय कठिनाइयोंका अपने साम्राज्यको बढ़ानेके लिए सदैव उपयोग किया है। १९३१ में जापानने जो मञ्चूरियामें सैन्य-सञ्चालन किया, वह केवल इस कारणसे कि वह जानता था कि उसका विरोध कोई भी राष्ट्र नहीं करेगा। चीन गृह-युद्धके कारण जर्जर हो रहा था, सोवियट रूस देशके आर्थिक निर्माण-कार्यमें फंसा हुआ था। रूसमें उस समय पञ्चवर्षीय योजना चल रही थी। इंगलैण्ड और अमेरिका अपने आर्थिक ढांचेको हिला देनेवाली आर्थिक मन्द्रीका सामना कर रहे थे, और लीग-आव-नेशन्स यूरोपके क्षुब्ध वातावरणके कारण नपुंसक-सी बनी बैठी थी। जापानके साम्राज्य-विस्तारके लिए कोई भी बाधा नहीं थी।

मञ्चूरियाको अपने अधिकारमें कर लेनेके उपरान्त जापानके सैनिक नेताओंने भीतरी मङ्गोलिया तथा जिहोल और चहार प्रान्तोंपर भी आक्रमण कर दिया। नानकिङ्ग-सरकारने लीग-आव-नेशन्ससे बहुत अनुनय-विनय की; परन्तु सब व्यर्थ। निराश होकर सेनापति चाङ्ग-काई-शेकने जापानसे सन्धि कर ली और चीनका उत्तरीय भाग वस्तुतः जापानके अधिकारमें पहुंच गया। १९३४ में जापानने एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घोषणा की, जिसका आशय यह था कि पूर्व एशियाकी शान्तिके लिए केवल वही उत्तरदायी है, अतएव चीनमें वह अन्य राष्ट्रोंके हस्तक्षेपको कदापि सहन न करेगा।

मञ्चूरिया-विजयके उपरान्त राजनीतिज्ञोंकी धारणा यह बन गयी थी कि जापान उत्तर-पश्चिमकी ओर बढ़ेगा। जिस प्रकार मञ्चूरिया-काण्डमें सोवियट रूसने दब्बूपन दिखाया और जापानका अधिकार हो जाने दिया, उसी प्रकार कहीं बहिर्मङ्गोलियाके साथ भी न हो। जापानके सैनिक नेता भी यही सोचे बैठे थे; परन्तु मञ्चूरियाकी सीमापर इसी समय रूसने पूरी सैनिक तैयारी कर ली और उस प्रदेशको इस प्रकारसे युद्धके साधनोंसे सुसज्जित कर दिया कि फिर जापानका यह साहस नहीं हुआ कि उधर कदम बढ़ाये। इस समय मञ्चूरियाकी सीमापर रूसकी इतनी विशाल सेना स्थायी रूपसे मौजूद है, जितनी कि जापानकी कुल स्थायी सेना है। समस्त सीमाको कङ्क्रीटके ब्लाक-हाउसोंकी कई लाइनें बनाकर अभेद्य बना दिया गया है। इस विशाल सेनाके लिए खाद्य पदार्थ उत्पन्न करनेके उद्देश्यसे बेकाल झील तथा पूर्वीय साइबेरियाके उपजाऊ प्रान्तोंकी शीघ्रतासे उन्नति की गयी है, अतएव खाद्य पदार्थोंको पश्चिमी रूससे ढोकर लानेकी आवश्यकता नहीं होती। सेनाके पास आवश्यकतासे अधिक टैङ्क तथा हवाई जहाज हैं, ब्लडीवोस्टकमें बम-वर्षा करनेवाले हवाई जहाजोंका एक सुदृढ़ बेड़ा सर्वदा मौजूद रहता है, जो टोकियो जाकर लौट सकता है। पश्चिमी रूससे आवश्यकताके समय अधिक सामग्री तथा सेना शीघ्रतापूर्वक लायी जा सके, इसलिए ट्रान्स-साइबेरियन रेलवेकी दोहरी लाइन डाल दी गयी है। सोवियट रूसकी इतनी सैनिक तैयारी हो जानेपर भी जापान उस ओरसे निराश नहीं हुआ। उसने यह जान लेना चाहा कि सोवियट कहां तक जानेके लिए कटिबद्ध है, इसी उद्देश्यसे जापानके हवाई जहाज उन प्रदेशोंपर उड़ाये गये, जहां उन्हें उड़नेका अधिकार नहीं था। तुरन्त ही रूसके अधिनायकने जापानको कड़ी चेतावनी दी। जापान समझ गया कि यदि उसने बहिर्मङ्गोलियाकी ओर कदम बढ़ाया, तो उसे रूसकी उस सुसङ्गठित तथा विशाल सेनासे भिड़ना होगा। चतुर जापानी सैनिक नेताओंने अपने रास्तेको बदल दिया।

जापानके सैनिक नेताओंकी आरम्भसे यह योजना रही है कि किसी प्रकार चीनको चारों ओरसे घेरकर सोवियट रूससे पृथक् कर दिया जाये, तभी वे पूर्णतः चीनको हड़प करनेमें सफल हो सकेंगे। अतएव वे चाहते हैं कि मञ्चूरियापर अधिकार कर चुकनेके उपरान्त मङ्गोलियापर जापानका अधिकार हो, और अन्तमें सिनकियाङ्ग तथा तिब्बतपर

अधिकार करके चीनको हड़प कर लिया जाये। जनरल अराकी तथा जनरल तानाका, दोनोंने ही अपनी पुस्तकोंमें लिखा है कि चीनको विजय करनेके लिए मञ्चूरिया और मङ्गोलियाका विजय करना आवश्यक है। बहिर्मङ्गोलियापर सोवियट रूसका प्रभाव है। जापान समझता था कि मञ्चूरियाकी भांति रूस मङ्गोलियामें उसे बढ़ने देगा; परन्तु अब जब रूस जापानको बढ़ने नहीं देना चाहता, तो जापान बहिर्मङ्गोलियाके मार्गको छोड़कर भीतरी मङ्गोलियाके मार्गको पकड़नेके लिए विवश हुआ है। किन्तु इस मार्गसे आगे बढ़नेमें जोखिम अधिक है।

मङ्गोलिया यद्यपि चीनका ही एक भाग समझा जाता रहा है; परन्तु मङ्गोलियाके राजाओंने चीनकी प्रभुताको पूर्णतः कभी स्वीकार नहीं किया। १८८१ में चीनसे रूसकी एक सन्धि हुई, जिससे चीनने मङ्गोलियामें रूसके स्वार्थोंको स्वीकार कर लिया। इससे बहिर्मङ्गोलिया रूसके प्रभावमें आ गया और भीतरी मङ्गोलियापर चीनका शासन-अधिकार दृढ़ हो गया। रूस-जापान-युद्धके उपरान्त जापानने भी मङ्गोलियामें प्रवेश किया, एक सन्धिके द्वारा रूस और जापानने मङ्गोलियामें एक-दूसरेके स्वार्थोंको स्वीकार कर लिया। १९१७ के उपरान्त जापानने मङ्गोलियापर अपना अधिकार जमानेका प्रयत्न आरम्भ कर दिया। जापानकी प्रसिद्ध २१ मांगोंमें मङ्गोलियाके सम्बन्धमें भी जापानकी मांग थी, आगे चलकर जापानने यह चाल चली कि वह मङ्गोलियाके राजाओंको मङ्गोलिया-स्वातन्त्र्य-आन्दोलनका सङ्गठन करनेके लिए प्रोत्साहन तथा सहायता देता रहा। बहिर्मङ्गोलियामें सोवियट रूसने इन राजाओंकी शक्तिको बढ़ने नहीं दिया और कई बार विद्रोह होनेके उपरान्त वहां प्रजातन्त्र स्थापित हो गया। क्रमशः बहिर्मङ्गोलियाका प्रजातन्त्र राज्य पूर्णतः रूसके प्रभावमें आ गया। इस नवीन प्रजातन्त्र राज्य तथा रूसमें एक सैनिक सन्धि भी हो चुकी है। उसीके आधारपर स्टैलिनने १ मार्च १९३६ को चेतावनी देते हुए कहा था कि यदि जापान बहिर्मङ्गोलियापर आक्रमण करनेका साहस करेगा, तो हमें प्रजातन्त्रकी सहायता करनी पड़ेगी,हम प्रजातन्त्रकी स्वतन्त्रताकी रक्षा करेंगे। स्टैलिनको युद्धके लिए तैयार देखकर जापान चुप हो गया और उसने भीतरी मङ्गोलियाका रास्ता पकड़ा। जिहोल, चहार और स्वीआन प्रान्तोंके भागोंपर जो जापानने अपना अधिकार कर लिया है, वे भीतरी मङ्गोलियाके ही भाग हैं। जापानने आरम्भमें उनमें धीरे-धीरे प्रवेश करना आरम्भ किया। जिहोल प्रान्तको विजय करके उसने नवनिर्मित मञ्चूको राज्यको दे दिया। अन्य प्रान्तोंमें उसने सैनिक शिविर स्थापित कर तथा मङ्गोलिया-स्वातन्त्र्य-आन्दोलनके नेता प्रिन्स ती-वाङ्गके द्वारा अपना बल और प्रभाव बढ़ाना आरम्भ किया। यद्यपि मङ्गोलियाके राजा जापानके प्रभावमें हैं; परन्तु वहांके घूमने-फिरनेवाले निवासी जापानसे सशङ्क हैं, अतएव जापान शीघ्रतासे मङ्गोलियामें न बढ़ सका। यही कारण है कि अधिक समय नष्ट करना घातक समझकर जापानने चीनपर आक्रमण कर दिया।

जापान बहुत दिनोंसे सिनकियाङ्ग अर्थात् चीनी तुर्किस्तानमें अपने पैर जमानेके लिए प्रयत्नशील है; परन्तु सोवियट रूसके प्रभावके कारण उसको यहां भी सफलता नहीं मिल रही है। कुछ समयसे सिनकियाङ्गकी सरकार सोवियट सरकारके अधिक सम्पर्कमें आयी है। सुना तो यहां तक जाता है कि इन दोनोंमें एक गुप्त सैनिक सन्धि भी हो गयी है। जो कुछ भी हो, जापानका हस्तक्षेप वहां रूस कभी पसन्द न करेगा।

जापानके सामने अपने साम्राज्य-विस्तारके मार्गमें बहुत-सी कठिनाइयां हैं; किन्तु जापानियोंमें अवसर आने तक ठहरनेकी आश्चर्यजनक क्षमता है। जापानके सैनिक नेता जानते हैं कि समय हमारे अनुकूल है। अभी तक उन्होंने ऐसे अवसरोंपर, जब अन्य राष्ट्र किसी युद्धमें अथवा अपने आन्तरिक झगड़ोंमें फंसे थे, अपनी साम्राज्य-विस्तारकी योजनाको आगे बढ़ाया है। जब उन्होंने देखा कि मैडीटरेनियन (भूमध्यसागर) तथा यूरोपकी बिगड़ी हुई राजनीतिक परिस्थितिके कारण पश्चिमीय राष्ट्र बुरी तरह फंसे हैं, जापानने उत्तर-चीनको हड़प जानेके उद्देश्यसे चीनपर आक्रमण कर दिया। सारे राष्ट्र चुप रहे और चीनकी स्वतन्त्रताका दीपक बुझने जा रहा था। सोवियट रूसको जर्मनीका भय था, इधर जापानने जर्मनीसे सन्धि करके सोवियट रूसकी स्थितिको कमजोर कर दिया था। यही कारण था कि रूस भी युद्धमें नहीं पड़ा। इधर यूरोपीय युद्धके आरम्भ होनेपर रूस और जर्मनीकी सन्धि हो गयी

और रूस अपने यूरोपीय स्वार्थोंके लिए तैयारियां करने लगा। ब्रिटेन और फ्रान्स तो यूरोपकी उलझी हुई स्थितिके कारण जापानको रोकनेमें असमर्थ थे ही, अमेरिका भी तटस्थताको छोड़ना नहीं चाहता, फिर वह प्रशान्त महासागरसे हट जानेका निश्चय कर चुका है। अतएव चीनको अकेले ही लड़ना पड़ रहा है।

ऊपर लिखी हुई साम्राज्य-विस्तारकी योजना स्थल-सेनाके नेताओंके मस्तिष्ककी उपज है; परन्तु जापानकी जल-सेनाकी भी एक योजना है। जल-सेनाके नेता दक्षिण प्रशान्त महासागरकी ओर बढ़ना चाहते हैं और प्रशान्त महासागरके द्वीपोंपर अधिकार करके वे चीन-को समुद्रकी ओरसे घेर लेना चाहते हैं। दक्षिण प्रशान्त महासागरमें जापानने अपनी योजनाके अनुसार कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है। फारमोसा तथा जापानके संरक्षित द्वीप जल-सेना-सञ्चालनके आधार बनाये गये हैं। इन द्वीपोंमें जापानियोंको बहुत बड़ी संख्यामें बसाया जा रहा है। बन्दरगाह, सड़कें तथा स्थानीय धन्धोंकी उन्नति की जा रही है, बेतारके तार तथा हवाई मार्गके द्वारा जापानका इन द्वीपोंसे सम्बन्ध जोड़ा गया है। फिलिपाइन्स द्वीप-समूहमें जापान क्रमशः अपना प्रभाव बढ़ाता जा रहा है। संयुक्त राज्य अमेरिकाने निश्चित रूपसे पूर्वीय एशियासे हट जानेका विचार कर लिया है। फिलीपाइन्स-को कुछ ही वर्षोंमें पूर्ण स्वतन्त्रता मिल जायेगी और संयुक्त राज्यके जहाजी बेड़े प्रशान्त महासागरके इस भाग-से हटकर हवाई द्वीप-समूहको अपना आधार-केन्द्र बनायेंगे। संयुक्त राज्य अमेरिकाकी जल-सेनाके विशे-षज्ञोंका यह मत है कि यदि कभी जापानसे अमेरिकाका युद्ध हुआ, तो पश्चिमीय प्रशान्त महासागरमें अमेरिकाकी पराजय अवश्यम्भावी है; क्योंकि फिलीपाइन्स अमेरिकाके समुद्री तटसे सात हजार मीलकी दूरीपर है। इस पराजय-का संयुक्त राज्यकी प्रतिष्ठा तथा सामरिक शक्तिपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा। अस्तु, अमेरिकाने लगभग निश्चय कर लिया है कि वह पश्चिमीय प्रशान्त महासागरको छोड़ दे और उसपर जापानकी नौ-शक्तिका प्रभाव हो जाने दे। जबसे संयुक्त राज्यका यह विचार प्रकट हुआ है, जापानकी गृध्र-दृष्टि फिलीपाइन्सपर पड़ने लगी है। जापानी व्यापारी तथा व्यवसायी वहां बहुत बड़ी संख्यामें पहुंचने लगे हैं और जापानके पक्षमें वहां जोरोंसे आन्दोलन किया जा रहा है। जबसे स्याममें (१९३२ में) क्रान्ति हुई है, तबसे जापानकी स्यामसे बहुत घनिष्टता हो गयी है। जापानी प्रोफेसर, सैनिक-विशेषज्ञ तथा अन्य सलाहकार स्याममें बुलाये गये हैं। स्यामके युवक तथा कर्मचारी जापानमें शिक्षा प्राप्त करनेके लिए भेजे जा रहे हैं। जापान-का स्यामपर प्रभाव बढ़ जानेसे सिङ्गापुरका सामरिक महत्त्व बहुत कम हो जायेगा। यद्यपि जापानका स्याम-पर अभी प्रभाव बहुत नहीं है; परन्तु भविष्यमें क्या होगा, कौन कह सकता है। जापानकी महत्त्वाकांक्षाका दिग्द-र्शन हमें वहांके राजनीतिज्ञोंके लेखों तथा व्याख्यानोंसे होता रहता है। जापानी-स्याम-समितिके सभापति श्रीयुत यादाने एक बार कहा था, "संसारकी अवस्था तेजी-से बदल रही है; कौन जानता है कि हालैण्ड अपने पूर्वीय शासित प्रदेशोंको, जिनका क्षेत्रफल हालैण्डके साठगुनेसे भी अधिक है, कब तक अपने अधिकारमें रख सकेगा। यह भी निश्चित नहीं है कि भारतवर्ष कब तक ब्रिटेनकी अधीनता-में रहेगा। ऐसी अवस्थामें जापानको समय नष्ट न करके शीघ्रातिशीघ्र दक्षिणकी ओर बढ़ना चाहिए।" यद्यपि ऐसे लेखों और व्याख्यानोंको कोई राजनीतिक महत्त्व प्रदान नहीं किया जाता; परन्तु इनसे जापानियोंकी महत्त्वाकांक्षा-का परिचय अवश्य मिलता है। जापानकी साम्राज्य-विस्तार-योजनामें आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड तथा ब्रिटिश द्वीप भी हैं। परन्तु यह सुदूर भविष्यकी बातें हैं, अभी उनके विषयमें कुछ कह सकना कठिन है।

जापानके सैनिक नेताओंके सामने बहुत-सी समस्यायें हैं। जापानकी प्रजा सैनिक व्ययके भारसे दबी जा रही है। कुछ वर्ष हुए, जापानका सैनिक व्यय जापान-सरकारकी आधी वार्षिक आयके बराबर होता था; परन्तु अब लग-भग सारी राष्ट्रीय आय सेनाके ऊपर व्यय कर दी जाती है। अन्य राष्ट्रीय कार्योंके लिए प्रति वर्ष ऋण लिया जाता है। राष्ट्रीय ऋण पिछले पांच वर्षोंमें बयालीस करोड़ पौण्डसे बढ़कर साठ करोड़ पौण्ड हो गया है। १९३१ से अभी तक मञ्चूकोपर लगभग दस करोड़ पौण्ड व्यय किया जा चुका है। जापानी किसानों तथा कारखानोंके मजदूरों-

की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय हो रही है। निर्धनताके कारण जापानी किसान अपनी लड़कियोंको वेश्यागृहोंके स्वामियोंको बहुत बड़ी संख्यामें बेचने लगे हैं, समाजमें अशान्तिके चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे हैं।

जापानी सैनिक नेता यह भली भांति समझते हैं कि यदि वे बढ़ती जनसंख्याको भोजन न दे सके, तो उनका पतन अवश्यम्भावी है। उन्होंने अपने देशवासियोंको बतलाया है कि मञ्चूरिया, चीन तथा अन्य प्रदेशोंके जो उपजाऊ प्रदेश हमारे आसपास हैं, उनपर जापानका अधिकार हो जानेसे जापानियोंके सारे दुःख दूर हो जायेंगे। जापानके राजनीतिज्ञोंने देखा कि यदि अब अधिक देर की गयी, तो कठिनाई बढ़ जायेगी; क्योंकि चीनमें एकता स्थापित हो गयी है और अब शीघ्र ही चीन-राष्ट्र अपने पुनर्सङ्गठनमें लगेगा। अस्तु, दस वर्षोंमें वह अत्यन्त सबल राष्ट्र बन जायेगा। उधर सोवियट रूस जो १९३१ तक अपनी समस्याओंमें बुरी तरह फंसा था, साथ ही एशियामें उसकी सैनिक शक्ति भी उस समय कम थी, अब पांच वर्षोंके उपरान्त बहुत सबल हो गया था। इंगलैण्ड तथा संयुक्त राज्य अमेरिका यद्यपि युद्ध करनेके लिए तो तैयार नहीं थे; परन्तु वे भी अपने स्वार्थोंकी रक्षा करनेके लिए चिन्तित दिखलाई देते थे। समय ऐसा आ गया था कि यदि "अभी नहीं तो कभी नहीं" अतएव जापानने लीग आफ नेशन्सकी सदस्यतासे त्याग-पत्र देकर अपने साम्राज्य-विस्तारके मार्गपर शीघ्रतासे बढ़ना आरम्भ कर दिया।

कुछ लोगोंका यह विचार है कि साम्राज्य-विस्तारके कारण जापान राष्ट्रको जो असहनीय आर्थिक सङ्कट उठाना पड़ेगा, उसके कारण जापानका पतन हो जायेगा—यह उनकी भूल है। जापानी जाति आज साम्राज्यवादके नशेमें मस्त होकर झूम रही है। जब तक जापानकी सेनायें दूसरे देशोंको पददलित करके साम्राज्य-विस्तारमें सफल होती जायेंगी, तब तक जापानी भूखे रहकर भी सेनाको व्यय करनेके लिए धन देंगे। हां, यदि जापानको चीनमें परास्त होना पड़ा, तो स्थिति बदल जायेगी और जापानका उसी दिनसे पतन आरम्भ हो जायेगा।

जापानने उत्तर चीनपर अपना अधिकार कर लिया है। वहां उसने एक कठपुतली चीनी सरकार भी स्थापित कर दी है। यही नहीं, वह दक्षिणकी ओर भी अग्रसर होनेका भगीरथ प्रयत्न कर रहा है। जापान आधुनिक बिध्वंसक साधनोंसे सुसज्जित एक सबल राष्ट्र है और चीन स्वर्गीय डाक्टर सनयातसेनके नेतृत्वमें क्रान्ति करनेके उपरान्त लम्बे गृह-युद्धमें फंस गया था, इसलिए युद्धके आरम्भ होने तक चीनमें सच्चे अर्थोंमें राष्ट्रीय एकता भी स्थापित नहीं हुई थी। जापानके आक्रमण तथा जापानी मदान्ध सैनिकों द्वारा किये जानेवाले रोमाञ्चकारी अत्याचारोंने सोये हुए महाराष्ट्र चीनकी आत्माको जगा दिया है। पिछली कई शताब्दियोंमें ऐसी जागृति तथा एकता राष्ट्रमें दृष्टिगोचर नहीं हुई थी। यही चीनकी शक्ति है, जिसका जापानने अनुमान ही नहीं किया था। वैसे अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिके कारण चीनको यह युद्ध अकेले ही लड़ना होगा।

चीन-जापानका युद्ध इस दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यदि देखा जाये, तो चीन पूर्वीय एशियाके राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रताका युद्ध लड़ रहा है। यदि जापान इस युद्धमें विजयी हो गया, तो जापान अत्यन्त प्रबल और अजेय राष्ट्र बन जायेगा। संसारमें प्राकृतिक देनका अटूट भण्डार चीन यदि जापानके हाथमें आ गया और वह इस महाराष्ट्रकी प्राकृतिक देन और जन-शक्तिका उपयोग करनेमें सफल हो गया, तो जापान अपनी महत्त्वाकांक्षाको पूरा करनेके लिए भीम वेगसे आगे बढ़ेगा। चीन-जापान-युद्ध केवल चीनकी स्वतन्त्रताका ही युद्ध नहीं है, यह बहुत-से एशियाई तथा सुदूर-पूर्वके देशोंकी स्वतन्त्रताका युद्ध है। इस समय संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियट रूस चुप हैं। जापानकी साम्राज्य-विस्तार-योजना सफल होने जा रही है और साथ ही पूर्वीय राष्ट्रोंके लिए एक भयानक खतरा उपस्थित होनेवाला है।

ब्रिटेनके नये प्रधानमन्त्री

श्री आत्मानन्द मिश्र, एम०ए०, बी०एस-सी०, एल-एल०बी०

"अंगरेज, आयु लगभग पचीस वर्ष, कद पांच फीट आठ इञ्च लम्बा, कुछ विचित्र बनावट, आगे झुककर चलनेवाला, पीली शक्ल, छोटी अदृश्य मूछें, नाकसे बोलनेवाला तथा 'एस' अक्षरका शुद्ध उच्चारण न कर सकनेवाला एक व्यक्ति अर्द्ध-रात्रिको युद्ध-कारागारसे बड़ी ऊंची दीवारपर चढ़कर भाग गया है। जिसे उसका पता चले, वह तुरन्त ही युद्ध-अधिकारियोंको सूचना दे।"

यह व्यक्ति पत्र-प्रतिनिधि होकर दक्षिणी अफ्रीकाके बोअर युद्धमें गया था। किन्तु जिस रेलगाड़ीसे वह जा रहा था, वह शत्रुओं द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दी गयी थी और यह महाशय आहतों और दबे हुए मनुष्योंको सहायता पहुंचानेमें संलग्न थे। इतनेमें बोअर सेनानायकने इन्हें पकड़ लिया। इनके जेबमें एक तमञ्चा तथा कुछ गोलियां थीं। ज्योंही इन्होंने जेबमें हाथ डाला कि सेनानायककी रायफल सीधी हुई। किन्तु अंगरेज नवयुवकने यह देखकर कि तमञ्चा कहीं गिर गया है, गोलियोंको चुपकेसे निकालकर फेंकना चाहा। इसमें वह पकड़ गया। अपनेको पत्र-प्रतिनिधि बतलानेपर भी सेनानायकने उसे युद्ध-कैदी बनाकर प्रिटोरिया भेज दिया। वहींके कारागारसे अर्द्ध-रात्रिको भागकर वह अपने साथियोंसे आ मिला था।

सेनानायकका नाम लुइस बोथा था, जो बादको दक्षिणी अफ्रीकाका पहला प्रधानमन्त्री हुआ और सन् १९१८ में ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलका सदस्य भी रहा। यह दुस्साहसी अंगरेज नवयुवक विन्स्टन ल्योनार्ड स्पेन्सर चर्चिल थे, जो अपनी प्रतिभा, साहस तथा अध्यवसायसे उन्नति करते-करते आज युद्धकालीन ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलके प्रधान मन्त्री हुए हैं।

शान्ति हो अथवा अशान्ति, चर्चिलको सदा युद्धसे ही प्रेम रहा है। शान्तिके समय ये अपनी विद्वत्तापूर्ण वक्तृता द्वारा पार्लमेण्टमें पर्याप्त अशान्ति उत्पन्न कर देते थे। उनमें प्रतिभा है और उसके साथ ही अनवरत परिश्रम करनेकी अद्भुत सामर्थ्य। एक बार पूर्वीय अफ्रीकाकी यात्राके समय जहाजपर एक बड़ा बण्डल चढ़ते देख चर्चिलके एक मित्रने पूछा, "समाजवादपर इतनी पुस्तकोंका क्या कीजियेगा?" चर्चिलने उत्तर दिया, "मैं इन्हें अध्ययन करके देखना चाहता हूं कि वास्तवमें समाजवाद क्या है।" प्रत्येक बातपर अपनी स्वतन्त्र राय स्थिर करनेके लिए उन्हें चाहे जितना परिश्रम करना पड़े, उससे वे घबराते नहीं। अपने भाषण तैयार करनेमें उन्होंने बड़ा परिश्रम किया है। बहुधा भाषणोंको छः छः बार अपने हाथसे लिखा है तथा किस शब्दको किस हावभाव, जोर और गम्भीरतासे कहना चाहिए, यह जाननेके लिए घण्टों दर्पणके सम्मुख अभिनय किया अथवा बन्द कमरेमें भाषण दिया है। एक दूसरे अवसरपर डण्डीमें भाषण देनेके पश्चात् जब एक व्यक्ति किसी आवश्यक प्रश्नपर इनकी मन्त्रणा लेने गये, तो उन्होंने देखा कि एक बजे रात्रिको भी चर्चिल सरकारी पुस्तकोंके अध्ययनमें लगे हुए हैं।

मि० चर्चिलमें गम्भीरसे गम्भीर परिस्थितिपर शान्तिपूर्वक विचार करनेकी कुशाग्र बुद्धि है। वे प्रश्नके सभी पहलुओंपर दृष्टि डालते हैं; किन्तु उनका दृष्टिकोण सैनिक-दृष्टिकोण होता है। ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंमें यदि हिटलर किसीसे डरता है, तो वे हैं चर्चिल। सर एन्थोनी इडेनके त्यागपत्रके पश्चात् जब यूरोपीय समस्याओंका सामना करनेके लिए एक नये मन्त्रिमण्डलकी मांग रखी गयी थी, उस समय हर हिटलरने कहा था कि यदि चर्चिल तथा इडेन आदि मन्त्री बनाये गये, तो युद्ध बिना हुए न रहेगा। जर्मन सेनाको सशस्त्र तथा सुसङ्गठित होते देख चर्चिलने ही सर्वप्रथम ब्रिटेनको चेतावनी दी थी कि वह भी तैयारी करे; किन्तु बाल्डविनने उस ओर ध्यान न दिया, जिसके फलस्वरूप ब्रिटेनको तैयार होनेका समय देनेके लिए चेम्बरलेनको हिटलरसे सन्धियां करनी पड़ीं और अन्तमें अब हिटलरका सामना करनेके लिए चर्चिलको सम्मुख आना ही पड़ा।

विन्स्टन चर्चिलका जन्म नवम्बर १८७४ में हुआ था। उनके पिता लार्ड रैण्डफ चर्चिल पार्लमेण्टके प्रसिद्ध सदस्य थे। चर्चिलके बाबा मालबरोके सातवें ड्यूक थे। चर्चिलकी

काफी भाग अ...

माता जेनी जरोम एक अमेरिकन युवती थीं, जिनके पिता न्यूयार्कके एक पत्रके सम्पादक थे। अपनी मातासे चर्चिलने उत्साह, परिश्रम करनेकी शक्ति तथा साहित्यिक अभिरुचि पायी थी। बचपनमें चर्चिलको युद्ध तथा सैनिकोंसे बड़ा प्रेम था। वह बहुधा सैनिक खिलौनोंसे खेला करते थे। उन्होंने डेढ़ हजार खिलौने एकत्र किये थे, जिनमें एकसे बढ़कर एक सैनिक थे। चर्चिल इन "सैनिकों" को विभिन्न पंक्तियों तथा मोर्चोंपर खड़े करके सङ्गीन-युद्ध कराते थे। एक बार उनके पिताने आक्रमणकारी 'सेनाओं' को एकत्र देखकर चर्चिलसे पूछा, "क्या तुम सैनिक होना पसन्द करोगे?" चर्चिलने उछलकर कहा, "हां, मैं सेनामें भरती हूंगा; किन्तु जब युद्ध न होगा, तब मैं राजनीतिमें लड़ूंगा।" बालककी रुचि देखकर ही लार्ड रैण्डफने विन्स्टनको हैरोसे सैण्डर्स भिजवा दिया। वहां सैनिक शिक्षा प्राप्त कर चुकनेपर वे इक्कीस वर्षकी आयुमें सेनामें भर्ती हो गये।

हैरोमें चर्चिलने अंगरेजीके अतिरिक्त और कुछ न पढ़ा था और सैण्डर्स तथा सेनामें वे घुड़सवारी तथा युद्धविद्या ही सीखते रहे। सन् १८९६ ई० में जब वह भारतवर्ष आये, तब उन्होंने पोलो खेलना सीखनेके अतिरिक्त दर्शनशास्त्र तथा इतिहासका अध्ययन किया। किन्तु चर्चिलका मन लड़ाईमें ही रहता था। भारत आनेके पूर्व उन्होंने बड़े प्रयत्नसे 'टाइम्स' के संवाददाता बनकर क्यूबाके युद्धमें भाग लिया था। भारतवर्षमें भी यह दो वर्षमें दो बार युद्धभूमिपर पहुंचे। उत्तरी-पश्चिमी सीमाप्रान्तपर तिराहमें उपद्रव होनेपर चर्चिल 'डेली टेलीग्राफ' तथा 'पायनियर'के संवाददाता होकर जबरदस्ती गये। जब सूडानमें युद्ध आरम्भ हुआ, वहां जानेके लिए भी उन्होंने लार्ड किचनरसे प्रार्थना की; परन्तु यह अस्वीकार हुई। इसपर चर्चिलने सीधे ब्रिटेनके युद्ध-विभागको लिखकर स्वीकृति मंगा ली। लगभग डेढ़ सौ सैनिकोंके नायक बनकर चर्चिलने ओमडरमैनके भीषण युद्धमें भाग लिया और घुड़सवारोंके आक्रमणको बचाते हुए विजयी हुए।

मि० चर्चिलकी आर्थिक अवस्था ठीक न थी। अतएव उन्होंने सेना छोड़कर पत्रकारिता, साहित्य तथा राजनीतिका आश्रय लिया। पहली बार सन् १८९९ ई० में ये
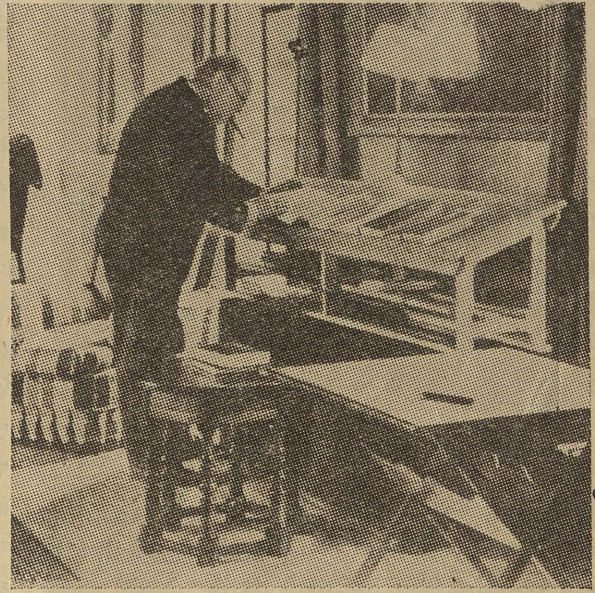
मि० चर्चिल अपनी लाइब्रेरीमें खड़े-खड़े अध्ययन कर रहे हैं।

ओल्डमसे पार्लमेण्टका चुनाव लड़े; किन्तु हार गये। इसके बाद वे 'मार्निङ्ग पोस्ट'के युद्ध-संवाददाता होकर दक्षिणी अफ्रीका चले गये, जहां इस लेखके आरम्भमें लिखी हुई घटना घटित हुई, प्रिटोरियाके कारागारसे भागकर आप घुड़सवारोंकी सेनामें सम्मिलित हो गये और विजयी होकर घर लौटे। संवाददाताके रूपमें चर्चिलने जो कुछ भी लिखा, वह इतना सुन्दर तथा उत्कृष्ट था कि शीघ्र ही वे इंगलैण्डमें प्रसिद्ध हो गये और तबसे आज दिन तक सेना तथा युद्ध-सम्बन्धी विषयोंके वे सर्वश्रेष्ठ लेखक माने जाते हैं। १९०० ई० में ओल्डमसे ये पार्लमेण्टके लिए फिर खड़े हुए और विजयी हुए। पांच वर्ष तक अनुदार दलके सदस्य रहनेके पश्चात् दूसरे निर्वाचनमें उदार दलमें चले गये। कैम्पवेल-बैनरमैनके मन्त्रिमण्डलमें जब ये उपनिवेशोंके उपमन्त्री थे, दक्षिण अफ्रीकाको औपनिवेशिक स्वराज्य मिला, जिसका पहला प्रधानमन्त्री चर्चिलको प्रिटोरियामें कैद करनेवाला लुइस बोथा नियुक्त हुआ। एस्क्विथकी सरकारमें यही बोर्ड आफ ट्रेडके अध्यक्ष नियुक्त हुए। १९१० ई० में जब ये घरेलू विभागमें आये, तो इन्हें आम हड़तालका सामना करना पड़ा। एक दिन जान बर्नसने कमरेमें घुसते ही चर्चिलको
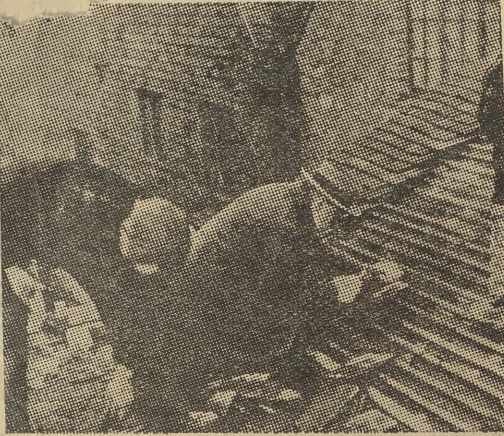
मि० चर्चिल अपने बंगलेकी खपड़ैल स्वयं ठीक कर रहे हैं।

इंगलैण्डके नक्शेपर सेनायें स्थित करनेके स्थानोंपर चिह्न लगाते देखा। चर्चिलने पहलेसे ही तैयारी कर ली थी कि यदि हड़तालने भीषण रूप धारण किया, तो उसे काबूमें करनेके लिए वे किन-किन स्थानोंपर सेनाको नियुक्त करेंगे। उसी समय पूर्वीय लन्दनके उपद्रवको इन्होंने बड़ी कठोरतासे दबाया, जिसके फलस्वरूप उन्हें युद्ध-विभागमें भेज दिया गया। यहांका कार्य उनकी रुचिके अनुकूल ही था। उन्होंने अन्य अफसरोंकी सहायतासे जल-सेनाको खूब तैयार किया और उसे जर्मन जङ्गी जहाजोंका सामना करने योग्य बनाया। यूरोपीय वातावरणके अध्ययनके आधारपर उन्होंने जुलाई १९१४ में अपने मित्र बोथाको एक जर्मन जहाजसे अफ्रीका-की यात्रा करनेसे रोका। चर्चिलका अनुमान ठीक ही निकला। जर्मन दूत दक्षिण अफ्रीकामें उपद्रव करानेमें प्रयत्नशील थे और बोथा तथा स्मट्सको मारना चाहते थे। इस माहके अन्तमें आपने ब्रिटिश सेनाको युद्धके लिए सावधान कर दिया था।

८ अगस्त १९१४ ई० की रात्रिकी बात है। जर्मनीको बेल्जियमके सम्बन्धमें दिये हुए ब्रिटिश अल्टीमेटमके उत्तरकी प्रतीक्षामें प्रधानमन्त्री एस्क्विथ तथा उनके तीन सहायक १० डाउनिङ्ग स्ट्रीटमें बैठे शान्ति और युद्धके बीच झूल रहे थे। यदि अर्द्धरात्रि तक सन्तोषजनक उत्तर न मिला, तो युद्ध आरम्भ हो जायेगा। जैसे ही घड़ीमें बारह बजे कि लोगोंने चर्चिलको प्रसन्न-वदन मन्त्रियोंके कमरेमें घुसते देखा। युद्ध होगा, इस बातसे चर्चिलको प्रसन्नता थी। वास्तवमें उन्हें सदा ही युद्धसे आनन्द मिलता है। चर्चिलमें एक विशेषता है। वे अपने दलकी शक्तिकी परवाह नहीं करते, वरन् अपनी शक्तिपर ही सब वस्तुओंको आजमाते हैं। दुनिया किसी बातको ठीक अथवा गलत समझे; किन्तु चर्चिल जिसे ठीक समझते हैं, उसे करके ही मानते हैं। उनकी वाणीमें वह शक्ति है, जिससे वे विरोधीको अपने पक्षमें कर लेते हैं।

गत यूरोपीय महायुद्धमें चर्चिल द्वारा किये गये महत्त्व-पूर्ण कार्योंके विषयमें पूरी एक पोथी लिखी जा सकती है। सन् १९१४ ई० के अक्टूबरमें इन्होंने एण्टवर्पकी सहायताके लिए एक ब्रिटिश जल-सेना भेजी, जिसके सञ्चालनका कार्य इन्होंने स्वयं अपने ऊपर ही ले लिया और समर-भूमिमें पहुंचे। इन्होंने इतनी सावधानीसे कार्य किया कि जर्मनी-का पेरिसपर आक्रमण कई दिनोंके लिए स्थगित हो गया। उससे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य इन्होंने थल-सेनाकी सहा-यतासे जल-सेना द्वारा दरेदानियालपर आक्रमण कर किया था। उनकी इस योजनाकी शत्रुने भी प्रशंसा की थी। यदि इसमें सफलता मिल जाती, तो सम्भवतः गत महायुद्ध दो वर्ष पहले ही समाप्त हो जाता। चर्चिलने चान्सलरी छोड़-कर फ्रान्समें एक अंगरेजी सेनाका नायकत्व ग्रहण किया; किन्तु सन् १९१७ में लायड जार्जने इन्हें अस्त्र-शस्त्र-विभागका मन्त्री बनानेके लिए वापस बुला लिया। सन् १९१८-१९२१ तक यह युद्ध-मन्त्री रहे, फिर दो वर्ष तक औपनिवेशिक मन्त्री। लायड जार्जकी सरकारका अन्त होनेका एक कारण यह भी थे। इन्होंने टर्कीके विरुद्ध युद्ध छेड़नेका समर्थन किया, जिसका घोर विरोध हुआ और लायड जार्जको त्याग-पत्र देना पड़ा।

बाल्डविनके मन्त्रिमण्डलमें यह चान्सलर आफ एक्स-चेकर बनाये गये; किन्तु इसमें यह अधिक सफल न हो सके—यद्यपि उससे इनके लिए प्रधान मन्त्रीका पद पानेका मार्ग खुल गया। आयु बढ़नेके साथ चर्चिल अधिक प्रगति-विरोधी होते गये। १९२९ में बाल्डविनकी सरकारका अन्त होनेपर मि० चर्चिलकी पूछ न रही। अवकाश पाते ही यह साहि-त्यिक कार्यमें लग गये। इनकी दि वर्ल्ड क्राइसिस, माल-बरो, दि रिवर वार, सवरोला (उपन्यास), मेरा प्रार-म्भिक जीवन आदि रचनायें बड़ी सुन्दर एवं उत्कृष्ट हैं। इन्हें

देखकर बाल्डविनने एक बार कहा था कि "यदि चर्चिल केवल लिखनेकी ओर ही ध्यान देते, तो वे एक श्रेष्ठ इतिहासकार होते।"

चर्चिल सदासे ही भारतको स्वतन्त्रता देनेके विरोधी रहे हैं। उनको ब्रिटिश साम्राज्यका इतना अधिक ध्यान रहता है कि वे उसका एक कोना भी नहीं खो देना चाहते। १९३६ ई० में अष्टम एडवर्डके पद-त्यागपर आपने राजाका ही साथ दिया, जिससे आप ब्रिटिश प्रजाकी अप्रसन्नताके भाजन हुए। तबसे वह लन्दनसे २६ मील दूर अपने गांव चार्टवेलमें एक बंगला बनवानेमें व्यस्त रहे। यह एक कुशल राजनीतिज्ञ और लेखक ही नहीं, वरन् सुन्दर चित्रकार तथा राजगीर भी हैं। इन्होंने अपने बंगलेका काफी भाग अपने हाथोंसे ही बनाया है। यह बहुधा अपना पुराना ओवरकोट पहने नींव डालने अथवा खपरैल चुननेमें व्यस्त रहते थे; किन्तु वहांसे आपको जर्मनीकी बढ़ती हुई शक्ति तथा ब्रिटिश साम्राज्यकी रक्षाका सदा ध्यान रहा है। जब ब्रिटेनको यह पूर्ण रूपसे भासित हो गया कि साम्राज्य-रक्षाके लिए चेम्बरलेनकी नहीं, किसी अन्य प्रधान मन्त्रीकी आवश्यकता है, तब चर्चिल ही इसके उपयुक्त पाये गये। इनकी आयु इस समय ६६ वर्षकी है; किन्तु आशा की जाती है कि उनका अनुभव, उनकी कुशाग्र बुद्धि तथा उनकी एकाग्रता उन्हें सफल प्रधान मन्त्री ही बनाकर रहेगी।

पुराने विचारकी स्त्री

श्री सन्तराम, बी० ए०

हम और तुम अलग-अलग हैं, क्योंकि तुम तुम हो और हम हम। हम प्राचीनता-प्रेमी हैं और तुम नवीनता-प्रिय। हम पूर्व हैं, तुम पश्चिम। हम आदि हैं, तुम अन्त। हम स्थावर हैं, तुम जङ्गम। हम बकवासी गिने जाते हैं, और तुम गम्भीर। हमारी बुद्धि स्थूल है, इतनी कि उसकी स्थूलताका पता नहीं लगता। तुम्हारी बुद्धि सूक्ष्म है, इतनी कि है या नहीं, यह जानना कठिन है। इसे कसर नफसी न समझिये, यह सत्य है। यह न होता, तो नयी और पुरानी सभ्यताका भेद ही न होता। खैर, ये तो हुईं जमाना साज़ीकी बातें, अब वर्तमान युगसे जो शिकायतें हमारी ओरसे हैं, वे भी सुन लीजिये—

कहा एक बेगमसे मिसने यह इक दिन,
पुरानी हैं जितनी हैं बातें तुम्हारी।
समझती हो ज़ेवरको ज़ीनत१का सामां,
लगाती हो कपड़ोंको गोटा किनारी।
रहा करती हो क़ैद घरमें हमेशा,
न सैरो सियाहत२ न शौके३ सवारी।
ये सब काम बाहर हैं तहज़ीब४से अब,
निशाने जहालत५ हैं बातें ये सारी।
तुम्हें इससे क्या तुम असीरे क़फ़स६ हो,
चले बागमें लाख बादे७ बहारी।

यह कोई आजकी पहेली नहीं। सिपाही-विद्रोहके बादसे नये और पुराने रीति-रिवाजोंमें तू तू मैं मैं चली आ रही है। पुराने विचारवाली कहती हैं कि तकल्लुफमें तकलीफ है, हमारी एक सादगीपर तुम्हारी सौ बनावटें न्योछावर हैं। दुनिया चार दिनकी चांदनी है, फिर वही अंधेरा। घरमें थोड़ा आवश्यक सामान पर्याप्त है। भगवान् रुपया-पैसा दे, तो ब्याह-शादीमें जी खोलकर खर्च करो, आभूषण बना लो, चलो छुट्टी हुई। किसीसे खोट हो, तो उससे जबानी लड़-झगड़कर दिल साफ कर लो।

---

१. श्रृङ्गारकी सामग्री, २. पर्यटन ३. सवारीका शौक, ४. सभ्यता, ५ अविद्या, ६. पिंजरेका कैदी, ७. बासन्ती समीर।

पूरे कुटुम्बके लिए दो-एक दालान और एकाध सायबान बहुत है। छोटे-बड़े सब एक जगह रहें, खायें-पियें, सोयें-जागें, कुछ हर्ज नहीं। लड़के-लड़कियोंके लिए अलग कमरोंकी कोई आवश्यकता नहीं। माताओंके लिए उनके बच्चे ही हरे-भरे बाग हैं। लड़कियोंके लिए अपने छोटे बहन-भाइयोंको खिलाना ही बड़ी सैर है। मेज-कुरसी निरर्थक है। चांदनीसे बढ़कर कोई सजावट नहीं। स्त्रीके लिए बैडमिण्टनकी भांतिके व्यायामकी क्या आवश्यकता? घरका झाड़ना-बुहारना, पकाना-रींधना, सीना-पिरोना, पीसना-कूटना ऐसे काम हैं, जिनसे व्यायाम अपने-आप होता रहता है। और इसीका काम स्वास्थ्य है। गृहस्थीके कामोंको भली भांति न कर सकना ही रोग कहलाता है। यह अवश्य है कि पश्चिमके अनुकरणमें हम बिना सोचे-समझे रहन-सहनका नवीन ढङ्ग ग्रहण करते जा रहे हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि हमारी सभ्यता एक ऐसा अवलेह बन गयी है, जिसमें प्राचीन और नवीन सभ्यताके सद्गुण बहुत कम और दुर्गुण बहुत अधिक हैं। इसके उत्तरमें नवीनता-प्रिय रमणीकी जो आपत्तियां हैं, उनकी आलोचनाका मुझे प्रयोजन नहीं। परन्तु यह अवश्य कहना पड़ता है कि यदि प्राचीनता-प्रेमी वर्गकी सफाईमें उसकी रहन-सहनकी खूबियोंका उल्लेख न किया जाय, तो निश्चय ही यह अन्याय होगा।

वह देखिये, साफ-सुथरा भारतीय ढङ्गका मकान है। दालान और कमरोंमें बर्फ-सा बिछौना हो रहा है। सहनमें एक ओर कोरे-कोरे मटके, सुराहियां, चमकते हुए गिलास, कटोरे धरे हुए हैं। सामने बरामदेके भीतर तख्तोंका फर्श है, जिसपर कालीन और गाव-तकिया लगा है। लेम्प, दीवारगीरी जगह-जगह करीनेसे लटक रही है। पिटारी साफ, उगालदान धोये रखे हैं। निकट ही तिपाईपर इतरदानमें, ऋतुके अनुसार, अतर और खासदानमें इलायची तथा चिकनी डली पड़ी है। घरवाली चम्पई दोपट्टा ओढ़े, पलंगपर बैठी, शेरवानीपर बटन टांक रही हैं। साथ ही बच्चीको पाठ भी बताती जा रही हैं।

आज समझा जाता है कि पुराने ढङ्गकी स्त्रीके पास किसी प्रकारका मनोरञ्जन ही नहीं। गरीबकी सारी आयु बन्द कोठरीमें समाप्त हो जाती है। परन्तु यह धारणा किसी अंशमें असत्य है। सचाई यह थी कि किसी दिन किसीको कुतुब मीनारकी सैरकी सूझी। आजकलका तो परिवार था नहीं कि दो-तीन व्यक्ति मोटरमें बैठ पिकनिकके लिए चल दिये। पूरे मुहल्लेकी स्त्रियां साथ होतीं। चन्दा करके दरिद्र पड़ोसिनोंको भी साथ लेतीं। क्या अच्छा समय था। पानी धांय-धांय गिर रहा है, और स्त्रियां हैं कि कोई आम बांध रही है, कोई बेसनी रोटी पका रही है। एक गाड़ी और दस-पन्द्रह सवारियां; उतने ही बच्चे। कुछ बरसातके गीत गाती भीगती हुई पैदल चलीं। गाड़ीवालियां उनका साथ दे रही हैं। झूला बागमें पहले ही मामाने डलवा दिया था। पांच-चार इससे लिपटीं। शेषने कड़ाई चढ़ायी। पालक, कलमी बड़े, गुलगुले, फुलकियां गरम-गरम उतर रही हैं। झूलोंमें लाल, हरी सीढ़ियां पड़ी हैं और झूलनेवालियां रङ्ग-रङ्गके वस्त्र पहने लहक-लहककर मल्हार गा रही हैं—

सखि, आये बदरवा झूमके।

सच मानिये, भारतीय सभ्यता इसी भाग्यवान्‌के प्रतापसे थी। अब तो दूसरोंकी नकालीसे वह नक्शा ही बदल गया है—

मिसिज़ और मिस बन गयीं औरतें सब,
न ज़ेबुन्निसा है न चञ्चल कुमारी।

गृह-प्रबन्ध और शिष्टाचार उनमें बहुत बड़े अंशमें पाया जाता था। आजकल अभिनव विचारोंके प्रवाहमें गृहस्थीकी बातें एक स्वप्न होती जा रही हैं। बहुधा लड़कियां नर्सिङ्ग, खाना-पकाना और सिलाईकी शिक्षाके उपरान्त भी बच्चोंके पालन-पोषणमें आयाकी, रसोई-घरमें खानसामां एवं सिलाईमें दरजीकी सदा मुहताज दिखाई देती हैं। हम मानते हैं कि अभिनव सामाजिक जीवनकी एक शिक्षा यह भी है कि मनुष्य अपना अधिकांश समय उन कामोंमें न लगाये, जिनको उससे कम योग्यतावाले सुगमतासे कर सकते हैं। वह उस बहुमूल्य समयको अधिक उपयोगी बातोंके अर्पण करे। परन्तु पर्यवेक्षण बतलाता है कि प्रायः इस सुनहले सिद्धान्तके केवल पहले ही अंशपर आचरण किया जाता है।

मितव्ययिता और कारीगरीमें पुराने ढङ्गकी स्त्री अपनी उपमा आप ही थी। इसके अतिरिक्त उसकी रहन-

सहनकी रीतिमें भी कतिपय ऐसी विशेषतायें थीं, जिनमें कुछ न कुछ भलाई अवश्य थी। प्रत्येक प्रकारका भोजन तैयार करना उसके लिए एक साधारण बात थी। अकेली स्त्री चालीस-पचासका निमन्त्रण निपटा लिया करती। शिल्पकारीसे उन्हें स्वाभाविक प्रेम था। बाजारकी झूठी लैसोंके सामने गोटा-किनारी और भड़कीले रङ्गीन वस्त्र उन्हें अधिक पसन्द थे। तनजेबकी कीमती गुलबदनकी शिलवार और डोरियेका दुपट्टा उनका प्रिय परिधान था। यों तो गाढ़ा और नयनसुख भी बहुधा पहन लेतीं। विवाहिताका श्वेत वस्त्र धारण करना बुरा समझतीं।

गहनोंका बहुत शौक था। निर्धनसे निर्धनके शरीरपर भी कतिपय आभूषण अवश्य देख पड़ते। यही उसके आड़े समयमें काम आते। सामान्यतः आठवें दिन कांचकी चूड़ियों और महंदीका रिवाज था। उनके श्रृङ्गारकी सामग्री चिरस्थायी और सस्ती हुआ करती थी—सुरमा, मिस्सी, काजल, टिकली, बिन्दी, शहाब और ऐसे इतर, जिनकी महक सन्दूकसे बरसों न जाती।

दिन-पर्व और रीति-रिवाजको वे बहुत मानती थीं। इन उपलक्ष्योंके बहाने परिवारकी स्त्रियां मिल बैठतीं। और फिर इस अवसरपर देने-लेनेसे बुलानेवालीका बहुत-सा भार हलका हो जाता। पुराने विचारकी स्त्रीकी शिक्षा, अलबत्ता, कतिपय धर्म-पुस्तकों तक ही परिमित रहती। बहुत किया किसीने, तो तुलसी रामायण, गीता, विष्णु सहस्रनाम, भक्ति-लीलामृत पढ़ डाला। परन्तु वे इनकी बातोंपर आचरण अवश्य करतीं। पत्र लिखना प्रथम तो जानती ही न थीं, जो लिखा भी, तो लम्बी-चौड़ी प्रशस्ति और घरवालोंके लिए पालागन, नमस्कार और बच्चोंके प्यारसे उसे समाप्त कर दिया। सामान्यतः यह तो नहीं कहा जा सकता कि उनको कवित्वका दावा था। उनकी शिक्षा ही कहां थी। परन्तु इस सत्यसे इनकार नहीं कि उनमें कविताकी प्रवृत्ति और योग्यता अवश्य थी। उनकी पेहेलियों और लोरियोंमें यह चीज आती है—

आ जा री निंदिया तू आ क्यों न जा,
मोरे बालेकी आंखोंमें घुलमिल जा।

वे बच्चोंको सुनाया करतीं—

एक था राजा, हमारा तुम्हारा प्रभु। राजासे आरम्भ करके महाराजों, राक्षसों, अप्सराओंकी मनोरञ्जक कहानियां सुनातीं। सागर-पारकी राजकुमारी और उड़न-खटोलेका जिक्र जरूर आता। बटोहियोंके मारे दिनको कहानी न कहनेमें भी कामके समयको नष्ट न करनेका तत्त्वज्ञान था।

निर्धन-वर्गमें चक्कीके गीत थकान मिटानेके लिए घण्टों मिलकर गाये जाते या फिर देहातमें सावन और झूलेके गीत—

बरखा गयी जाड़े गये बीत गये खरसाय,
आवन-आवन कह गये आये न बारह मास।

जिन प्रथाओंपर आज हम हंसते हैं, जो रीतियां आज निरर्थक जान पड़ती हैं, उनके आवरणमें आपदाके मारोंका कितना ढाढ़स बंधता। प्रथाके बहानेसे स्वाभिमानी निर्धनोंके भावोंको ठेस पहुंचाये बिना उनकी सहायता हो सकती थी। पुराने विचारकी माता परिवार-पड़ोसकी दरिद्र कन्याओंको, दूल्हाके नेगके मिस, कुछ दे सकती है। इसी प्रकार सावनमें बेटेको भेजकर परदेससे बेटीको घर बुलाना है। देखिये, किस उत्तमतासे इस प्रथाने इस आवश्यकताको पूरा किया है—

नीमकी निबोली पकी सावन कभी आयगा,
जिये मेरा मांका जाया डोली भेज बुलायगा।

बहुधा रोग-शान्तिके उपयोगी और सुलभ उपाय और टोटके इन्हें कण्ठस्थ होते। बात-बातपर डाक्टरके लिए आदमी न दौड़ता। स्त्रीके लिए खेल-कूद अलबत्ता उन्हें न भाते। लड़कियोंमें गुड़ियोंका खेल बहुत प्रिय था। उनकी सब प्रथायें पूरी की जातीं। यद्यपि नामको ये खेल थे, परन्तु मां बेटीको हंडिया-कुलियासे खाना पकानेकी और गुड़ियाके खेलसे गृहस्थी और सीने-पिरोनेकी शिक्षा दिया करती। आज यूरोप और अमेरिकामें अधिक बल इस बातपर दिया जाता है कि बच्चोंको जो कुछ पढ़ाया जाय, उसको क्रिया द्वारा उनके सम्मुख उपस्थित किया जाय। परन्तु भारतमें बहुत पहले इस प्रकारकी क्रियात्मक शिक्षाका पूर्ण प्रबन्ध था। यह बात दूसरी है कि अब हम उसकी उपेक्षा कर चुके हैं।

उनका प्रतिदिनका दस्तूर यह था कि वे सबेरे उठकर प्रभुका स्मरण करतीं, कलेवा तैयार कर, बच्चोंके मुंह-हाथ धुला, उनको और घरके पुरुषोंको कलेवा करातीं। कोई बड़ी-बूढ़ी हुई, तो उसकी दवाई कूट दी। फिर भोजन बनानेमें

लग गयीं। घरकी सारी सिलाई वे आप ही करतीं। बूढ़ी स्त्रियां मुहल्लेके बच्चोंको पढ़ाया करतीं।

विद्याकी कमीके कारण वे शीघ्र-विश्वासी अवश्य थीं, परन्तु उनके बहुत-से मूढ़विश्वास अनुभवसे रहित न थे। उदाहरणके लिए, यह आदेश कि घरसे कोई बाहर सिधारे, तो झाड़ू मत दो। इसमें भाव यह था कि उसकी गिरी-पड़ी वस्तु जल्दीसे इधर-उधर न हो जाय। अथवा यह नियम कि सन्ध्या-कालमें कोई काम न किया जाय। स्पष्ट है कि इससे नेत्र-दृष्टिपर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

उस बेचारीको अज्ञानी, प्राचीनता-प्रिय और न जाने क्या-क्या कहा जाता है। परन्तु उसकी सुघरतासे इनकार नहीं हो सकता। वह घरकी वस्तुओंको व्यर्थ नष्ट न होने देती। छोटे-छोटे टुकड़ोंको जोड़कर मेजपोश, पुराने कपड़ोंके गिलाफ, बड़े आदमियोंके कपड़ोंसे बच्चोंके रूमाल बना लेना, पैवन्द लगाना, रफू करना, चक्की चलाना, चरखा कातना, घरके रद्दी कागज गलाकर टोकरियां, डिब्बे बना डालना इनका प्रतिदिनका मनोरञ्जन था। निर्धन और विशेषतः विधवा गोटा-निवाड़ बुनकर, सिलाई और पिसाईसे अपनी जीविका चला लेती। जब हम सुनते हैं कि एक सिपाहीकी स्त्रीने, जिसकी आय आठ रुपये मासिक थी, बेटीको हजार रुपयेका दहेज दिया, तो आश्चर्य होता है। परन्तु पुराने ढङ्गकी स्त्रीके लिए यह असम्भव न था। एक तो वह चतुराईसे प्रतिदिनकी आवश्यकताओंमें किफायत करती, दूसरे उसके खर्च अधिक न थे। आभूषण बहुधा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते। वस्त्र और भोजन सादा। सारा कुटुम्ब एक जगह रहता। कोठी और खानसामांका किस्सा न था।

केवल दिखलावेका शिष्टाचार ही नहीं, उसकी प्रकृतिमें प्रेम, मिलनसारी, शुद्धता, अतिथि-सेवा और सौजन्य कूट-कूटकर पाया जाता था। स्वर्गीय हालीने इसी स्त्रीके सम्बन्धमें कहा है:—

नेकीकी तुम तसवीर हो इफ़्फ़तकी१ तुम तदबीर हो,
हो दीन२ की तुम पासबां३ ईमां४ सलामत५ तुमसे है।

इन अनमोल भावनाओंके अतिरिक्त उसका संसार केवल उसका घर था। वह पति और बच्चोंकी निःस्वार्थ सेवा ही अपना धर्म समझती और इसी विश्वाससे घरके वातावरण-को स्वर्ग बनाये रखती। आजकलकी नये विचारकी स्त्रीने इस बातका निश्चय कर लिया है कि जीवनके प्रत्येक विभागमें पुरुषके बराबर सिद्ध होकर रहूंगी। वह पुरुषको अपना प्रतिद्वन्द्वी समझती है और उसे पछाड़नेके लिए उसने अपना सब कुछ तज दिया है। स्त्री अब वही विद्या प्राप्त करती है, जो पुरुष करता है और उन्हीं कामोंकी तलाशमें रहती है। घर-गृहस्थी और मातृत्वको घृणाकी दृष्टिसे देखती है। पश्चिममें लड़कियां क्लब और होटलके जीवनको घरसे अच्छा समझ रही हैं। और यही बात भारतमें भी प्रचलित हो रही है।

पाश्चात्य देश इस क्रान्तिसे बहुत दुःखी हैं। छोटेसे छोटे परिवारकी देख-रेख भी सेविकाको सौंपकर मां नौकरीपर चली जाती है। प्रसिद्ध दार्शनिक मिलका मत है कि माताके समान कोई दूसरा उसके बच्चेकी देख-रेख नहीं कर सकता। वस्तुतः जो बच्चे बाल्यावस्थामें माताके आध्यात्मिक लाभ-से वञ्चित रहते हैं, उनसे भावी जीवनमें उच्च चरित्रकी आशा व्यर्थ है। यही राष्ट्रका विध्वंस है। गृह-स्वामिनीके लिए घरकी देख-भाल आय बढ़ानेकी अपेक्षा अधिक आवश्यक है; क्योंकि इससे यही होगा न कि एककी आय दूसरेकी ओर चली जायगी। अर्थात् पुरुष बेकार हो जायंगे और स्त्रियां रोजगार करने लगेंगी। यह सच है कि इस आन्दोलनने अभी पूर्वमें पूरी तरहसे जोर नहीं पकड़ा; परन्तु अभीसे इसकी रोक-थामके लिए चाहिए कि प्राचीनता-प्रिय महिलाके मत और अनुभवको आधुनिक लड़कीकी शिक्षा-पद्धतिमें सम्मानपूर्ण स्थान दे दिया जाय।

जिसे हम प्राचीन कहते हैं, क्या वह इसीलिए घृणाके योग्य है कि वह प्राचीन है? आज हम देख रहे हैं कि प्राचीन ही नवयुगका लक्ष्य है। वही पारस्परिक प्रेम, वही पुरानी सादगी और निष्कपटता आज इस नवीन नौकाका किनारा है। पुराने ढङ्गका मोटा गाढ़ा पहननेवाली अपनी सादगी और निष्कपटतामें नवीन रहन-सहनके दिखलावे और तक-ल्लुफसे कहीं अच्छी है। समाजकी आंधी कितने ही वेगसे उठे ये छायावाले वृक्ष अपने स्थानसे सरकनेवाले नहीं।

हवाये कूचये मशरिककी मौजें याद हैं मुझको।
वही थी मञ्ज़िले राहत वही रफ्तार अच्छी थी॥*

———

१.पवित्रता, २.धर्म, ३.रक्षक, ४.श्रद्धा, ५.सुरक्षित।

* "शाहकार" से अनुवादित।

नारी और उसकी वेशभूषा

श्री नारायण श्यामराव चिताम्बरे

आधुनिक नारीकी वेशभूषाकी ओर सशङ्कित नजरसे देखकर अधिकांश पुरुष-समाज बौखला उठा है। उसकी दृष्टिमें नारीका सम्मान गिर भी गया है। नारी जातिके सम्मानके प्रति यह उपेक्षा-भाव, यह अपमान न केवल बुरा है, वरन् भारतके उत्थानमें भी अवरोधक है। यह भूलना श्रेयस्कर न होगा कि नारी राष्ट्रकी जननी है। उसकी आत्मा है। पुरुष देशका शरीर है, तो स्त्री देशकी आत्मा। अपनी आत्माकी उपेक्षा करनेपर क्या कभी मनुष्य उन्नतिकी ओर अग्रसर हो सकता है? जब तक हम स्वयम् अपनी आत्माकी प्रतिष्ठा न करेंगे, उसमें तेजस्की कल्पना न करेंगे, उसकी पूजा न करेंगे, हमारा उत्थान होना सर्वथा असम्भव है। अपनी आत्माकी उन्नतिके लिए ही आध्यात्मिक ज्ञानका प्रयोग किया जाता है। भौतिक विज्ञान शारीरिक शक्ति-सम्पन्नताके लिए है; किन्तु शारीरिक सम्पन्नता, आध्यात्मिक उत्कर्षके बिना एकाकी है, लूली है, लंगड़ी है। जीवन हमेशा शक्तिहीन, चैतन्यहीन ही बना रहेगा। आध्यात्मिक उन्नतिके बिना शारीरिक उन्नतिका कोई महत्त्व नहीं है। जब तक आध्यात्मिक तपस्यासे आत्मा तेजवती, बलवती न होगी, मनुष्यका जीवन प्राणहीन रहेगा, इसीलिए स्वदेशके शरीर-रूपी पुरुष अपनी एकाकी उन्नति कर देशको स्वतन्त्र करनेका विचार करेंगे, तो वह हास्यास्पद होगा। नारी और पुरुषका संयोग ही जीवनमें रसकी सृष्टि करता है। उसकी आध्यात्मिक और शारीरिक उन्नतिका परिणाम ही ओजपूर्ण सन्तानकी प्राप्ति है। जब तक ये दोनों प्रवृत्तियां—आध्यात्मिक और शारीरिक—सबल रहती हैं, देशकी सन्तान परतन्त्रतामें रहना हरगिज बरदाश्त नहीं कर सकती।

इसीलिए एकाकी पुरुषके लिए, सामूहिक समाजके लिए, विशाल देशके लिए नारीकी सर्वमुखी आवश्यकता है। यही कारण है कि हमने उसे देशकी आत्मा कहा है। जब तक इस आत्माकी ज्योति प्रदीप्त रही, भारत प्रकाशमय रहा; किन्तु एक समय आया, जब कि इस ज्योतिपर आवरण डाल दिया गया, फलस्वरूप धीरे-धीरे हमारी अवनति होती गयी और सम्पूर्ण देशमें भीषण अन्धकार छा गया।

किन्तु स्थिति अधिक दिनों तक एक ही अवस्थामें नहीं रहती। वह परिवर्तनशील है, अतः आज भारतकी नारी भी जाग उठी है। उसकी चिरकालीन निद्रा टूट चुकी है। वह यह भी जान गयी है कि विश्वकी दौड़में भारतकी नारी बहुत पीछे रह गयी है। उसने यह भी सोचा कि वह हरगिज विश्वके किसी भी देशकी नारियोंसे पीछे नहीं रहेगी। वह प्रमाणित कर देगी कि अतीतमें जिस प्रकार उसकी माताओंने भारतका मस्तक ऊंचा किया था, वह भी उसी शानसे अपना जीवन सञ्चालित कर भारतका मस्तक ऊंचा बनाये रखेगी।

इसी पुनीत अभिलाषाको लिये वह अपने तमाम बन्धनोंको—जो पिछली अनेक शताब्दियोंसे उसको जकड़े हुए थे—तोड़कर उन्मुक्त पक्षीकी तरह दौड़ पड़ी है। और पुरुष-समाज, जिसने उसके संरक्षणका बोझ अनायास ही उठा रखा था, खीझ उठा है। उसकी प्रत्येक उन्नतिमें उसके स्वच्छन्द हो जानेकी वह कल्पना करता है। हृदयमें कलुषित भावनाओंको स्थान देकर उसकी ओर शङ्काकी दृष्टिसे देखता है। हम उनकी बात नहीं कहते, जो आधुनिक स्त्री-स्वतन्त्रताके पक्षपाती हैं, जिनकी दृष्टिमें स्त्रीकी उन्नति वाञ्छनीय है। हम तो उस सर्वसाधारण पुरुष-समाजके सम्बन्धमें लिख रहे हैं, जो इसका तीव्र विरोध करता है और जिसकी दृष्टि स्त्री-स्वतन्त्रताके सम्बन्धमें न्याय्य नहीं है।

स्त्रियोंकी उन्नतिके सभी अङ्गोंपर विचार करना आज हम नहीं चाहेंगे। उनपर जो आजकल फैशनका अभियोग लगाया जा रहा है, उसीके सम्बन्धमें हम अपने विचार प्रकट करेंगे।

प्रत्येक युगमें अपनी एक विशेष वेशभूषा रही है' जो सर्वप्रथम फैशनके रूपमें ही प्रचलित होती रही, तत्कालीन समाजने उसका सानन्द स्वागत नहीं किया। वह तो समाजके सम्पूर्ण विरोधमें ही पनपती रही और फिर सर्वसाधारणकी चीज बन गयी। आदिम युगसे लेकर आज तककी उन्नतिका यही क्रम रहा है। धर्मकी उन्नतिको ही लीजिये,

धर्मके नये तत्त्वोंको उस समयके समाजने तत्काल ही नहीं अपनाया। घोर विरोध हुआ है, तब कहीं जाकर समाजमें वे तत्त्व समरस हो सके।

इसी तरह वेशभूषाका भी एक क्रम रहा है। बल्कल पहननेका युग समाप्त हुआ, वस्त्र आये और उन वस्त्रोंके अनेक रूप प्रचलित हुए और उनको पहननेके अनेक तरीके भी निर्माण हुए।

इससे पूर्व कि हम आजकी वेशभूषापर विचार करें, उस वेशभूषाकी कुछ चर्चा करना चाहते हैं, जो अतीतमें किसी युगकी विरासतके रूपमें आधुनिक नारीको मिली थी। उसका प्रचलन कब हुआ, इसका विवेचन करना समयका दुरुपयोग होगा। किन्तु यह अवश्य है कि उसका जो रूप हमने पाया और जिसे पुरातन समझकर आजकी नारियां छोड़ बैठी हैं, वह भी किसी समय, जब कि वह प्रचारमें आयी थी, फैशनके रूपमें ही समझी गयी होगी और उसका विरोध भी हुआ होगा।

हमारा विश्वास है कि नारीकी यह वेशभूषा जिस युगमें पनपती रही, उस समय वह स्वतन्त्र नहीं थी, न उसे अपनी बुद्धिका उपयोग करनेकी स्वतन्त्रता ही थी। फैशनमें परिवर्तन होता गया, नये-नये फैशनका चलन भी होता रहा; परन्तु आज-जैसा बवण्डर उस समय न उठा होगा। फैशनमें जो परिवर्तन होता रहा, वह चहारदिवारीके भीतर और वह भी पुरुष-समाजको रिझानेके लिए ही। बन्दी नारीके अपने इच्छानुसार उस समय अपनी वेशभूषामें कुछ थोड़ा परिवर्तन करनेपर पुरुषोंकी दृष्टि अवश्य ही वक्र हुई होगी; किन्तु दूसरी ओर उन्हें यह भी सन्तोष था कि वह बन्दी है, और जो कुछ करती है, वह हमारे लिए ही है, अतएव उनके आन्तरिक भाव वक्र-दृष्टि तक ही सीमित रहते थे, विस्फोट नहीं हो पाता था।

वर्तमान युगसे सटा हुआ युग, विलासिताका युग रहा है। मुसलमानोंके शासन-कालमें भारतीय संस्कृतिकी उन्नति तो क्या, उसकी रक्षा ही बड़ी मुश्किलसे हो सकी है। मुगल-कालीन मुसलमानोंकी विलासिताके प्रभावसे तत्कालीन हिन्दू-समाज भी अछूता न रह सका। विदेशी राजाके विदेशी साहित्यका प्रभाव भी उस समयके साहित्यपर पड़ा और साहित्यके प्रभावसे समाजमें भी विलासिताकी अमिट छाप लग गयी। नारी विलासिताकी सामग्रीमें प्रथम समझी जाने लगी और पुरुषकी एकमात्र इच्छापर —सङ्केतपर--नाचते रहना 'नारी-धर्म' की परिभाषा बन गयी। उस समयकी चित्रकला देखिये, नारीका जो रूप हमने पाया, उसमें विलासिताकी गन्ध है, उन चित्रोंको देखनेपर आज भी हमारी आंखोंमें एक उन्मत्त-सी रेखा दौड़ जाती है। हम सोचते हैं कि नारीका इतना विकृत रूप अतीतके किसी भी युगमें न रहा होगा। तत्कालीन ब्रजभाषाके कवियोंने भी अलङ्कार-विभूषिता जिस नारीका रूप पेश किया है, उससे भी हमारे कथनकी पुष्टि होती है। अलङ्कारोंकी जगमगाहट, पैंजनोंकी रुनझुनाहट, मेहंदीकी लाली, कमरका पतलापन, शङ्खाकृति गर्दन, उरोजकी दृढ़ता, नयनोंकी चितवन आदि मद-भरे शब्दोंके बाह्याडम्बरमें नारीका सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् रूप छिप गया। कन्याके सत्य रूपसे परिवर्तित नारी और नारीके शिव रूपसे बना माताका सुन्दर रूप विस्मृत कर दिया गया। कन्या और माताके रूपको भूलकर पुरुष नारी-उपासनामें ही तल्लीन रहे। वह उपासना भी कैसी, वासनासे सनी और विलासितासे भरी।

इस भीषण युगसे आजकी नारीका जन्म हुआ है। जब वह जागी, जब उसे अपनी अवस्थाका भान हुआ, तो उसने देखा, वह बहुत ही नीचे धरातलपर है। विरासतके रूपमें उसने अपनी जिस अवस्थाको, जिस रूपको पाया, वह उसे सन्तोष और तुष्टि न दे सका, उसके हृदयमें अपार दुःख और असीम करुणाका समुद्र बह उठा। उसने सहारा चाहा, तिनकेका ही सहारा, कुछ भी आधार मिले और वह अपनी इस गिरी अवस्थासे कुछ तो ऊपर उठ सके। भारतकी पुरातन संस्कृतिसे वह अपरिचित थी, न उसका स्पष्ट रूप समाजमें प्रचलित था। जो रूप था, उससे उसे घृणा-सी हो गयी थी, तब उसका ध्यान पश्चिमी सभ्यताकी ओर गया। उसमें उसने अपनी उन्नतिके बीज पाये और वह बुभुक्षितकी तरह उधर ही दौड़ पड़ी। आजकी नारीके अन्तरतम विचारोंमें क्रान्तिकी जो झलक हम पा रहे हैं, वह पश्चिमके संसर्गसे ही है, यह एक ऐसा सत्य है, जिससे इनकार नहीं किया जा सकता।

प्रश्न किया जा सकता है कि जब मुगलकालीन सभ्यताके बन्धनोंसे छूटकर नारी पश्चिमी सभ्यतामें फंस गयी है, तब भारतीय संस्कृतिकी रक्षा कैसे सम्भव है?

बात सही है, इसे मानना ही होगा, साथ ही हमें भारतकी मुगलकालीन परिस्थिति और आजके भारतकी अवस्थापर भी विचार करना होगा। मुगलोंके साम्राज्यमें, जब कि वह उत्कर्षके शिखरपर पहुंच गया था, भारतके हिन्दू गुलामीमें सम्पूर्णतया फंस गये थे। मुगलोंके एकछत्री साम्राज्यके नीचे उन्होंने अपनेको सुरक्षित समझ लिया था, राजा ईश्वरका रूप है, इस अपनी भोली भावनाके भरोसे सर्वसाधारण जनता मुगल सम्राटोंको ईश्वरका अंश मानने लगी थी। इतिहास पढ़नेवाले जानते हैं कि महाराणा प्रतापको सफलता न मिलनेके जो कारण हैं, उनमें यह भी एक है। पुरुषोंमें ही जब ये भावनायें थीं, तब स्त्रियोंकी भावनाओंपर विचार करना ही व्यर्थ है। वे तो बेचारी चहारदिवारीमें बन्दीकी तरह जीवन बिता रही थीं। पुरुषोंको रिझाना ही अपना कर्तव्य समझती थीं। पतिके विरुद्ध पत्नी विरोध कर सकती है, यह भावना ही पापमूलक थी। तब क्रान्तिकी बात करना ही व्यर्थ है।

हां, राजकीय व्यवहारमें अवश्य ही तीन-चार नारियोंने अभूतपूर्व काम किया है; किन्तु वे अपवाद हैं और अपवाद सिद्धान्त नहीं होते, अतएव उनकी उन्नतिको नारीकी सर्वाङ्गीन उन्नति कहना भारी भूल होगी।

ठीक इसके विरुद्ध आजके भारतकी परिस्थिति है। आज प्रत्येक दिशामें क्रान्तिकी वेगवती धारायें प्रवाहित हो रही हैं, तब नारी जातिकी उन्नतिकी भावनाओंमें भी क्रान्ति होना अनिवार्य है। आज जिस विराट् और विस्तृत रूपमें नारी-जागरणकी सफलता हम देख रहे हैं, पिछली अनेक शताब्दियोंसे हम नहीं देख सके। आजकी नारी बन्दी नहीं है। पिंजरेसे मुक्त हो गयी है, पर फैलानेका अवकाश उसे मिल गया है, शिक्षाके प्रभावसे उसकी बुद्धि तीव्र होकर उसमें ज्ञानका समावेश हो रहा है। अन्धपरम्परा अब उसमें नहीं रह गयी है। आंधीमें दौड़ पड़ी थी, ठोकरें भी खा चुकी है। रास्ता भी भूली, संभलती भी जा रही है। आघातोंको सहकर वह दिन-ब-दिन अधिक विचक्षण हो रही है। बिना छेनीके घाव खाये क्या पत्थर मूर्ति बन सकता है? और इसका स्वाभाविक परिणाम, भावी नारीकी जो अभिनव मूर्ति निर्माण होगी, उसमें मिलेगा। भावी नारीका रूप होगा, आजकी नारीका त्यागमय तपस्याका उज्ज्वलतम रूप।

आजकी नारीने पश्चिमी सभ्यताका अन्धानुकरण नहीं किया है। उसने भारतीय संस्कृतिको नहीं भुलाया है। भारतकी परतन्त्रता उसके हृदयमें शूल-सी चुभ रही है। उसे यह भी ज्ञात है कि वह माता है और उसकी कोखसे जने, गोदीमें पले और आंगनमें खेलनेवाले लाल ही भारतकी शृङ्खला तोड़ेंगे। वह पश्चिमके प्रभावसे प्रभावित जरूर हुई है; किन्तु उस प्रभावमें वह बह नहीं गयी। हम तो उसका पतन तब कहते, जब वह पूर्णतया पश्चिमकी वेशभूषाको अपनाकर पूरी 'मेम' बन जाती। आप जरा आधुनिक नारीकी वेशभूषाकी ओर देखिये, उसने भारतीय ढङ्गसे ही अपनी वेशभूषामें परिवर्तन करके उसे कलात्मक रूप दिया है। उस रूपमें हमें उनकी आन्तरिक भावनाओंका भी पता चलता है। आजकी नारीका रूप प्रशान्त है। न उत्तप्त है, न मद-भरा, न विलासमय। स्वच्छ, सफेद, सादी साड़ी, रेशमी होगी, तो वह भी सादी, एक-दो बारीक-बारीक सोनेके गहने, हाथमें एक-दो चूड़ियां, पांवमें चप्पल और बालोंकी आकर्षक बनावट। यही आजकी नारीकी सर्वसाधारण वेशभूषा है।

इतना सादा और प्रशान्त रूप होनेपर भी आज उनपर फैशनका अभियोग क्यों लगाया जा रहा है? इसपर भी विचार करना अनुचित न होगा।

इसके अनेक कारण हो सकते हैं। किन्तु हमारे विचारसे प्रमुख कारण दो ही हैं। एक तो यह कि उसने सारे पुरातन आभूषणोंको एकदम छोड़ दिया है। एक भी पुराना अलङ्कार उसे पसन्द नहीं। न पुराने तरीकेके वस्त्र उसे पसन्द हैं, न उन्हें पहननेके तरीकोंसे उसे प्रेम है। उसने अपनी वेशभूषामें आमूल परिवर्तन कर एक नया ही वेश—एक अभिनव पहनावा, अपने योग्य, अपनी इच्छाके अनुरूप बना लिया है। उसमें कला है, आकर्षण है और भारतीय संस्कृतिकी रक्षा भी। किन्तु सामान्य जनताको नारीका यह परिवर्तन नहीं सुहाता। पुराने खयालकी बूढ़ी स्त्रियां तो इसे 'धर्मका विनाश' कहती देखी गयी हैं। और चूंकि सदियोंसे पुरुषोंकी इच्छापर नाचनेवाली नारी सर्वथा उन्मुक्त होकर अपने इच्छानुसार वेशभूषामें परिवर्तन करती है, तो वे उसे 'उच्छृङ्खल' नाम दे देते हैं।

दूसरा कारण है इस वेश-भूषाका आकर्षण। इस वेशभूषाको अपनानेका तरीका इतना सुन्दर है कि मनुष्यका

ध्यान बरबस उधर दौड़ जाता है। आकर्षण बुरा नहीं है। कलाकी वह सार्थकता है। प्रकृतिकी देनमें भी आकर्षण है। जो भी वस्तु हमने इस प्रकृतिसे पायी है, उसमें भी एक अभिराम आकर्षण है। प्रकृतिने हमें फूल दिये हैं, कैसा आकर्षण है उनमें, हमारी आंखें एकदम प्रसन्न हो उठती हैं, हम आनन्दमें विभोर हो उठते हैं, प्रसन्नतासे खिल पड़ते हैं, इसलिए कि प्रकृतिने अपने हृदयकी पवित्र भावनाओंसे प्रेरित होकर हमारे लिए एक कलात्मक आकर्षण निर्माण किया, हमारे दुःखोंको भुला दिया और हम क्षण-भरके लिए दीन-दुनिया भूल गये, प्रकृतिकी कला सार्थक और सफल हो गयी। अतएव आकर्षण बुरा नहीं है। पुरुषके जीवनमें नारी अपने इस आकर्षणके बलपर ही तो इसकी सृष्टि करती है। आधुनिक नारीने भी इस आकर्षणको सजीव रखनेके लिए अपनी अस्वाभाविक पुरातन वेश-भूषा छोड़कर, उसमें अनेक उचित परिवर्तन कर, उसे स्वाभाविक बनानेकी ओर भरसक ध्यान दिया है। वेश-भूषा परिधान करनेकी उनकी अपनी एक विशेष कला है, और कलात्मक ढङ्गसे उसे सर्व-प्रथम सजाया है। वह वेश-भूषा सादी है, स्वच्छ है, फिर भी नयनाभिराम है। आकर्षणमयी है, फिर भी भारतीय है। किसी देशकी जूंठन वह नहीं है, पुरानी होकर भी नयी कलाका उसमें सृजन है। हमें उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिए। उसमें सादगी है, स्वच्छता है, प्रतिभा है, आकर्षण है, जीवनके लिए ये बातें आवश्यक हैं और वे उसमें हैं।

आश्चर्य तो यह है कि नारीपर फैशनका अभियोग लगानेवाले पुरुषोंने ही वास्तवमें अपनी वेश-भूषा छोड़ विदेशी वेश-भूषाको पूर्णतया अपना लिया है। परन्तु भारतकी नारी भारतीय ही रही है, इस कलात्मक ढङ्गसे कि अनेक पश्चिमीय रमणियां उनकी इस वेश-भूषापर मोहित होती देखी गयी हैं। कभी-कभी उसे अपनाकर खुश होती देखी गयी हैं।

पश्चिमी वेश-भूषाने अखिल जगत्‌को मोह लिया है। सभी देशोंके स्त्री-पुरुषोंने उसे निःसङ्कोच अपना लिया है। अपवाद है सिर्फ भारतीय नारी, उसपर उसका जादू न चल सका। क्या यह हमारे लिए गौरवकी बात नहीं है?

निस्सन्देह क्रीम, लिपस्टिक आदि आधुनिक सौन्दर्य-वृद्धि या फैशनकी वस्तुओंका उपयोग करना भारतकी इस निर्धनताके समयमें हानिकर है, जब कि हजारों मा-बहिनें भूखों मर रही हैं। हो सकता है, आरोग्य और स्वच्छताकी दृष्टिसे ये लाभदायक और आवश्यक हों, फिर भी भारतकी दरिद्रताकी ओर दृष्टिपात करके इन चीजोंका व्यवहार न होना ही अच्छा है।

अभी तो भारतीय नारी संक्रमण-कालसे गुजर रही है। ज्यों-ज्यों शिक्षाका प्रचार होगा, अपनी स्थितिसे वह परिचित होगी, भारतकी वास्तविक अवस्थाके निकट पहुंचेगी, ये सारी बातें बन्द होती जायंगी। यह निर्विवाद है कि ज्ञानका उदय होनेपर अज्ञानका अन्धकार अपने-आप नष्ट हो जायगा।

क्या अब कहनेकी आवश्यकता रह गयी है कि आधुनिक नारीकी वेशभूषा भारतीय कलाका एक नूतन, उत्कृष्ट और प्रशान्त रूप है।

मैं रेलपर चढ़ी थी....

बेगम अशरफ़ 'सुबूही'

मैं तो औरत जात, परदेमें बैठनेवाली ठहरी। मेरा तो जिक्र ही क्या है। तकदीर जिसके पल्ले बंधी, वह भी ऐसे घर-घुसने हैं कि बाहर जानेके नामसे दुश्मनोंका बुरा हाल हो जाता है। दस बरससे खासे तीस रुपयेके नौकर थे। साहबने कहीं बाहरकी बदली कर दी। बस फिर क्या था। दफ्तरसे जो आये, तो बुखार चढ़ आया। दस्त आने लगे। अम्माजीने जो सुना, तो सारा घर सरपर उठा लिया—"आग लगे ऐसी नौकरीको! निछावर किये थे ये तीस रुपल्ली। बड़ा आया परदेश भेजनेवाला! बन्दीका एक तो फूंसड़ा है। ना बाबा, मुझे अपने बच्चेकी जान प्यारी है, रोजगार प्यारा नहीं।" आखिर साहबको भी जिद हो गयी। या वह बाहर जायं या नौकरीसे हाथ धोयें। मैं क्या समझाती, मेरी रूह सफरसे खुद कांपती थी। वह जाते, तो मुझको भी जाना पड़ता। गरज यह कि नौकरी छूट गयी। वह तो कहिये कि ईश्वरकी दयासे पिताजी पांच-सात मकान छोड़ मरे थे, जो गुजारा चल रहा है और अब हम दो मियां-बीबी और एक छः बरसका बच्चा कुल तीन दम हैं। भगवान् दाल-रोटी दिये जाते हैं, आरामसे खा लेते हैं।

तीस सालकी उनकी उम्र है और मैं बच्चेवाली हो गयी हूं। मगर बहन, चार कदम डोलीपर भी जानेका हियाव नहीं पड़ता। एक-दो दफा हिम्मत करके उनसे कहा भी कि जरा विश्वनाथ बाबाके दर्शनके लिए जानेको जी चाहता है। बद्रीनाथ, केदारनाथ हमारे भाग्यमें कहां। जीते जी उनके दर्शन तो कर लें। लेकिन बहन, वहां जानेके लिए रेलमें बैठना पड़ता है। इतनी हिम्मत न उनमें है और न मुझमें! जब लोगोंसे रेलके तमाशे और दूसरे शहरोंकी बहार सुनते हैं, तो उनके मुंहमें भी पानी भर आता है और मैं भी चाहती हूं कि एक बार तो जरूर रेलपर बैठें। अव्वल मरना आखिर मरना, फिर मरनेसे क्या डरना। सारी दुनिया रेलमें बैठती है। बूढ़े, बच्चे, जवान सभी। रोज रेल जाती है, आती है। क्या हमींको रेल खा जायगी।

बहन, इत्तफाक तो देखो। गये इतवारको वह बाहरसे आये, तो उनके हाथमें एक गुलाबी रङ्गका कागज था। मुझे दिखाकर कहने लगे—"लो, तुम्हारी प्रार्थना भगवान्ने सुन ली। मामाजीका दिल्लीसे तार आया है, कैलाशको घोड़ी चढ़ायेंगे। हम दोनोंको बुलाया है।" मेरे पांव-तलेसे जमीन निकल गयी। भौंचक होकर पूछने लगी—"यह प्रार्थना सुनी है या मेरी मौत भेजी है। मुझे तो माफ करो, तुम बरसोंसे रेलके लिए तड़प रहे थे। ईश्वरने यह दिन दिखाया है, तो हंसी-खुशी जाओ।"

वह—"और तुम नहीं चलोगी?"

मैं—जान सुखानेसे क्या फायदा? जी भर गया हो, तो एक बार ही गला घोंट क्यों नहीं देते।

वह—हमेशा कहा करती थीं कि हे भगवान्, रेल कैसी होती है जो दुनिया-भरको दिन-रात लिये फिरती है। अब जो भगवान्ने यह दिन दिखाया, तो इनकार करती हो। अजब किस्मकी औरत है। डर काहेका। एक जरा हिच-किचाहट है। मैं कहता हूं कि तुम्हारी वजहसे मैं भी रेलपर बैठ लूंगा।

मैं—तुम मर्दकी जात हो। जबसे नौकरी छोड़ी है, मर्दों-में उठना-बैठना होता है। तुम्हारा दीदा मोटा हो गया है। जाओ, शौकसे जाओ! मैं मना करती हूं? चाहो तो लल्लूको भी साथ ले जाओ। मगर मुझे न सताओ। और मुझसे जी भर गया हो, तो वैसा कहो। मुझमें तो यह बूता नहीं है कि इस निगोड़ी काली देवनीके चंगुलमें फंसूं। सुना है, मुई आंधीके झोंके लिये चलती है। पेड़ नहीं सूझते, जमीन चक-राती नजर आती है। मेरी जान ही निकल जायगी। आग लगाऊं ऐसी सैरको, झुलसा दूं ऐसे सफरको।

वह—और मेरी जानको तुमने जान ही नहीं समझा है। अरी नेकबख्त, मरेंगे तो दोनों साथ ही मरेंगे।

मैं—लेकिन किस बिरतेपर हां करूं? आखिर तुमको ऐसी क्या पच आ पड़ी है। तुम न जाओगे, तो क्या मामाजीके लड़केका ब्याह ही न होगा?

वह—हमारे जाने-न-जानेसे होता ही क्या है? लेकिन

समझो तो सही। हमें भी इसी दुनियामें रहना-सहना है। हमारे आगे भी ईश्वरकी दयासे एक लड़का है। उसका ब्याह तुमको करना है या नहीं। अगर हम किसीके मरने-जीने, शादी-गमीमें शरीक न होंगे, तो हमारे यहां आकर कौन थूकेगा। भाई-बन्दोंके दमसे ऐसे मौकोंकी रौनक होती है। यह तो मिलनेसे मिलना होता है। तुम उनके यहां जाओ, वह तुम्हारे यहां आयें। अच्छा, नहीं जातीं, न जाओ, मैं भी नहीं जाता। फिर अगर लल्लूके ब्याहमें कोई न आया, तो मुझे न दोष देना, टेढ़ये बहाने न बैठ जाना कि हाय-हाय हमारा कोई नहीं है।

मैंने दिलमें कहा, बात तो ठिकानेकी कहते हैं। राह-रस्म निभाये बगैर दुनियामें रहना मुश्किल है। मगर बदनमें सनसनी फैलने लगी। पड़ोसमें किसीको बाहर जाते सुन लेती हूं, तो कलेजा मुंहको आने लगता है। शहरके शहरमें जब कभी डोलीमें बैठती हूं, तो वहमका तांता लग जाता है। मुए कहार कहीं और न ले जायं। कहीं किसी गाड़ी-बग्घीसे डोली टकरा न जाय। जरा-सा झटका लगा और मेरे दमपर बनी। वह मुई मोटर-वोटर क्या बला है, उसकी पों-पोंसे तो मेरी रूह कांप उठती है। बहुतेरी हिम्मत करती थी, लेकिन हौलपर हौल चले आते थे। जब बहुत देर हो गयी, तो वह बोले—"जवाब दो—फिर मुझे इन्तजाम करना है।"

मैं—क्या खाक जवाब दूं, मैं तो कहती हूं कि किसी बहानेसे टाल दो।

वह—टालनेकी बात होती, तो मैं कभीका टाल देता। मां मरे, मौसी जिये। एक मामाका दम। वह इस चावसे बुलायें और मैं न जाऊं! मुझसे तो इनकार नहीं हो सकता।

मैं—मैं जानती हूं कि मेरी शामत आयी है। खैर, तुम अपनी जिद पूरी कर लो। यह समझ लो कि मेरा तो कुछ जायगा नहीं, ढेर होकर दिल्ली पहुंचूंगी, फिर तुम्हीं हाथ मलोगे।

घबराये हुए तो वह भी थे। उनका इतना हौसला कब था कि हंसी-खुशी तैयार हो जाते सफरको। मैं देख रही थी कि उनके चेहरेपर एक रङ्ग आ रहा था, एक जा रहा था। उन्होंने जबर्दस्ती अपनेको मर्द बनाकर झूठी मुस्करा-हटके साथ मेरी तरफ देखा और बोले—"बस, तो तय हो गया न? अब सामान बांधना शुरू कर दो। रातकी गाड़ीसे ईश्वरने चाहा तो रेलपर सवार हो जायंगे।"

मैं हक्की-बक्की उनकी शक्ल देख रही थी कि हे राम, अब क्या होगा। इनके हाथों मेरा लिखा पूरा होना है। अच्छा, अगर यों ही आयी है, तो कौन टाल सकता है!

वह—सुनती हो, रातको रवानगी है।

मैं—अच्छा, तुम तो मेरे लिए काल ही हो गये।

वह—मैं तुमको जता रहा हूं, कहीं भूल न जाओ।

मुझपर तो गोया बिजली गिरी हुई थी। होश किसे था कि कुछ कहती। जब यह सुनाने आये थे, तो मैं तरकारी बना रही थी। हंडिया चूल्हेपर और मैं रेलके चक्करमें। अब जो तरकारी जलनेकी नाकमें बू आयी, तो घबराकर देखा! बहन, तरकारी तो जलकर खाक हो गयी थी और मसालेकी धांस नाक फाड़े डाल रही थी। आग ही तो लग गयी। वह होते तो दिखाती कि लो, यह तुम्हारे सफरकी शुरूआत है। खाओ या न खाओ, मुझसे तो अब चूल्हा फूंका नहीं जाता। मगर मैं भी भूखी थी और झुंझलाई भी। पतीलीको आंगनमें दे मारा, लकड़ियां मोरीमें डाल दीं। कर्छीसे जो राख खींची, तो चूल्हेका एक पाखा नीचे आ रहा। गरम-गरम राख उड़कर आंखोंमें गयी, चिनगारियां पावोंपर पड़ीं। बहन, क्या पूछती हो कि मेरा क्या हाल हुआ।

पड़ोसमें मेरी एक हमउम्र लड़की रहती है। बड़ी सीधी, बेहद काली! वह गरीब अक्सर मेरा हाथ बंटाने आ जाया करती थी। उस दिन भगवान् जाने, उसे भी क्या हो गया था कि वह भी न आयी। मैंने सारा धन्धा अपने हाथों किया। अब जो मुझ कम्बख्तपर यह बिपता पड़ी, तो फिर मैंने उसको पुकारना शुरू किया—"अरी छम्मो, ओ छम्मो! बहन छम्मो, इधर तो आ!" इतनेमें छम्मोने खिड़की खोलकर झांका। भाग फूटे कि वह भी मुझको जलाने लगी। मुस्कराकर बोली—"दीदी, तुम तो जानको आ गयीं। मैं कोई तुम्हारी खरीदी हुई लौंडी हूं? नहीं आते, कर लो जो तुम्हारे जीमें आये।" और खिड़कीमेंसे निकलकर ऐसा कहकहा लगाया कि मैंने खिसियानी होकर जवाब दिया—"चूल्हेमें जाय तेरी जान! भला बतला तो सही, सवेरेसे यह वक्त आ गया, चीखते-चीखते निगोड़ा गला बैठ गया, मगर क्या मजाल कि छम्मो रानीके कानोंपर जूं भी रेंगी

हो। आखिर ये नखरे बघारनेकी क्या सूझी। मैं भी तो सुनूं। कहांकी रानी बन गयी? किस लखपतीसे ब्याह रचाया है? हम तो बुलायें 'बहन छम्मो, छम्मो रानी'—उहूं—और एक ये हैं कि अकड़ी ही चली जाती हैं, मिजाज ही नहीं मिलता! अब भी क्यों आयीं? मैं खटियापर पड़ जाती, तो आतीं, मुझे पीटने आतीं—मेरे नामको रोने आतीं।"

छम्मो—दीदी, आज क्या खरहरी चारपाईपर सो गयी थीं या कहीं बिल्ली लांघनेमें आ गयी थी·········ओह, अब समझी, जीजाजीसे कुछ हुई है!

मैं—मर मुई! तुझे अठखेलियां सूझी हैं और यहां जानपर आ बनी है। एक तो सफरकी आफतने अभीसे मेरी गत बनानी शुरू कर दी है। ऊपरसे यह टांग बराबरकी लौंडिया भी मेरे मुंहको आने लगी है।

छम्मो—उई दीदी, तुम तो सचमुच मेरी जानको आ गयीं। मैंने ऐसा क्या कह दिया! वाह भई वाह! हमारा तो दीदी-दीदी कहते मुंह सूखा जाता है और यह टांग बराबरकी लौंडिया बनाने लगीं। अच्छा भाई, मैं बुरी ही सही! मगर यह तो बताओ कि सफर कैसा? क्या कहीं जा रही हो?

खैर, किस्सा तो बहुत लम्बा है, कहां तक कहूं! वह मेरा मजाक उड़ाती रही और मैं खिसियानी होकर बुरा-भला कहती रही। लेकिन शाबाश छम्मोको, कि दम-भरमें सब सामान कर दिया। नये सिरेसे चूल्हा ठीक किया, आग सुलगायी, अपने भाईसे सौदा मंगाया, दिनके लिए आलू-मेथीका साग पकाया और सफरके लिए तरतराते हुए पराठे और मसाले-भरे करेले तले। बिस्तर-बन्दमें बिछौने लपेटे, उनकी जरूरतकी चीजें समेटीं, घरका असबाब कोठरियोंमें बन्द किया। गरज कि उनके हुक्मके मुताबिक चार बजेसे तैयार होकर बैठ गयी। ऐसा मालूम होता था कि कयामतका इन्तजार है। छम्मो मेरे पास बैठी मेरा मुंह तक रही थी और मैं तुलसीकी माला हाथमें लिये न जाने कुछ पढ़ भी रही थी या यों ही खटाखट दाने खिसक रहे थे।

पांच बजनेकी देर थी कि उन्होंने ड्योढ़ीमें घुसते ही पुकारकर कहा—"लो उठो, इक्का आ गया है, जरा घूंघट-चद्दर अच्छी तरह ओढ़-लपेट लेना।" बस बहन, मुझको सन्नाटा-सा आ गया। उन्होंने ट्रङ्क, गठरियां-पोटलियां, बिस्तरोंका बण्डल इक्केपर रखा, फिर सहारा देकर मुझे बिठाया। मेरी गोदमें लल्लूको ठूंसा। आगे आप बैठे, परदा डाला और इक्का चला। बहन, इक्का मैंने देखा तो था, पर बैठी कभी नहीं थी। अब तो भगवान्‌ने उन्हें उड़ा दिया है और खूब हुआ कि यह गारत हो गये। बहन, इक्केपर सवार होना कोई ऐसा-वैसा काम नहीं। हिचकोले जो लगने शुरू हुए, तो ऐसा मालूम होता था कि अमन-चैन आ गया। जामुनोंकी तरह घुल रही थी। पहियोंकी चूं-चूं, छतरीकी टक्करें, मेरा तो दिमाग उड़ गया। गठरी-मुठरी संभालती थी, तो अपनी गत बनी जाती थी। अपने तईं संभालनेको डण्डे पकड़ती थी, तो कभी पिटारी उलट जाती और कभी कोई पोटली गिरने लगती। बेचारा लल्लू अलग झटकोलोंसे परेशान होकर रोये देता था। फिर इक्केवालेकी हरकतें! राम राम, मुएकी जबान थी कि गन्दा नाला। कम्बख्तका न हाथ थकता था, न मुंह! बीबी, वह गालियां सुनीं कि मेरे बाप-दादोंने भी न सुनी होंगी।

राम-राम करके रास्ता कटा और इक्का राजाकी मण्डी स्टेशनपर पहुंचा। अब उतरूं तो क्योंकर! गठरियोंमें एक गठरी मैं भी थी। बीर-बहोटीकी तरह पञ्जे सिकोड़े। आखिर उन्होंने बड़ी मुश्किलोंसे उतारा। अब जो घूंघटकी ओटसे देखती हूं, तो चारों तरफ आदमियोंके ठठके ठठ लगे हैं। उधर लाल-लाल कुरते पहने हुए मजदूरोंने आ घेरा। कोई गठरी खींचता है, कोई पिटारी उठाये लेता है। कोई मुझसे आकर पूछता है—"कौन-सी रेलमें बैठोगी?" कोई उनके सर है कि पहले मैंने असबाब उतारा है, और मेरा हाल यह है कि मरी जा रही हूं। पसीनेपर पसीने चले आते हैं। उधरसे एक मुआ धक्का देकर निकल गया, इधर मुई कोई गंवारिन अपने बोरियेमें मेरी चद्दर उलझाकर खींचे लिये जाती है। लल्लूके छुट जानेका अलग खयाल! वह भी हक्का-बक्का कि क्या करें? दिल ही दिलमें कटे जा रहे थे, मगर ऊपरसे अपनी मर्दुमी भी दिखाते जाते थे। गरज, इसी तरह चद्दर नुचवाती, कुहनियां खाती उनके पीछे-पीछे मुसाफिर-खानेमें पहुंची। यहांकी भीड़का क्या कहना! जैसे पाल पड़ी हो। तिल धरनेकी जगह न थी। औरत, मर्द, बच्चे ऊपर-तले भरे पड़े थे। वह गुल था कि मेरे कानोंके परदे फटने लगे। अब जो फिरकर देखा, तो वह गायब। बच्चा

अलग खड़ा बिसूर रहा है। हे राम, यह क्या हुआ, वह कहां चले गये। अरे लल्लू, देख तो सही। तेरे बाबूजीको जमीन खा गयी या आसमान ले गया। है है...मैं तो रेलमें बैठनेसे पहले ही लावारिस हो गयी। जी चाहा कि घूंघट खोल, बाल नोच डालूं और अगर वह न आ जाते, तो दीवानी ही हो जाती। उन्होंने आते ही कहा—"हाय, तुम्हें क्या हो गया। मैं तो टिकट लेने गया था। घबरानेकी क्या बात है। लो चलो, गाड़ी आनेवाली है।" कुलीने असबाब उठाया और हम तीनों फिर चले। बहन, यह रास्ता बड़ा कठिन था। लोहेके जंगलोंके बीच एक जरा-सी फांक थी, उसीमेंसे आदमी आ-जा रहे थे। एक मदुआ काला कोट पहने फाटकपर खड़ा था। सिपाही भी चीख-चिल्ला रहे थे कि मरे क्यों जाते हो—धक्कमधक्का क्यों करते हो? लेकिन क्या मजाल कि लोग बाज आयें। एकपर एक गिरा पड़ता था। वह तो कहो कि एक भलेमानुसने लल्लूको रोता देखकर गोदमें उठा लिया, नहीं तो उसका कचूमर ही निकल जाता। मुझे पता नहीं कि वह भला आदमी कौन था, रेलवाला या कोई मुसाफिर।

अब हम गिरते-पड़ते वहां आये, जहां रेल आकर खड़ी होती है। यहां भी मुसाफिरोंका जमघट था। बहार तो खूब थी। तरह-तरहके आदमी दिखाई देते थे। सौदा बिक रहा था। वह फिर कहीं चले गये। मुझे रेल-सेल कुछ नहीं दिखाई दी। लल्लूके चुटकी लेकर कहा—"जरा उस कुलीसे तो पूछ कि रेल कहां है और वह किधर गये?" कुली भी मेरी दीवानी बातोंपर हंस दिया और बोला—"भाई, इतनी बेसुध क्यों हुई जाती हो? बाबू किसी कामसे गये होंगे, अभी आ जायंगे। रेल भी दस मिनटमें आती है, वह देखो सिगनल हो गया है।" मैंने फिर लल्लूसे कहा—'पूछ, सिगनल क्या बला है?' कुलीने इशारेसे बतलाया। मैंने घूंघटको जरा दो उंगलियोंसे ऊंचा करके देखा—"यह मुआ सिगनल कहलाता है। सर टिड्डी-जैसा और बाकी रंगा हुआ तख्ता।" लल्लू बोला—"अम्मां, देखो तो, इसकी एक आंख लाल और एक आंख हरी है।"

इतनेमें वह भागते हुए आये कि गाड़ी आ गयी। कुलियोंने जल्दी-जल्दी सामान उठाया और गाड़ियोंकी लैनडोरी शांय-शांय करती हुई सामने आ खड़ी हुई। वह शोर मचा, वह भगदड़ पड़ी कि बस, मैं क्या कहूं। मुसाफिरोंका यह हाल कि एक उतरता, तो चार चढ़ते। बच्चे रो रहे हैं, औरतें पिस रही हैं। मर्दोंमें किसीका हाथ चल रहा है, तो किसीकी जबान! वह दौड़े-दौड़े कभी इस गाड़ीको झांकते हैं, तो कभी उस गाड़ीको। बाबुओंकी खुशामद करते हैं, तो वह नहीं सुनते। मुसाफिरोंसे कहते हैं, तो वह जगह नहीं देते। लड़नेपर आमादा, मार-पीट करनेपर तैयार! आखिर बेचारे कुलीने हिम्मत की और बोला—"बाबू, तुम्हें मर्द किसने बनाया है, घुस जाओ किसी गाड़ीमें। आखिर तुमने भी तो टिकट लिया है।" इतना कह उसने एक गाड़ीका दरवाजा खोल उनसे कहा—'लो बैठो।' मुसाफिरोंने बहुतेरा गुल मचाया कि यहां पहले ही से पन्द्रह आदमी हैं। क्या हमारे सरपर बैठोगे? कई दफा असबाब भी फेंक दिया। लेकिन बहन, वह बड़ा ढीठ था, हमें बिठाकर ही छोड़ा। बैठना तो मैंने यों ही कह दिया। सामान डाल खड़े हो गये। इधर कुलीका तकाजा कि इनाम दिलाओ। वह हैं जरा कन्जूस। बैठते वक्त तो बिल्ली बने हुए थे। एक-एकके आगे हाथ जोड़ रहे थे। उस गरीब मजदूरने अपनी जानपर खेलकर सवार करा दिया, तो इनामके नामपर अकड़ गये। लगे चार पैसे दिखाने। मजदूरोंके पेटपर लात मारना किसने सिखाया है? मैंने झट बटुआ खोल चवन्नी निकाल लल्लूको दी कि दे दे। गरीब खुश होकर दुआयें देता चला गया।

गाड़ी रवाना हुई। झटका जो लगा, तो उनका सर अलग ऊपर लगे हुए मचानसे टकराया और मैं अलग मुंहके बल एक बड़े मियांपर आ रही। यह देखकर दो-एक मुसाफिरोंको तरस आ गया। उन्होंने जगह करके मुझे और लल्लूको एक तरफ बिठा दिया और उनसे कहने लगे—"भले आदमी, क्या औरतोंका दर्जा न था, जो तुम इस परदेवालीको मर्दोंमें ले घुसे। वाह साहब, वाह! घूंघट भी कड़वा रखा है और मर्दोंमें भी लिये बैठे हैं।" मैं देख रही थी, वह बेहद शर्मिन्दा हो रहे हैं। एक रङ्ग आता है, एक रङ्ग जाता है। आंखें नीची करके बोले—"जनाब, क्या बताऊं, जिन्दगीमें मेरा यह पहला सफर है। मुझे क्या खबर कि रेलमें औरतोंके लिए भी अलहदा गाड़ी होती है।"

एक मुसाफिर—भाई, ब्याह नहीं किया, तो क्या बरातें

भी नहीं देखी, मालूम कर लिया होता !

दूसरा—अजी रहने भी दो, कोई आदमी ऐसा भी है जो रेलसे अनजान हो।

तीसरा—और हजरत सूरतसे पढ़े-लिखे भी मालूम होते हैं।

एक गंवार—इन जण्टलमैनोंको यही शौक है कि अपनी बीबियोंको साथ रखते हैं।

यह लोग आगे बढ़कर न जाने और क्या-क्या खुराफात बकते और शर्मके मारे नहीं मालूम मुझे खिड़कीमेंसे कूदना पड़ता ; वह तो खैरियत यह हुई कि बड़े मियांने, जिनकी कृपासे मुझे बैठनेकी जरा-सी जगह मिली थी, लोगोंसे कहा—"भई, ऐसी बेहूदा बातें नहीं करनी चाहिए। जो आदमी सफरका आदी नहीं होता, उससे घबराहटमें ऐसी गलतियां अक्सर हो जाया करती हैं।" और उनसे बोले—"आप अपना सामान दुरुस्त कर लें। ऐसा न हो कि घबराहटमें कोई चीज इधर-उधर हो जाय। फिर, आपके लिए भी जगह निकल आयेगी।" इस मौकेपर रह-रहकर जीजाके शब्द याद आ रहे थे कि ईश्वर न करे जो किसी भले आदमीको तीसरे दर्जेमें सफर करना पड़े। भले आदमी इस दर्जेमें बिलकुल बेबस हो जाते हैं। हां, तो उन्होंने तितर-बितर चीजोंको समेटकर एक कर लिया। सुराही इस हड़बड़ीमें टूट गयी थी और उसके पानीसे सारा बिछौना भीगकर लथपथ हो गया था। उसको वहांसे हटाकर मचानपर रखा, ठीकरे बाहर फेंके और अब लालाजीने पांव समेटकर मेरे पास उन्हें भी बैठनेकी जगह दे दी। चलते-चलते गाड़ी रुकी, तो मालूम हुआ कि मथुराका स्टेशन है। यहां भी मुसाफिरोंकी वही मारामार, वही रेल-पेल। बीसियों मुसाफिर आये। कोई झांककर, तो कोई दुतकार खाकर चला गया। मगर एक लम्बा-तड़ङ्गा खाकी वर्दी पहने मर्दुआ दर्राता घुस आया। आते ही कुलीको आवाज दी—"जगा तो खम है, खैर ले आओ।" असबाब आया और उसके साथ जञ्जीरसे बंधा हुआ एक कुत्ता भी आया। दाढ़ीवाले मियां साहबसे बोला —"थोड़ी जगा दीजियेगा।" खाकी वर्दी देखकर सब सिमटने लगे। जगह पाकर वह बैठ गया। अब कुत्तेने जो दुम हिलायी, तो इत्तफाकसे मियां साहबकी दाढ़ीसे, जो नीचे झुके हुए थे, गले मिल गयी। बस फिर क्या था। बड़े मियां बरस पड़े। झुंझलाकर बोले—जनाब, इस पलीद जानवरको अलग रखिये। यह भी कोई इन्सानियत है कि आप आदमियोंमें कुत्तेको ले आयें। उन खाकी साहबने कहा—"आप इतना खफा क्यों होते हैं। यह भी कोई आदमी है कि दाढ़ी और दुममें तमीज कर सके।" पहले तो लोगोंको खूब हंसी आयी मगर जब यह देखा कि वाकई बड़े मियांके साथ बुरी हुई, वह गुस्सेमें कहीं हाथ-पैर न चला बैठें, तो दोनोंको समझा-बुझाकर ठण्डा किया और कुत्तेको पाखानेमें बन्द करा दिया।

शामतकी मार, मेरी खिड़कीके बराबर एक काला देव-सा आ खड़ा हुआ। मैंने पूछा—"यह पहाड़-सा क्या है?" उन्होंने बताया कि यही तो इञ्जन है, जो रेलको उड़ाये-उड़ाये फिरता है। एकाएक वह चलने लगा और इस जोरकी सीटी दी कि कलेजेमें घुस गयी। लल्लू जो मेरी गोदमें सोया हुआ था, कांप उठा। अब जो मेरे कपड़े कुछ गीले-गीले मालूम हुए, तो अय है······लल्लूने मूत दिया था, मैंने कहा—खैर, तुमने मूत तो दिया, लेकिन उस कलमुंहेको चीखकर भागते नहीं देखा, नहीं तो शायद जान ही निकल जाती।

मथुरासे गाड़ी चली, तो मुझे नींद आ गयी थी। भगवान् जाने, कितनी देर तक सोयी। आंख जो खुली, वह पुकार रहे थे कि उठो, दिल्ली आ पहुंचे। मामाजी लेनेको आये थे। हाथोंहाथ हमें उतरवाया। मैं चद्दर संभालती हुई नीचे उतरी। दिल्लीके स्टेशनकी बात ही कुछ और थी। रोशनी इस कदर कि रात भी दिन मालूम पड़ती थी। सैकड़ों गोरी भभूका-सी औरतें, नङ्गे सर, भूरे-भूरे बाल, किसीके कन्धोंपर बिखरे, किसीका जूड़ा बंधा हुआ, किसीके सिर्फ पट्टे, साया फड़काती खटपट-खटपट करती चली जा रही थीं। कोई अकेली है, कोई किसी मर्दके साथ! दस-बीस रङ्ग-बिरङ्ग-की साड़ियां पहने भी चलती-फिरती दिखाई दीं। उनकी आजादी और लापरवाही देखकर मैं तो दङ्ग हो गयी। भगवान् जाने, मैंने स्टेशनसे बाहर तांगे तकका रास्ता क्योंकर तय किया। मामाजीके घर पहुंचकर मुझपर क्या गुजरी, वह फिर कभी सुनाऊंगी।

अनुवादक—"आजाद" कलकत्ता।

कन्याकी बिदाके समयके कुछ लोकगीत

श्री ब्रजकिशोर वर्मा "श्याम"

कन्या-बिदाके दृश्य मैंने बीसों देखे हैं। अभी उस दिन मेरे पड़ोसमें एक लड़कीका विवाह होने जा रहा था। शहनाईकी निनाद-भरी स्वर-लहरी मेरे कानोंमें पहुंच रही थी और मुझे एक लोक-गीतकी बात याद आ गयी, जिसमें कि कन्याके ससुराल जाते समयका करुण चित्र पेश किया गया था—"उधर मांके अश्रु गिर रहे थे, इधर मेरी डोली कांप रही थी।" डोलीके समयका यह चित्र शहनाईके विषादमें विलीन हो गया। परन्तु सचमुच कन्याकी बिदाका समय बड़ा ही हृदय-द्रावक होता है। घर-बार, महल-मकान, पशु-पक्षी और ईंट-पत्थर तक रोते हुए जान पड़ते हैं। उस समय लड़कीके जीवनपर जितना ही विचार किया जाय, हृदयपर उतनी ही चोट लगती है—करुणाका उद्रेक होने लगता है। जिस घरको वह बचपनसे आज तक अपना घर समझती रही थी, वहीं अपनेको पाहुना-सी अनुभव करने लगती है। इससे बढ़कर आत्म-बलिदानका उदाहरण और कहां मिलेगा ?

और तब उसे लड़कपनके, उमङ्गोंसे भरे दिन याद आते हैं। वह माता-पिताका दुलार, वह भाइयोंका मृदुल स्नेह, वह सहेलियोंकी चुहल ! कैसे देखते-देखते दिन बीत जाते हैं ! इन सभी बातोंपर भी याद करके लड़कीका कलेजा फटने लगता है ! जिस समय वह विक्षिप्त होकर अपने सगे-सम्बन्धियोंसे लिपट-लिपटकर बिलपती है, उस समय किसकी आंखोंमें आंसू नहीं आ जाते ! इसपर स्त्रियोंके करुण-रस-पूर्ण गीत हृदयको और भी द्रवित कर देते हैं। इन गीतोंमें शब्दा-डम्बर नहीं, उपमा नहीं, अलङ्कार नहीं, कल्पनाकी ऊंची उड़ान भी नहीं; किन्तु सीधी-सादी लाइनोंमें हृदयको कुछ इस तरह खोलकर रख दिया गया है कि क्या कहें ! लड़कीकी बिदाका साकार दृश्य सामने आ जाता है। यहांपर कुछ इसी तरहके करुण गीत दिये जाते हैं।

× × ×

कन्याकी बिदाका समय आ गया है। आज नहीं, कल सुबह बिदाई है। माता बड़े दुलारसे बेटीसे दही, भात खानेका आग्रह करती है ! इसपर बेटी किस तरह प्रेमपूर्ण उलहना देती है, इसी भावका चित्रण कितने मार्मिक ढङ्गसे किया गया है—

खाइ लेहू खाइ रे लेहू दहियासे भात।
तोहरी ऊ बिदवा ऐ बेटी बड़े भिनुरे सार।
बिरना कलेउवा ऐ अम्मा हंसी-खुशी रे द।
हमरा कलेउवा ऐ अम्मा दिहेउ ऐसी माइ।
हम अउ बिरना ऐ अम्मा जन्मे एकरे सङ्ग।
संग-संग खेलेउंरे अम्मा, खायउं एकरे सङ्ग।
भइआके लिखला ऐ अम्मा बाबा कइ रे राज।
हमरा लिखला ऐ अम्मा अति बड़ी दूरि।

—मां कहती है—हे बेटी, दही-भात खा लो। कल बड़े सवेरे तुम्हारी बिदाई है।

बेटी कहती है—मां, भाईको तो तुम बड़ी खुशीसे कलेवा देती थीं, पर मेरा कलेवा नाराजीसे दिया करती थीं।

—भाई और मैं दोनों एक साथ जन्मे थे। साथ-साथ खेले, और साथ-साथ खाये थे।

—भाईको तो पिताका राज लिखा है और मुझे, हे मां, बड़ी दूर जाना है !

"तुम भाईको और मुझे कलेवा देनेमें पक्षपात करती थीं" लड़कीकी यह बात कैसी हृदयवेधक है ! कौन ऐसी माता है, जो अपनेको इस अवगुणसे वञ्चित कह सकती है ?

× × ×

लड़की अपनी ससुराल जा रही है, किन्तु उस समय उसे स्मरण आता है उन सब कार्योंका, जिन्हें वह नित्य ही किया करती है। यह स्मरण आते ही वह विकल हो उठती है, उसका धैर्य छूट जाता है:—

तेरा तजित सूना होय बाबुल तेरी धीय बिना।
मेरी बहू कातेगी हे लाड़ो बेटी जाय घरां।
तेरा पैंडा रीता होय बाबल तेरी धीय बिना।
मेरी पोती खेलेगी हेके लाड़ो बेटी जाय घरां।
तेरे गोबर बिछ रहा हो बाबल तेरी धीय बिना

मेरी बहुयें गेरेंगी होके लाड़ो बेटी जाय घरां।
मेरा गड्डा अटक्यौ होके बाबल तेरी गलियोंमें
दोय ईंट कढ़वा दे हे के लाड़ो बेटी जाय घरां।
तुझे बाबल कौन कहे बाबल तेरी धीय बिना।
आंसू तो भर आये नैनके लाड़ो बेटी जाय घरां।

बेटी कहती है—हे पिता, मेरे बिना अब चर्खा कौन काता करेगा, वह सूना पड़ा रह जायगा।

उसका पिता जब सुनता है, तो वह किसी तरह अपने आंसुओंको संभालकर अपनी प्यारी बिटियाको ढाढ़स बंधाता हुआ कहता है—प्यारी बिट्टी, अपने घर जाओ, तुम्हारे स्थानपर अब मेरी पुत्रबधू काता करेगी।

—पिता, मेरे बिना तुम्हारा मार्ग सूना हो जायगा।

—प्यारी बेटी, इसकी पूर्ति मेरी पोतियों द्वारा होगी।

—हे पिता, मैं तो तुम्हारे आलेपर रखी हुई अपनी गुड़िया भूल गयी, हाय, अब उनसे कौन खेलेगा?

—मेरी बिट्टी जाओ, मेरी पोतियां अब इस अभावकी पूर्ति करेंगी।

—पिता, तुम्हारे आंगनमें अब गोबर तो बिखरा ही रह जायगा, तुम्हारी प्यारी बेटीके सिवा उसे अब कौन साफ करेगा।

—बिट्टी, तू कुछ चिन्ता न कर, यह कार्य तेरी भाभी करेगी।

—मेरी गाड़ी पिता, तुम्हारी गलियोंमें अटक रही है।

—जा बिट्टी, अपने घर जा, मैं मार्ग ठीक करा दूंगा।

—पिता, तेरी प्यारी बिटियाके बिना तुझे पिता कहकर कौन पुकारेगा।

किसका हृदय द्रवित न हो उठेगा, यह पढ़कर! एक पितृ-हृदयके लिए अपनी पुत्रीके द्वारा पिता सम्बोधन कितना हृदयहारी है! उसके बिना सब कुछ हो सकता है; किन्तु उसके बिना उसके इस अभावकी पूर्ति कोई तो नहीं कर सकता!

× × ×

एक कन्या है। उसका विवाह होने जा रहा है। बारात दरवाजेपर आ गयी है। कन्याको यह मालूम हो गया है कि कल उसकी बिदाई हो जायगी। वह विकल होकर कहती है:—

बाबा बाबा गोहरावौं बाबा नहीं जागैं।
देत सुनर एक सेंदुर भइउं पराई।
भइया भइया गोहरावौं भइया नाहीं बोलैं।
देत सुघर एक सेंदुर भइउं पराई।

—बाबा बाबा कहकर पुकार रही हूं। बाबा जागते ही नहीं। कोई एक सुन्दर पुरुष सेन्दुर दे रहा है। मैं परायी हुई जा रही हूं।

—भैया भैया कहकर पुकार रही हूं। भैया बोलते ही नहीं। कोई एक चतुर पुरुष सेन्दुर दे रहा है। मैं परायी हुई जा रही हूं।

कितनी बेबसी है! भोली कन्या, तुझे परायी होनेसे अब कोई रोक नहीं सकता!

× × ×

जब कन्याकी मदद करने कोई नहीं पहुंचता, तो वह स्वयं ही छुटकारेकी चेष्टा करती है:—

जनि छुओ ये माली जनि छुओ अबही कुंआरि।
आधी राति फुलबै बेइलिया तौ होब तुम्हारि।
जनि छुओ ये दुलहा जनि छुओ अबही कुंआरि।
जब मोर बाबा संकलपैं तौ होब तुम्हारि।

—हे माली, अभी मत छुओ, अभी मत छुओ। मैं अभी बालिका हूं, कुमारी हूं। आधी रातको जब लता फूलेगी, तब वह तुम्हारी होगी।

—हे दूल्हा, मत छुओ, मत छुओ। अभी मैं बालिका हूं, कुमारी हूं। जब मेरे बाबा समर्पण करेंगे, तब मैं तुम्हारी होऊंगी।

कैसा भावपूर्ण गीत है! स्त्री लताकी तरह फूले-फले और पुरुष मालीकी तरह उसे सींचे, संभाले, संवारे और उसका सुख भोगे। कैसी अर्थयुक्त तुलना है!

अन्तमें कन्या कहती है कि जब तक पिता नहीं समर्पण करता, तब तक वह दूसरेकी नहीं हो सकती। बचनेकी तरकीब तो अच्छी निकाली, लेकिन कब तकके लिए! आखिर तुझे पराया तो होना ही है।

गीतमें आदिसे लेकर अन्त तक करुण रस लहरा रहा है!

× × ×

बेटी ससुराल जानेको तैयार है। माता स्नेहसे भरी वाणीमें कहती है—बेटी, पिताका ऐसा घर छोड़कर तुम कहां जा रही हो? भाई मार्ग रोककर कहता है—मेरी प्यारी बहन, तुम कहां जा रही हो? बेटी अपनी मजबूरी जाहिर करती हुई कहती है—मैं क्या करूं और कैसे न जाऊं? मेरी दशा तो उस कोयलकी तरह है, जो कभी उड़कर बागमें गयी और कभी फुलवारीमें।

अरे अरे बेटी पियारी रानी! तोरी बोल भली।
तोरी बचन भली।
ऐसन बपैया घर छोड़िके बेटी! कहवां चली।
बेटी कहवां चली।
जैसे बनाकी कोइलिया, उड़ि बागा गयी,
फुलवरियां गयी।
तैसे बाबा घरा छाड़िके, अब मैं ससुरे चली,
ससुररियां चली।
घोड़वा चढ़ा भैया आगे खड़े, हाथे तीर कमां,
हाथे तीर कमां।
रोकहिं बहिनी घेरि डगरिया, बहिन मोरी कहवां चली।
बहिन कहवां चली।
जाने दे भैया, जाने दे बाबा, लगन धरी अम्मा साज करी
ऐहौं मैं काज परोजन, वीरन तोरे बेटा भये,
तोरे बेटा भये।

—हे मेरी प्यारी बेटी, तेरी बात बड़ी मीठी है। तू ऐसे पिताका घर छोड़कर कहां चली?

—जैसे बनकी कोयल कभी उड़कर बागमें गयी, कभी फुलवारीमें। वैसे ही मैं अपने पिताका घर छोड़कर ससुराल चली।

घोड़ेपर चढ़ा, हाथमें तीर धनुष लिये भाई आगे खड़ा है। उसने रास्ता रोककर कहा—हे मेरी बहन, तू कहां चली जा रही है!

भैया, जाने दो, पिताने विवाह ठीक किया और मांने तैयारी कर दी। अब मैं जा रही हूं। कभी कोई काम-काज पड़ेगा या तुम्हारे बेटा होगा, तब आऊंगी।

जाओ न, अब तुम्हें रोक ही कौन सकता है! परायी चीजपर किसका बस!

× × ×

कन्या बड़े प्यारके साथ अपनी मांकी गोदमें सो रही है। अचानक उसके कानमें बाजोंकी आवाज पहुंचती है। वह चौंककर जाग उठती है और भोलेपनके साथ मांसे पूछती है कि यह बाजा कहां बज रहा है। किसका विवाह होगा?

सोवत रहिउं मैयाके कोरवा निंदिया उचटि गयी मोर।
केकरे दुआरे मैया बाजन बाजै, केकर रचा है विवाह!

लड़कीके इस प्रश्नका उत्तर माता देती है:—

तुहीं बेटी आउरि तुही बेटी बाउरि तू ही बेटी चतुर सयानि
तुमरे दुआरे बेटी बाजन बाजै, तुमरइ रचा है बियाह!
सिखि लेउ बेटी गुन अवगुनवां सिखि लेउ रामरसोई।
सासु ससुर तो मैया गरियावैं लै लिहौ अंचरा पसार।

—बेटी, तुम्हीं बावली हो, तुम्हीं सयानी हो। हे बेटी, तुम्हारे ही दरवाजेपर बाजा बज रहा है। तुम्हारा ही ब्याह होगा।

बेटी, गुण-अवगुण सब सीख लो। रसोई बनाना भी सीख लो। हे बेटी, यदि सास और ननद गाली दें, तो आंचल पसारकर ले लेना।

क्षमाशीलताकी कैसी मनोहर शिक्षा माताने पुत्रीको दी है! सचमुच क्षमा ही गृहस्थीकी शान्तिका मूल है।

× × ×

इधर लड़कीकी बिदाके लिए सारे सामान एकत्र किये जा रहे हैं और उधर माता-पिता, भाई-बहन सभी उसके वियोगमें विक्षिप्त होकर रो रहे हैं! आनन्द और विषादका यह दृश्य कितना करुण होता है, इसका चित्रण नीचेके गीतमें देखिये:—

कहमा ते सोना आये, कहमा ते रूपा आये हो।
एहो कहमा ते लाली पलंगिया, पलंगिया जगमोहन हो।
कासी ते सोना आये, गयाजी ते रूपा आये हो।
एहो सैयां संग लाली पलंगिया, पलंगिया जगमोहन हो।
भितर ते माया जो रोवइं, अचले मां आंसु पोंछइं हो।
एहो मोरी बिटिया चली परदेस, कोखिय मोरी सूनी भई ना।
बैठकसे बाबूजी रोवइं, पटुके मां आंसू पोंछैं हो।
मोरी धेरिया चली परदेस, भवन मोरा सून भई ना।
ओवरी ते भौजी जो रोवइं, चुनरिया मां आंसू पोंछइं हो।
ऐहो मोर ननदी चली परदेस, रसोइयां मोरी सूनि भई ना।

—सोना कहांसे आया ? रूपा कहांसे आया ? यह लाल पलंगिया कहांसे आयी ? यह तो ऐसी सुन्दर है कि संसारका मन मोह लेती है।

—काशीसे सोना आया है। गयाजीसे रूपा आया है। स्वामीके साथ लाल पलंग आया है, जो संसारका मन मोह लेता है।

—भीतर मां रो रही हैं और अंचलसे आंसू पोंछ रही हैं। हाय, मेरी बेटी परदेश चली। मेरी कोख सूनी हो गयी।

—बैठकमें बाबूजी रो रहे हैं। दुपट्टेमें आंसू पोंछ रहे हैं। हाय, मेरी बेटी परदेश चली जा रही है। मेरा घर सूना हो गया !

—भीतर कोठरीमें भौजी रो रही हैं। चूंदरीमें आंसू पोंछ रही हैं। हा, मेरी ननद परदेश चली। मेरी रसोई सूनी हो गयी !

'कोख सूनी हो गयी', 'घर सूना हो गया', 'मेरी रसोई सूनी हो गयी', इन वाक्योंके भीतर पिता, माता और भौजाईकी विकल आत्मायें तड़प रही हैं! इसका अनुभव भुक्तभोगियोंको ही अच्छी तरह हो सकता है!

× × ×

लड़कियोंको गुड़िया बड़ी प्यारी होती है। जितनी पीड़ा उन्हें घर-बार, माता-पिताको छोड़नेमें होती है, उससे कम गुड़िया छोड़नेमें नहीं होती। लड़की बिदा हो गयी है। रास्तेमें उसे गुड़ियाकी सुधि आती है! वह अपनी माताको सन्देश भेजती है कि हमारी गुड़िया पिटारीमें संभालकर रख देना।

अरे-अरे अहिरके बेटवारे भैया, मातासे कहेउ संदेश।
रामरसोईमें गुड़िया रे भूली, धरैं पेटरियाके बीच।

कितनी भोली कन्या है। वह बेचारी नहीं जानती कि गुड़िया खेलते-खेलते अब वह खुद गुड़िया बन गयी है और वह अब फिर गुड़िया खेलनेके लिए इस घरमें नहीं आयेगी!

बिदाके समय लड़कीको रोनेके सिवा और कुछ अच्छा नहीं लगता। वह जी भरकर रोना चाहती है। उसे रोने दीजिये और बस! बिदाईका समय है। कन्या उदास दरवाजेपर खड़ी है। यह देखकर पिता कहता है :—

कह तु त मोरी बेटी छत्र छवउतेउं नाहीं तनवतेउं ओहार रे।
कह तु त मोरी बेटी सुरुज अलोपतेउं हो, गोरी बदन रहि जाइ रे।

—बेटी, कहो तो छत्र छवा दूं या परदा डलवा दूं, या कहो तो किसी तरह सूर्यकी धूपको रोक दूं, जिससे तुम्हारा कोमल मुंह न कुम्हलाय।

इसका उत्तर बेटी क्या देती है, सुनिये :—

काहेके मोरे बाबा छत्र छवइबा हो, काहेके तनइबा ओहार रे।
काहेके मोरे बाबा सुरुज अलोपबा, दो एक दिनाकी है बात।
आजके दिन हो बाबा तोहरे मड़उआ हो, बिहने सुनर वर साथ रे।
काहे क मोरे बाबा दुधवा पिअवला हो, दहिआ खिअवला साढ़ीदार रे।
जानत रहला बेटी पर घर जइहैं हो, नाहक कइला मोर दुलार रे।

—हे बाबा, क्यों तुम छत्र छवाओगे और क्यों परदा डालोगे ? क्यों धूपको रोकोगे ? एक दिनकी बात और है। आज तुम्हारे माड़ौमें हूं, कल अपने सुन्दर वरके साथ चली जाऊंगी।

—हे बाबा, क्यों तुमने दूध पिलाया ? क्यों साढ़ीवाला दही खिलाया ? तुम जानते ही थे कि बेटी पराये घर जायगी। फिर मेरा दुलार क्यों किया ?

कौन जाने, क्यों किया ?

जिस समय स्त्रियां करुण-स्वरसे इस गीतको गाने लगती हैं, उस समय आंखोंसे आंसू रोकना कठिन हो जाता है।

कन्याका डोला बाहर निकल चुका है। उफ, कितना करुणाजनक दृश्य ! उसका डोला चलते हुए देखकर एक बार पिता, बाबा, ताऊ, चाचा, भाई, मामा सभी सम्बन्धी बिटियासे मिलनेके लिए विकल हो उठते हैं। उन्हें यह भी सुधि नहीं रहती कि पैरोंमें जूते भी हैं कि नहीं। उनका हृदय आकुल हो जाता है और वे भागकर कहते हैं :—

साजन डोला थामियो।
हे म्हारे तो घरकी बेटी, थारे घरकी जी बांदी हम थारे चिरचैदार हो।

—एक बार डोला रुका दो।

—हमारी दुलारी बेटी तुम्हारे घरकी अनुचरी है और हम भी तुम्हारे सेवक हैं। एक बार डोला रुका दो।

विवाहके पश्चात् ऐसा करुणाजनक वियोग और कहां मिलेगा ? उपर्युक्त गीत जब ग्रामीण स्त्रियां रोती हुई ट्यूनमें गाती हैं, तो एक बार पत्थर भी पिघल उठते हैं!

भारतीय नारी-जीवनका आदर्श

श्री कमलाकान्त शर्मा

एक बड़े जर्मन वैज्ञानिकका कहना है कि नारीका जीवन कभी भी सम्पूर्ण नहीं हो सकता, जब तक कि वह पत्नी या जननी नहीं हो जाती। किन्तु हमारे देशकी स्त्रियों-की अवस्था और ही कुछ है। विवाह और मातृत्व भारतीय नारीके जीवनकी एक अवश्यम्भावी घटना है। फिर भी उसका नारी-जीवन पूर्ण होता है या नहीं, यह विचारणीय बात है। और किञ्चित् ध्यानसे देखनेसे हमें मालूम होगा कि हमारी मां-बहनें, हमारी स्त्रियां और हमारी कन्यायें किस शोचनीय अवस्थामें अपने अस्तित्वको कायम रखे चल रही हैं। यह सही है कि इस समय स्त्रियोंकी अवस्थामें सुधार करनेके लिए चेष्टा की जा रही है, पर अब तक भी उनकी अवस्थामें कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता।

हां, एक बात है, जिससे कुछ आशा की जा सकती है। वह यह कि हमारे देशकी स्त्रियां, एकमात्र पुरुषोंपर ही भरोसा न रख, स्वयं अपनी दशा सुधारनेके लिए सचेत हो रही हैं। जिस दिन वे अपनी दुरवस्थाको भली भांति समझ लेंगी, उसी दिन उनकी मुक्तिका उपाय भी अज्ञात नहीं रहेगा।

बचपनमें बालिकाओंका विवाह कर देनेसे भारतवर्ष केवल सभ्य संसारमें निन्दाका भाजन ही नहीं बना है, वरन् बाल-विवाह--जैसी कुप्रथाके लिए हमारे समग्र समाजको आज दीर्घकालसे भीषण दण्ड भी भोगना पड़ रहा है। समाजमें एक ओर जिस प्रकार बाल-विधवाओंकी संख्या क्रमशः बढ़ रही है, उसी प्रकार दूसरी ओर पंगु, विकलाङ्ग, दुर्बल और क्षीणकाय शिशुओंकी भी बढ़ती हो रही है। अल्प-वयस्का प्रसूतिकाओंकी मृत्यु भी हमारे घरोंमें संक्रामक रोगकी तरह बढ़ रही है। शारदा कानूनसे अब इस कुप्रथामें कुछ-कुछ सुधार हो रहा है, और समाजमें वयस्क बालक-बालिकाओंके विवाहकी आवश्यकतापर काफी जोर दिया जा रहा है। शिक्षित नवयुवक और नवयुवतियां भी विवाह-की जिम्मेवारीको समझने लगी हैं, और इस महत्त्वपूर्ण विषयको अपने माता-पिता अथवा अभिभावककी ही मर्जीपर छोड़नेको तैयार नहीं हैं। पर साथ ही पाश्चात्य भावापन्न युवक-युवतियोंपर पाश्चात्य सभ्यताके आदर्शपर प्रेम-विवाह करनेकी धुन सवार है। अंगरेजी शिक्षा और संस्कृतिने उनकी आंखोंमें ऐसी चकाचौंध पैदा कर दी है कि उन्हें भारतीय सभ्यता और भारतीय संस्कृतिमें सर्वत्र दोष ही दोष दिखाई देते हैं। पर यदि वे अपनी आंखोंपरका पर्दा हटाकर देखें, तो उन्हें मालूम होगा कि पाश्चात्य देशोंमें दम्पतियोंका वैवाहिक जीवन कितना दुःखमय हो रहा है, और वहांके मनीषियों और विचारशील व्यक्तियोंके सामने यह विकट समस्या उप-स्थित है कि विवाह-प्रथामें कौन-सा सुधार किया जाय, जिससे पति-पत्नीका जीवन सुखमय हो। हमारे देशकी विवाह-प्रथामें आज चाहे जो भी बुराइयां आ गयी हों, पर हमारे प्राचीन ऋषियोंने विवाहको ऐसा मङ्गल कृत्य बना दिया है, जिससे पति-पत्नीका वैवाहिक जीवन बड़े आनन्द और सुखसे बीतता है, और उनमें कभी भी विच्छेद होनेकी नौबत नहीं आती।

विवाहके बाद हमारे देशकी बालिकाओंको अपने ससुरके घर रहना पड़ता है। वह घर केवल उसका पतिगृह नहीं होता। उस घरमें उसके पतिके सिवा उसके सास, ससुर, देवर, ननद, जेठ-जिठानी आदि कुटुम्बके कितने ही लोग सम्मि-लित रूपमें रहते हैं। उस बृहत् परिवारमें वह छोटी उम्रमें बधूके रूपमें आती है। जिस अवस्थामें वह अपने नये घरमें आती है, उस समय उसका मन बिलकुल कच्चा रहता है। उसपर कोई बाहरी रङ्ग नहीं चढ़ा रहता। ससुर-घरकी चाल-ढाल, वहांका रस्म-रिवाज और रहनेके तौर-तरीकोंसे क्रमशः परिचित हो, आगे चलकर वह उस परिवारकी एक सदस्या बन जाती है। वह अपने स्वामीसे केवल प्रेम करना ही नहीं सीखती, बल्कि उसकी भक्ति और श्रद्धा करना भी सीखती है। स्वामीके परिवारवालों और आत्मीयोंको अपना आत्मीय स्वजन जानना सीखती है। पतिके भाई-बहनोंके साथ अपने सहोदरोंका-सा उसका मधुर सम्बन्ध स्थापित होता है। सास-ससुर और गुरुजनोंकी सेवा-परिचर्या करनेमें उसे

आनन्द मिलता है। उनके आशीर्वाद, स्नेह और प्रेमको वह अपने जीवनका सम्बल और सौभाग्य समझती है।

इसी तरह छोटी बालिका ससुरके घर आकर बड़ी होती है, और परिवारके और लोगोंके सुरमें सुर मिलाकर चलती है। वह कभी भी ख्याल नहीं करती कि वह उस घरकी कोई नहीं, वह कहीं बाहरसे उड़कर आयी है। या यह बात भी वह कभी नहीं सोचती कि उसके स्वामी केवल उसकी ही सम्पत्ति हैं—स्वामीकी कमाईका उपभोग करनेका एकमात्र उसीको अधिकार है, या स्वामीके सिवा घरके और लोग पराये हैं।

हिन्दू विवाहके आदर्शमें अनेक त्रुटियां हो सकती हैं, पर यह निस्सङ्कोच कहा जा सकता है कि संसारका और कोई भी धर्म-विवाह हिन्दू विवाहकी अपेक्षा त्रुटिहीन नहीं है। पाश्चात्य प्रगतिने आज संसारको कई विषयोंमें बहुत आगे बढ़ा दिया है; परन्तु उससे पारिवारिक सुख-शान्ति, माधुर्य और आनन्द अक्षुण्ण नहीं रह सका। पाश्चात्य देशोंमें पत्नीकी फरमाइशोंके मारे पतिकी शोचनीय मानसिक अवस्था हो जाती है। अपनी फरमाइश पूरी न होनेपर स्त्रीके मनमें भी उत्तेजनाका भाव आ जाता है। फलतः पति-पत्नीमें बात-बातपर सदा लड़ाई हुआ करती है, और एक दिन दोनों ही ऊबकर विवाह-विच्छेद कर लेते हैं। दोनोंकी पारिवारिक शान्ति और आनन्द नष्ट हो जाता है। वैयक्तिक स्वाधीनता और समानाधिकारकी दृष्टिसे पाश्चात्य देशकी विवाह-प्रथा चाहे जितनी अच्छी समझी जाय, पर उससे पारिवारिक शान्ति और आनन्द लेशमात्र भी नहीं मिलता।

भारतवर्षकी हिन्दू-नारी किसी एक पुरुष-विशेषसे विवाह नहीं करती, वह अपने आदर्श और धर्म-विश्वासके प्रतीक—अपने स्वामीको वरमाल्य प्रदान करती है, जिसकी कल्पना-मूर्तिको वह अपने शैशवसे ही अपने हृदय-मन्दिरमें बिठाये रहती है। वह अपनी कल्पनामें अपने स्वामीको सभी सद्गुणोंका अधिकारी समझती है। विवाह हो जानेपर वह यह विचार करने नहीं बैठती कि जिसके साथ उसका गठबन्धन हुआ, जिसकी चिरसङ्गिनी बनकर वह आयी है, वह यथार्थमें प्रेम और श्रद्धा-भक्ति करने योग्य है या नहीं। बाल्यकालसे ही बालिकाके मनमें, अपने कल्पना-स्वामीके प्रति जो अगाध प्रेम और अनुराग सञ्चित रहता है, वह पतिको अनायास ही उससे प्राप्त होता है। पत्नीका प्रेम पानेके लिए पतिको कोई कष्टसाध्य उपाय नहीं करना पड़ता।

पति-पत्नीके रहस्यमय मधुर सम्बन्धको वास्तविक प्रेमके रूपमें परिणत करता है शिशु। शिशु ही घरकी शोभा और आनन्दकी वृद्धि करता है। पिता घरसे दूर दिनभर काम करता है, पर उसका मन अपनी झोंपड़ीकी ओर लगा रहता है, जहां उसका लाड़ला शिशु उसके इन्तजारमें तोतली जबानमें बाबूदी, बाबूदी कहकर उसकी गोदमें चढ़नेके लिए मचल रहा होगा, और बच्चेकी मां दरवाजेपर खड़ी पतिके आनेकी बाट जोह रही होगी। उसके दोनों नेत्रोंमें व्यग्र, कोमल और मधुर प्रतीक्षाके भाव झलक रहे होंगे। मां दिनभर बच्चेको खेलाने और घरके काम-धन्धे करनेमें लगी रहती है। घरको वह देवमन्दिरकी तरह झाड़-बुहारकर साफ और स्वच्छ रखती है। अपने प्रियतमके लिए तरह-तरहकी खानेकी चीजें तैयार करती है। घरके सब काम समाप्त कर स्वामीकी अभ्यर्थनाके लिए बड़ी उत्सुकतासे उसके घर लौटने-की प्रतीक्षा करती है। पैरोंकी जरा-सी आहट सुनते ही चौंक जाती है, शायद वह आ रहे हैं। कैसी मधुर और प्रेम-भरी यह प्रियतमकी प्रतीक्षा होती है!

नारी प्रेमकी जीवित प्रतिमा होती है। पति और पुत्र उसके प्राणोंसे भी प्यारे होते हैं। उनके लिए कोई ऐसा काम नहीं, जिसे करनेके लिए वह सदा तैयार नहीं रहती। संसारमें उनसे बढ़कर उसके लिए और कोई नहीं। हमारे देशकी नारी केवल स्त्री ही नहीं होती, वरन् वह गृहिणी, सखी, मन्त्री, मित्र और प्रिय शिष्या भी होती है। दुःख और सङ्कट पड़नेपर जब सभी अपने-पराये मनुष्यका साथ छोड़ देते हैं, तब एकमात्र स्त्री ही उसका दुःख बंटानेके लिए उसकी बगलमें रहती है। वह सारे दुःखों और कष्टोंको अपने ऊपर ले पति और पुत्रको सुखी रखनेके लिए दिलोजानसे चेष्टा करती है।

संसारमें माताका स्थान सबसे ऊंचा माना जाता है। स्त्रियां पत्नी और माताके रूपमें समाज और परिवारका बहुत कुछ कल्याण करती हैं। जीविका-उपार्जनके लिए उन्हें क्लर्क, टाइपिस्ट, टेलीफोन गर्ल्स आदिके काममें लगाना समाजकी व्यवस्थामें उलटफेर करना है। इस व्यवस्थासे पति,

पुत्र अथवा परिवारका कल्याण नहीं हो सकता। स्त्री भी अपने जीवनके वास्तविक आनन्द पानेसे वञ्चित रहती है। परिवारमें पत्नीका दायित्व पतिसे बड़ा है। वही सारे परिवारकी धुरी होती है। उसीके तत्वावधानमें परिवारकी श्रृङ्खला कायम रह सकती है। सन्तानकी शिक्षा और चरित्र-गठनका भार माताके ही ऊपर रहता है। राष्ट्रका भविष्य जिस माताके ऊपर निर्भर करता है, देशके आदर्श वीर पुरुषोंको जो उत्पन्न करती है, हम अपने परिवारमें नारीको उसी मातृ-रूपमें देखना चाहते हैं। जीविकोपार्जन करनेके लिए वकील, डाक्टर या क्लर्क बनाना उनके लिए वाञ्छनीय नहीं है।

परन्तु नियम सदा एक-से नहीं रहते। पुराने नियम बदलते रहते हैं और उनकी जगह नये नियम लेते हैं। आजकल संसारमें सभी क्षेत्रोंमें बड़ी द्रुतगतिसे परिवर्तन हो रहा है। पुराने नियमों और रीतियोंमें बराबर हेरफेर हो रहा है। कौन जानता है, यह परिवर्तन नवजीवनका लक्षण है अथवा विनाशकी सूचना। कुछ भी हो, नये युगके इस परिवर्तनके सम्बन्धमें सभी सचेत हैं। नारी आज अपनी केवल जननी और पत्नीकी मर्यादासे ही सन्तुष्ट नहीं है। वह आज सभी विषयोंमें पुरुषकी बराबरी करना चाहती है। समष्टिगत सुख-शान्तिके स्थानमें वैयक्तिक स्वतन्त्रता और पूर्ण स्वाधीनता उसके जीवनका प्रधान लक्ष्य हो रहा है। नारी आज पुरुषकी सहधर्मिणी नहीं, परिवारकी एकमात्र मालकिन नहीं, बल्कि पुरुषके जीवनमें एक समान हिस्सेदार होकर रहना चाहती है। वह राजनीतिकी बड़ी-बड़ी बातें करती है, परराष्ट्र-नीतिकी आलोचना करनेमें व्यस्त रहती है। ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, साहित्य, इतिहास और समाज-विज्ञान तथा प्रजनन-विज्ञानकी भी आलोचना करती है।

नारीके जीवनमें आज अति आधुनिक विप्लववादकी प्रबल तरङ्गें उठकर उसकी विशेषताओंको जो चूर-चूर कर रही हैं, किसी देशमें भी कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो उन्हें रोक सके। अच्छा हो अथवा बुरा, यह प्रवाह आज रुक नहीं सकता। इसको रोकनेकी चेष्टा करनेसे न केवल व्यक्तिगत जीवनमें, बल्कि सामाजिक जीवनमें भी विरोधों और मत-भेदोंकी सृष्टि होगी।

पाश्चात्य देशोंमें स्त्रियोंने पुरुषोंके साथ हर काममें प्रतिद्वन्द्विता शुरू कर दी है। कई स्थलोंमें तो उन्होंने पुरुषोंको पीछे धकेल दिया है। विशेषकर वाणिज्य-व्यवसायमें तो वे पुरुषोंसे बहुत आगे बढ़ती जा रही हैं। सभी कल-कारखानोंमें अधिकांश विभागोंपर स्त्रियोंका ही अधिकार है। इसके अतिरिक्त ये टाइपिस्ट, टेलीफोन आपरेटर, स्कूलोंकी अध्यापिका, बुकिङ्ग क्लर्क और दूकानके कर्मचारीका भी काम करती हैं। इन जगहोंमें अब पुरुषोंका स्थान नहीं रहा। कलाविद्, पत्रकार, विमानचालक, मोटरचालक, यहां तक कि पुलिस सर्जेण्ट और सैनिककी हैसियतसे भी वे पुरुषोंके साथ प्रतियोगिता कर रही हैं।

संसारके बहुत-से देशोंमें जहां अति आधुनिकताका बोलबाला है, मातृत्व और जननीका गौरव प्राप्त करनेके लिए स्त्रियोंको अब विवाह-बन्धनके अधीन नहीं रहना पड़ता। वहांकी स्त्रियां पूर्ण स्वाधीन और आत्मनिर्भरशील हैं। जिससे चाहें, वे प्रेम कर सकती हैं, किसी भी पुरुषके साथ घूमने-फिरने या मिलने-जुलनेमें उन्हें कोई रुकावट नहीं। वे सन्तान भी प्रसव करती हैं, पर माताका दायित्व अपने ऊपर नहीं लेतीं। अपनी सन्तानोंको वे राष्ट्रीय शिशु-सदनमें भेज देती हैं। सरकारी खर्चेसे और सरकारके तत्वावधानमें उनका लालन-पालन होता है। सरकारकी ओरसे ही उनकी शिक्षा-दीक्षा भी होती है। घर-गृहस्थीके झमेलेसे मुक्त, परिवारके भार और दायित्वसे मुक्त उन देशोंकी स्त्रियां स्वेच्छासे आनन्दपूर्वक अपना जीवन-यापन करती हैं।

भारतीय महिलायें यदि पाश्चात्य आदर्शपर अपना जीवन-यापन करेंगी, तो वह उनके लिए कल्याणकर नहीं होगा। उन्हें तो भारतीय आदर्शपर वर्तमान युगकी गति-विधिके अनुसार अपने जीवनमें सुधार करना चाहिए, यही उनके लिए श्रेयस्कर है और इसीमें उनका और देशका हित है।

———

तुर्कीका नव जागरण

श्री श्यामनन्दनप्रसाद श्रीवास्तव, बी० ए०

बहुत अर्सा नहीं हुआ, एक ब्रिटिश पत्र-प्रतिनिधिके मिलनेपर फारिसके शाहने कहा था कि "एशियाके पश्चिमी भागमें तुर्की ब्रिटेनकी मेजिनो लाइन है। आप तुर्कीको फिर कभी दूसरी ओर नहीं जाने दे सकते।" शाहके इस कथनमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं है।

एशिया और यूरोपके बीच मानचित्रमें आज जिस रूपमें हम तुर्कीको देखते हैं, वह उसके पूर्व-रूपसे बिलकुल ही भिन्न है। एक जमाना था, जब तुर्की-साम्राज्य यूरोपमें हंगरी तक फैला हुआ था। आज अरबको हम कितने ही हिस्सोंमें बंटा हुआ पाते हैं, परन्तु गत महासमरसे पहले सम्पूर्ण पश्चिमी एशिया तुर्कीके अधिकारमें था और वहांके सर्वप्रधान शासक और धर्मगुरु खलीफाके नामका खुतबा सारे संसारके मुसलमान पढ़ा करते थे। उन दिनों सीमाओंकी रेखायें इतनी ज्यादा नहीं थीं और न चुङ्गी-घरोंकी ही भरमार थी। उन दिनों तुर्की-सरकारके एक आज्ञा-पत्रसे यूरोप और चीनमें, सर्वत्र कोई भी अरब-निवासी जा सकता था। तुर्कीको १९१२ ईस्वीसे लगाकर १९२२ ईस्वी तक लगातार युद्धमें फंसा रहना पड़ा। पहले तो वह बालकन युद्धमें लगा रहा, बादमें १९१४ में जब गत महासमर आरम्भ हुआ, वजीर अनवर पाशाने जर्मनीका साथ दिया। उस युद्धमें जर्मनीकी हार हुई और सन्धिके बाद संसारके सामने खिलाफतकी समस्या उपस्थित हुई। खिलाफतकी समस्या असलमें खलीफाकी स्वतन्त्रताकी समस्या नहीं थी—जैसा कि बादकी घटनाओंसे वास्तवमें साबित हुआ। खिलाफतकी समस्या असलमें तुर्कीकी स्वतन्त्रताकी—विदेशियोंके प्रभाव-रहित स्वतन्त्रताकी समस्या थी। तुर्कीने इस समस्याको हल करनेमें पूरी सफलता प्राप्त की। यह सफलता नवीन तुर्कीको थी, जिसे कमाल अता तुर्कने जन्म दिया था। स्वतन्त्र कर लेनेके बाद कमाल अता तुर्कने तुर्कीमें उन सुधारों और उद्योगोंकी नींव रखी, जिनके कारण आज सारे संसारका ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो रहा है।

तुर्कीकी मैत्रीका मूल्य कितना अधिक है और विशेष परिस्थितिमें वह कितनी अधिक कामकी चीज साबित हो सकती है, उससे रूस और जर्मनी भी अनभिज्ञ नहीं हैं। परन्तु वर्तमान महासमर आरम्भ होनेके समय तुर्कीके साथ नयी और अधिक उपयोगी सन्धि करनेमें रूसको सफलता नहीं मिली। मुख्य कारण यही था कि बाल्टिक समुद्रके कई देशोंकी तरह तुर्की अपने स्वार्थोंका बलिदान करनेके लिए तैयार नहीं था, वह अपनी स्वतन्त्रतापर किसीकी छाया नहीं पड़ने देना चाहता था। रूसका यह प्रयत्न विफल हो जानेपर तुर्कीने ब्रिटेन और फ्रान्सकी ओर मित्रताका हाथ बढ़ाया और उन्होंने इसे खुशी-खुशी ग्रहण किया। राजनीतिक दृष्टिसे तुर्कीके साथ ब्रिटेन और फ्रान्सकी इस नयी सन्धिका महत्त्व किसी तरह भी रूस और जर्मनीकी सन्धिसे कम नहीं है। जिस तरह रूसके साथ सन्धि करनेमें ढिलाई कर और अन्तमें सफल न होकर एक बड़ी भूल ब्रिटिश प्रधान मन्त्री मि० चेम्बरलेन और उनकी सरकारने की थी, वैसी ही भूल पश्चिम एशियामें रूस और उसके प्रधान अधिकारियोंने की। ब्रिटिश प्रधान मन्त्री मि० चेम्बरलेनकी उस भूलका फल यह हुआ कि पोलैण्ड और डेनजिगको तत्काल ही जर्मन आक्रमणका शिकार बनना पड़ा। और आज यद्यपि रूसके साथ तुर्कीकी मैत्री है, तथापि जहां तक पश्चिम एशिया और दक्षिण-पूर्व यूरोपका सम्बन्ध है, शान्तिकी कुञ्जी तुर्कीके हाथमें है और ब्रिटेनके साथ तुर्कीके वर्तमान मैत्री-सम्बन्धकी दृष्टिसे फारिसके शाहका तुर्कीको ब्रिटेनकी पश्चिम एशिया-स्थित मेजिनो लाइन बतलाना ठीक ही है।

जर्मनी अच्छी तरह जानता है कि फ्रान्स और ब्रिटेनकी तुर्कीके साथ की हुई इस नयी सन्धिका मूल्य क्या है? यूरोपके गणतन्त्रवादी राष्ट्रोंके लिए इसका जो महत्त्व है, उसे अनुभव करनेमें जर्मनीको देर नहीं लगी। एक नाजी पत्रने सन्धि होनेके बाद ही लिखा था—"गत महासमरमें इतनी कोशिश करनेपर भी इंगलैण्ड जिस वस्तुको नहीं पा सका था, उसे शान्ति-कालमें प्राप्त कर लिया।" सन्धि-सम्बन्धी

तुर्कीके वर्तमान राष्ट्रपति इस्मत इनूनू।

इस सफलतासे दोनों ही पक्ष सन्तुष्ट हैं। अंगरेजोंके स्वभावकी कितनी ही बातें तुर्कोंमें भी मिलती हैं। दोनोंकी विचार-प्रगति कुछ धीमी है। वे किसी भी समस्यापर शीघ्रतासे विचार और निर्णय नहीं करते। दृढ़ता उनमें स्वभावसे ही होती है। स्वाधीनताके भी वे अनन्य भक्त हैं! उनमें एक और बात भी है—लड़ाई आरम्भ करनेके लिए वे कभी उतावली नहीं दिखलाते; परन्तु लड़ाई छिड़ जानेपर उसे बन्द करनेके लिए भी वे उतने उतावले नहीं होते। तुर्कोंके स्वभावकी इस दृढ़ताके कारण ही इस सन्धिका महत्त्व कहीं ज्यादा समझा जाता है। बालकन प्रदेशके अपने पड़ोसियोंकी भांति तुर्की जानता है कि किसी सफलताको कैसे कायम रखना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि यूरोपके तानाशाहोंकी सफलताका पश्चिमी एशियाके इस भागपर कोई असर नहीं पड़ा है। असर पड़ना तो स्वाभाविक ही है, परन्तु तुर्की जिस बातको सबसे अधिक चाहता है और जिसे प्रत्येक अवस्थामें बनाये रखनेके लिए वह कृत-सङ्कल्प है, वह है स्वतन्त्रता। तुर्कीके अधिकारमें किसी समय लिबियाका जो इलाका था, उसपर १९११ में इटलीने आक्रमण किया था और उसे अपने अधिकारमें कर लिया था। भूमध्य सागरमें तुर्की अपने इस पड़ोसीपर विश्वास नहीं करना चाहता। उधर २९ वर्ष पहलेकी घटनाओंने जिस तरह तुर्कीको ब्रिटेनके साथ सन्धि करनेके लिए प्रवृत्त किया था, इधर अलबानियाकी अवस्थाने फिर वैसी ही परिस्थिति उत्पन्न कर दी; परन्तु नवीन तुर्की अब वह गलती नहीं करना चाहता, जो गत महासमरके तुर्कीने जर्मनीका साथी होकर की थी।

नवीन तुर्कीके जन्मदाता स्वर्गवासी गाजी मुस्तफा कमाल पाशाको तुर्की प्रजाजन श्रद्धासे कमाल अता तुर्क कहा करते थे। वे जानते थे कि तुर्कीको जरूरत यह है कि भूमध्य सागरमें शान्ति रहे और यदि सम्भव हो, तो इस शान्तिकी रक्षा की जाय। तुर्की इसी उद्देश्यसे कमाल अता तुर्कके समयसे ही यह चाहता रहा है कि ब्रिटेनके साथ मैत्री रहे। युद्धसे पहले जब यूरोपके तानाशाह यह सोचते थे कि अगले साल वे इतने हवाई जहाज और इतनी तोपें बनायेंगे, अगले कुछ महीनोंमें वे अमुक-अमुक स्थानोंकी किलेबन्दी पूरी कर लेंगे, दूरदर्शी तुर्क उद्योग-धन्धोंके निर्माणमें लगे हुए थे। उन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्त करने, विदेशियोंके प्रभावसे मुक्त हो जानेके बाद गत १५-१६ वर्षोंमें जो सफलता प्राप्त की थी, उसके आधारपर वे भविष्यकी बड़ी सुन्दर कल्पना करते थे। महासमर छिड़ जानेके बाद यद्यपि तुर्कीको सतर्कताके लिए सामरिक तैयारियोंकी ओर काफी ध्यान देना पड़ रहा है, तथापि उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिका सिलसिला ज्योंका त्यों जारी है। तुर्की किसी भी अवस्थामें अपने उद्योग-धन्धोंकी उपेक्षा नहीं करना चाहता।

कमाल अता तुर्कमें राजनीतिज्ञ, सिपाही और सेनापति सबके गुणोंका समावेश था। उन्होंने विदेशियोंके प्रभुत्वसे तुर्कीको मुक्त किया और तुर्कीको नयी रोशनीसे चमत्कृत कर दिया। सदियोंकी रूढ़ियोंसे तुर्कीका पिण्ड छुड़ानेमें उन्होंने आश्चर्य कर दिखलाया और पाश्चात्य संस्कृतिका वह प्रकाश फैलाया, जिसके लिए ही उनका जन्म हुआ था। २५ वर्ष पहले जो तुर्की गया हो, वह यदि आज वहां जाये, तो उसे चकित रह जाना पड़े। आज तुर्क महिलायें आजादीसे मुंह खोलकर घरके बाहर निकलती हैं। लड़के-लड़कियां एक साथ स्कूलों और कालेजोंमें पढ़ते हैं। शिक्षा-प्रचारमें सबसे बड़ी बाधा अरबी लिपिकी जटिलता थी। कमाल अता तुर्कने इसके बजाय रोमन लिपिको जारी किया और इस तरह संसारके बहुत बड़े हिस्सेके साथ लिपि-सम्बन्धी एकता स्थापित कर दी। खिलाफतको तो उन्होंने अपने यहांसे उठा ही दिया। विवाह-शादी सम्बन्धी और अन्य रिवाजों तथा पहनावेमें भी आज तुर्कीकी अवस्था बिलकुल बदल गयी है। यह नहीं समझना चाहिए कि तुर्कीमें ये सब परिवर्तन यों ही आसानीसे हो गये। कमाल अता तुर्कको इन सुधारोंके लिए अपने समयमें कठमुल्लों और उनके समर्थकोंके घोर विरोधका सामना करना पड़ा था। कमाल अता तुर्कके निश्चयमें जो दृढ़ता होती थी और वे जिस कड़े अनुशासनके पक्षपाती थे, उसीसे वे अपने प्रयत्नमें सफल हुए। यद्यपि वे बड़े कठोर प्रतीत होते थे, तथापि प्रत्येक तुर्क यह जानता था कि वे जो कुछ कर रहे हैं, वह उनके हितके लिए। कमाल अता तुर्क जनतासे कुछ छिपाते नहीं थे, वे सारी बातें सामने रख देते थे। इसके विपरीत अन्य तानाशाह हमेशा ही अपने सारे कार्य रहस्यपूर्ण तरीकोंसे किया करते हैं। कमाल अता तुर्कने कभी तुर्कोंको झांसा नहीं दिया। वे जितना चाहते थे, उतना ही व्यक्त करते थे। उनका विश्वास था कि सीमा-पर बसे हुए एक गांवका मूल्य देशके भीतरी भागोंमें बसे हुए सैकड़ों गांवोंसे भी ज्यादा है। लासेनकी विजयके बाद यदि वे चाहते, तो अपनी सीमाका विस्तार आसानीसे कर सकते थे; परन्तु उन्होंने साफ कहा कि जहां-जहां तुर्कों-की आबादी है, वहीं तक वे अपनी सीमा रखना चाहते हैं। तुर्कीकी यही नीति है।

स्वर्गवासी कमाल अता तुर्क जब तुर्कीका उद्धार करनेमें
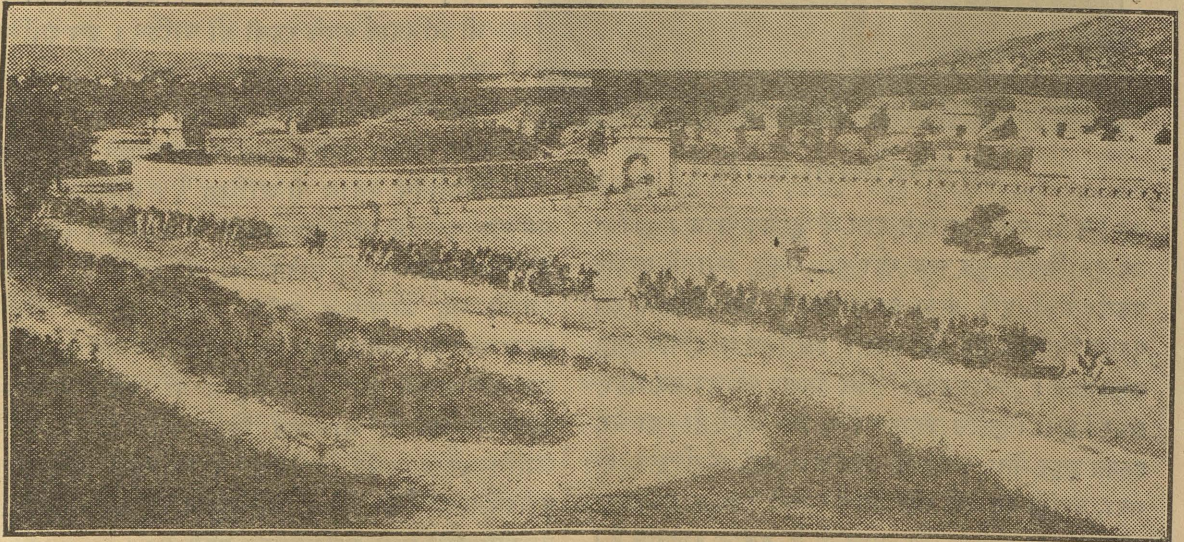
चार वर्ष पूर्व माण्ट्रेमूके समझौतेसे यूरोपके विभिन्न राष्ट्रोंने यह स्वीकार कर लिया था कि तुर्कीको भी दर्रे दानियालकी किलेबन्दी करनेका अधिकार है। तुर्कीमें सर्वत्र इसपर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की गयी थी। चित्रमें तुर्की रिसाला उस क्षेत्रमें पहली बार पहुंच रहा है।

तुर्की-सैनिक निशाना साध रहे हैं।

लगे हुए थे, उनके दाहिने हाथ थे इस्मत पाशा। तुर्कोंका जब यूनानियोंसे युद्ध चल रहा था, इनूनू स्थानमें उन्होंने यूनानियोंको बुरी तरह हराया था। इस विजयसे उस युद्धका निपटारा ही हो गया। इसीलिए वे इस्मत इनूनू कहलाते हैं। कमाल अता तुर्कसे उनका परिचय गत महासमरमें हुआ। तुर्कीके उद्धारके लिए जब सङ्घर्ष हो रहा था, इस्मत इनूनू सेना-नायक थे और जब वह कार्य पूरा हो गया, उन्होंने १३ वर्ष तक प्रधान मन्त्री रहकर उस सफलताको सुदृढ़ बनाया और आज तो वे तुर्कीके राष्ट्रपति हैं। राष्ट्रपति इस्मत इनूनू बड़े ही स्वतन्त्र विचारोंके हैं। वे कानोंसे कुछ कम सुनते हैं और बहुत ही सावधानीसे बोलते हैं। समस्याओंपर विचार होनेके समय वे कमाल अता तुर्कके कार्योंकी आलोचना बड़ी निर्भीकतासे करते थे, यही नहीं, यदि उनके किसी प्रस्तावसे वे सहमत न होते, तो विरोध भी डटकर करते थे। योग्यता, सफलता और कौशलके वे बड़े प्रशंसक हैं। शत्रुकी कमजोरियोंसे लाभ उठानेमें उन्हें विशेष अनुराग है।

तुर्की चाहता है कि अपनी स्वाधीनताको बनाये रखकर वर्तमान युद्धसे अलग रहे और अपने पूर्व निश्चित कार्यक्रमके अनुसार कार्य करता रहे। उसे कच्चा माल आसानीसे मिल सकता है। उसकी सीमामें धातुयें पायी जाती हैं। उसकी उपजाऊ जमीनसे यथेष्ट कपास और अन्न पैदा होता है। यद्यपि उद्योग-धन्धों और कला-कौशलके विशेषज्ञोंको विदेशोंसे बुलाकर तुर्कीने रख छोड़ा है, तथापि तुर्की सभी दृष्टियोंसे विदेशियोंके चंगुलसे बाहर निकलनेका सङ्कल्प कर चुका है और बड़ी शीघ्रतासे वह मञ्जिलपर मञ्जिल तय करता हुआ आगे बढ़ता जा रहा है। राष्ट्रपति इस्मत इनूनूका विश्वास है कि तुर्कीने जो निर्माण-कार्य आरम्भ किया है, उसके पूर्ण होनेके लिए अभी कई साल चाहिए और इस बीचमें शान्ति भी अनिवार्य रूपसे रहनी ही चाहिए। इस शान्तिकी आवश्यकताको दृष्टिमें रखकर १९३३ से ही तुर्कीने बाल्कन देशोंके बीच एक समझौता होनेका प्रयत्न किया और इसमें सफलता प्राप्त की। इस समझौतेमें यूनान भी शामिल है। बाल्कन देशोंकी समस्या वर्तमान महासमरका एक खास पहलू है। वर्तमान महासमर आरम्भ हो जानेके बाद भी हालमें ही बाल्कन देशोंकी एक कान्फरेन्स तुर्कीके प्रयत्नसे हुई थी, जिसमें तटस्थ रहनेका निश्चय किया गया था और यद्यपि बलगेरिया इस कान्फरेन्समें शामिल नहीं हुआ था, तथापि उसने भी तटस्थ रहनेका ही आश्वासन दिया है। बाल्कन देशोंमें शान्ति बनाये रखने, वर्तमान महासमरको दक्षिण-पूर्व यूरोपमें नहीं फैलने देनेके लिए तुर्कीने जो प्रयत्न किया है, उसकी प्रशंसा सभी शान्ति-प्रेमी करेंगे।

तुर्कीने केवल बाल्कन देशोंमें ही शान्ति रखनेका प्रयत्न नहीं किया है, फारिस, अफगानिस्तान और ईराक, तीन अन्य राष्ट्रोंको अपने साथ लेकर पश्चिम एशियाके राष्ट्रोंका

एक प्रभावशाली गुट बनानेका भी उद्योग किया है। इस तरह तुर्कीकी राजनीतिका प्रभाव केवल उसकी सीमाओं तक ही सीमित नहीं है, सीमाओंसे बाहर उत्तर अफ्रीका, पश्चिम एशिया और हिन्दुस्तानके मुसलमानोंपर भी उसका काफी प्रभाव है। मिश्र और सऊदी अरबपर यह प्रभाव चाहे उतना न हो; परन्तु इससे तुर्कीकी स्थितिमें कोई अन्तर नहीं आता। तुर्कीको यह अधिकार है कि वह जब चाहे, जब उसे युद्धका भय मालूम हो, दरेदानियाल और बासफोरसको किसी राष्ट्रके जङ्गी जहाजोंके लिए बन्द कर दे। इन दोनों मुहानोंपर तुर्कीने खासी किलेबन्दी भी की है। काले समुद्रसे जो देश लगे हुए हैं, उनके लिए तुर्कीकी मित्रता आवश्यक है। युद्धके समयमें रूमानियाके तेल और रूसके दक्षिणी हिस्सेके गेहूँसे यदि लाभ उठाना हो, तो इसे इन दोनों सङ्कीर्ण जल-प्रणालियोंके मार्गसे ही निकलना चाहिए। इस जल-प्रणालीके दोनों ओर तुर्कीकी तोपें चढ़ी हुई हैं और इन तोपोंके पीछे आधुनिक शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित सेना डटी हुई है।

तुर्क स्वभावसे ही वीर होते हैं। वे खेती करते हैं; परन्तु उनका बाना सिपाहीका है। उन्हें कट जाना पसन्द है; परन्तु पीछे पैर हटाना नहीं। उनका विश्वास है कि युद्ध-क्षेत्रमें जो लोग मारे जाते हैं, उन्हें बहिश्तमें मूल्यवान् उपहार मिलते हैं। इसी विश्वासके साथ तुर्क जब लड़ता है, निर्भय होकर लड़ता है और अपने अफसरोंका कहना पूर्ण निष्ठाके साथ मानता है। १९२७ में कमाल अता तुर्कने २० वर्षकी आयु होनेपर प्रत्येक तुर्कके लिए सैनिक-शिक्षाको अनिवार्य कर दिया था। इस व्यवस्थाके अनुसार तुर्क युवकोंको पैदल सेनामें १॥ साल, रिसालेमें २ साल और जल-सेनामें ३ साल तक शिक्षा दी जाती है। इस तरह आज छोटा देश होनेपर भी तुर्कीके पास लाखों सैनिक हैं—२० वर्षकी आयुसे लगाकर लगभग ३९ वर्षकी आयु तकका प्रत्येक तुर्क सुशिक्षित सैनिक है। शान्ति-कालमें तुर्कीकी सेनामें लगभग २०००० अफसर और १७४००० साधारण सैनिक होते हैं। युद्ध-कालमें इनकी संख्या बढ़ाकर आसानीसे कई गुनी की जा सकती है। तुर्क सैनिकोंको शिक्षा-कालमें कितनी ही बातोंका कठोर अभ्यास कराया जाता है। शस्त्रास्त्रोंसे लैस, सारे सामानके साथ मीलों लगातार दौड़नेका अभ्यास तो एक साधारण-सी बात है। रस्सीसे ऊपर चढ़नेका अभ्यास भी उन्हें कराया जाता है।

तुर्कीकी स्थिति केवल इसीलिए महत्त्वपूर्ण नहीं है कि काले सागरपर उसका नियन्त्रण है या डेन्यूब नदीके मुहानेपर उसका प्रभाव है, बल्कि उसका महत्त्व इसलिए भी है कि भूमध्य सागरमें भी कितने ही बन्दरगाह हैं। तुर्कीकी जल-सेना यद्यपि बहुत ज्यादा नहीं है, तथापि वह जितनी है, वह है पूर्ण सुसज्जित और आत्म-रक्षा करनेमें सर्वथा समर्थ। उसका किनारा कटा हुआ है और समुद्र काफी गहरा है। इसलिए आवश्यकता पड़ जानेपर कहीं भी जल-सेनाका महत्त्वपूर्ण केन्द्र बनाया जा सकता है।

यूरोपके जिस राष्ट्रको एशियामें अपना प्रभाव बढ़ाना हो या अपने प्रभाव और स्वार्थोंकी रक्षा करनी हो, उसके लिए तुर्कीसे मित्रता करना अनिवार्य है। ब्रिटेनको यह सुविधा यद्यपि पहलेसे ही प्राप्त थी, तथापि उसके साथ कई महीने पहले जो सन्धि हुई थी, उसने इस सुविधाको और भी अधिक प्रशस्त बना दिया है। फ्रान्सने तुर्क आबादीवाले एक प्रान्त सञ्जकको सीरियासे अलग कर तुर्कीको दे देनेमें जिस दूरदर्शिताका परिचय दिया है, वह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस तरह तुर्की ब्रिटेन और फ्रान्सके एक विश्वस्त मित्रके रूपमें पश्चिम एशियाके द्वारपर दृढ़ताके साथ डटा हुआ है। यूरोपके गणतन्त्रवादी राष्ट्रोंके लिए मिश्र, अरब और तुर्कीकी मैत्रीका मूल्य इतना अधिक है कि उसका मूल्य नहीं आंका जा सकता है। तुर्की वर्तमान महासमरमें तटस्थ रहनेका निश्चय कर चुका है; परन्तु यदि परिस्थितिसे विवश होकर वह इस युद्धमें शामिल हुआ, तो यही आशा की जा सकती है कि वह मित्र-राष्ट्रोंकी ओरसे होगा, और यह मित्र-राष्ट्रोंकी राजनीतिकी बहुत बड़ी सफलता होगी।

———

हथौड़ेवाला और लेखनीवाला

श्री प्रभागचन्द्र शर्मा

अंधेरी, कठोर चट्टानोंको फोड़कर अंधेरा दूर करनेवाली विद्युत्को जन्म दिया था किसी हथौड़ेवालेने ; रूढ़ि और भ्रान्त धारणाओंके घटाटोपमेंसे कल्याणका प्रकाश उद्भासित किया है किसी लेखनीवालेने! ज्ञानकी वैज्ञानिक सतहपर विश्वमें आज ये दो विचार पनप रहे हैं कि लेखनी और हथौड़ेकी साधना-भूमि समाज—जीवनकी वेदीपर साथ-साथ प्रतिष्ठित हो और लेखक पुरोहितके सिंहासनका स्वामी बने। ये दोनों विचार भारतीय भाव-विनिमयताके नियन्त्रणमें पेश किये जानेपर भी मूलतः विश्व-युगके दो महान् विचारोंकी अदम्य चिन्तन-प्रेरणाके परिणाम हैं—(१) फ्रायड (२) कार्ल मार्क्स। आजका युग घूम-फिरकर इन दो विचारकोंकी विचार-धारापर स्थित है। मानव आज जीवनमें अर्द्ध-जीवित है। वह केवल देहका जीना जी रहा है। आत्माका जीना शायद देहकी मृत्युके बाद शुरू होता होगा। तब क्या जब तक हम शरीरसे मृत रहेंगे, कुछ भी दिव्य प्रतिष्ठान हमारे हाथों सम्भव है ? नयी विश्व-रचनाके स्वप्नशीलोंको शरीर और आत्मासे एक साथ जीना होगा, यानी आजके मानवको दुर्गुणोंसे मुक्त और गुणोंसे सम्पन्न होना पड़ेगा। बुद्धि उसकी सौ फीसदी प्रखर जरूर हो; परन्तु उसका प्रमुख कार्य सद्गुणका विस्तार, 'सु'का प्रचार हो, दुर्गुण अथवा 'कु' का प्रसार करना न हो। खलील जिब्रानके शब्दोंमें—

"...लेकिन आज जीवित रहनेका मतलब बुद्धिपूर्वक जीवित रहना है, यद्यपि बुद्धिहीनोंके लिए अपरिचित होकर नहीं।

हमें बलवान होना है; किन्तु दुर्बलोंके नाशके लिए नहीं।

यह जानना है कि सन्त और पापी जुड़वां भाई हैं।

हम एक ऐसा उद्यान हों जिसकी दीवारें न हों, घेरा जिसके आस-पास न हो; हम वह अंगूरकी बाड़ी हों, जिसका कोई रखवाला न हो; एक ऐसा खजाना हों हम, जो सदा पाससे गुजरनेवालोंके लिए खुला रहे !

मछलीमार हम हों, शिकारी हों; किन्तु मछलीपर रहम, पशुपर हमारी महर हो; लेकिन उससे भी अधिक हमारी दया भूखेपर हो, जरूरतमन्द आदमीके लिए हो !"

मार्क्सने श्रमका शोषण और फ्रायडने स्नेहका शोषण परिष्कृत किया है। मुट्ठीभर धनिकों द्वारा उत्पादनके समस्त साधन समेटे जाकर कोटि-कोटि श्रमिकोंकी लाचारियों और बेबसियोंका नीलाम तथा इसी सधन वर्गकी शारीरिक विकार-वासनासे प्लावित ऐयाशी तथा अनाचार, इन दो नाशक प्रवृत्तियोंसे विश्व बेहद घिरा हुआ था। आज भी यद्यपि उससे मुक्ति नहीं हुई; फिर भी विचारवान् समाज इन बुराइयोंको समझने और उन्हें मिटानेके योग्य तेजीसे बन रहा है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि श्रम, स्नेह और सङ्घर्षकी त्रिधारासे समूचे विश्वका साहित्य परिप्लावित है। साहित्यकी स्वस्थतासे समाज-जीवन सबल रहता है। अतः साहित्यकारोंके दायरेमें यह त्रिधारा कैसे बही है और किस प्रकार इसे आगे बढ़ना होगा, इसी विस्तारके लिए मार्क्स और फ्रायडकी वैचारिक देनका महत्त्व है। यद्यपि मार्क्स समूहका सबसे बड़ा कल्याणकर्ता माना जाता है; किन्तु उसने यह दृष्टि व्यक्ति-जीवनसे ही ली। फ्रायडका भी यही हाल रहा। व्यक्ति-व्यक्तिके जीवन-श्रमका सर्वतोमुखी शोषण कैसे रोका जाय, यह मार्क्सकी जीवन-साधना थी और व्यक्ति-व्यक्तिके मनकी अस्वस्थता कैसे मिटायी जाय, यह फ्रायड चाहता रहा, ताकि अचेतन मनकी प्रतिरुद्ध प्रवृत्तियोंको चेतन मनके सम्मुख लाकर लोग विवेकशील हों, एवं ज्ञानके पथपर आरूढ़ हो चलें। दोनोंकी विचार-धारापर प्रकाश डालनेके पहले दोनोंके मनोलोककी वैचारिक प्रेरणा-मूर्तिका ध्यान रखना आवश्यक है। हीगेल मार्क्सकी बौद्धिक प्रेरणा और विचारमय आदर्श था। नीत्शेका 'पुरुषोत्तम' फ्रायडके मनोविकरुन-विकासकी प्रखर प्रेरणा और आलम्ब था। जैसा कि ऊपर लिखा है, इन दोनों महाप्राण साधकोंकी जीवन-साधना हमारे मौजूदा समाजके उस अर्द्ध-जीवित मनुष्यके उत्कर्षकी भावनासे

अभिप्रेत है, जो देहका जीना जी रहा है, जो दुर्गुणोंसे अधिक बोझिल है! तत्त्व अथवा विकारको आरपार देखनेकी बुद्धिके अभावका यह अभिशाप है। इन दोनों विचारकोंने मन और शरीरपर शासक—इसी कुहासे, घटाटोपको चीर फेंकनेका मार्ग बतलाया है। जो लोग दृष्टि रखकर विचार-धाराओंका अनुशीलन या मनन करते हैं, वे इस मतसे चौंकेंगे नहीं। मोटे रूपमें तो फ्रायडके मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान और मनोविकलन-शास्त्रकी सूक्ष्मता यह प्रकट करती है कि मानव मनकी कमजोरियोंका अद्भुत निर्भीक निर्णय देनेका साहस उसी साधकमें हो सकता है, जिसकी प्रेरणाका आधार, सम्बल, धरातल लोकोत्तर हो।

"मांके गर्भसे जन्म लेनेवाले बालककी सर्वप्रथम प्रेमिका उसकी 'मां' है और बालिकाका सर्वप्रथम प्रेमी उसका अपना बाप है," अथवा "जिस आदमीमें जो विकार है, उसीका वह जबर्दस्त विरोधक होगा", आदि स्तब्ध कर देनेवाले निर्णय धर्म-ग्रन्थों या शास्त्रकारोंके बूते समाज-जीवनकी छातीपर नहीं लादे जा सकते। हमने देखा है कि महात्मा गांधी अपने गुण-दोषोंको पहाड़पर चढ़कर विश्वके सम्मुख रख सकते हैं, रख देते हैं। यह उनकी लोकोत्तरता ही है। फ्रायडके मनो-विश्लेषणका यही आधार दिव्य मानवके हीन धरातलका पता पा सका है। निस्सन्देह हमने एक मां देखी है, जो अपनी निजकी बेटीके प्रति इतनी कटु, ऐसी निर्मम है कि दुनियामें उसका जोड़ नहीं है। पुरुषत्व नारीत्वका पूरक है, अतः नारीके पुरुष-प्रेमकी स्वाभाविकतावाला फ्रायडका निर्णय दूसरी ओर दिव्य मानवीके इसी हीनतम रूपकी सत्यता सिद्ध करता दीखता है। यह सच है कि फ्रायडका मनोविश्लेषण आज श्रेष्ठतम है। किन्तु उसमें भी कुछ मामलोंमें एकाङ्गी निर्णय दिये हैं। इसके कारण हैं: इस सचाईके सर्वमान्य होनेपर भी कि विश्व-मानव और विश्व-मन देश-काल और सीमाके घेरेमें बंधा हुआ होकर भी एक है। उसके दुःख-सुख, स्पन्दन-समवेदना समान हैं! हमें इतना स्वीकार करना होगा कि फ्रायडका विचार-लोक जिस विशेष व्यवहारवाद और रीति-रिवाजकी भित्तिपर बढ़ा अथवा पनपा था, वह अपने बाहरी रूपमें हमारे देशके लिए कई मानीमें एकदम भिन्न है। दूसरे जिस 'सुपरमेन'को लेकर फ्रायड मानवकी महत्ता, दृढ़ता और आत्म-स्वीकृति-भावनाके दिग्दर्शन करा गया, वह कोटि-कोटि कीट-पतङ्ग, मनुष्योंके साथ संलग्न नहीं हो पाता। बौद्धिक उद्दण्डता और विकारावेश सहनेमें असमर्थ तरुण जो आज गुमराह होकर अनैतिकताकी हिमायत या उससे प्यार करते देखे जाते हैं, वह इसी अनुभव-वैषम्यके कारण। असलमें फ्रायडकी प्रेरणा-मूर्ति, नीत्शेका लोकोत्तर पुरुष, व्यक्ति-पूजाको जहर मानकर उसका बहिष्कर्ता पुरुष जब वास्तव जीवनमें 'हिटलर' को वसुधापर लाता है, तो विचार-जगत्‌में ऐसे ही किसी श्रेष्ठ समर्थ पुरुषको रूप दे सकता है, जो अपने अभाव, कमजोरी, अपूर्णताको ज्योंका त्यों स्वीकार करना ही धर्म और साहस समझता हो। ऐसे ही श्रेष्ठ पुरुषको अपने विचार-प्रदेशमें रमाकर फ्रायडने मानव-जातिके मनोदेशके दर्शन करना चाहा है। कलाकार अपने मनोलोकमें विचरण करनेवाले मूर्त-अमूर्त विचारोंको स्वयंमें विद्यमानकी प्रतिच्छाया, निजकी भावी आकांक्षाकी तलमली, बेकरारी और पूर्व सञ्चित संस्कारिताके वरदानसे रङ्गत ढालता रहता है। फ्रायड अथवा मार्क्स भी इससे बचा नहीं।

जैसे धर्ममें समर्पण, वैसे ही साहित्यमें आत्म-स्वीकृति। अभी तक ऐसा रहा कि समाज और धर्ममें खाई रही; साहित्य और जीवनमें विषमता। अतः सृष्टि और सृष्टितत्त्व एक होकर भी दूर-दूर बढ़े, जुदा-जुदा जिये। एकरूपता, तदाकारताका अभाव इसीलिए इतना उत्कट होकर खलने लगा कि लोग आज बौखला उठे हैं। मनोभावों और मनोविकारोंकी शास्त्रीय काट-छांट या धार्मिक तिरस्कार उनकी रस-विद्युतका पता न देकर समूची देह, सारे जीवन, अखिल विश्वको निस्सार घोषित करनेमें सहायक हुए। समस्त सृजनका स्वामी इच्छाके रूपमें 'काम' से अनुप्राणित है, सृजनशील कलाकार होनेके लिए वासनासे मुंह नहीं मोड़ा जा सकता, यह धारणा ही मनपर अङ्कित नहीं होने दी गयी। प्राचीन लेखन-शास्त्रके आचार्य यह समझना ही नहीं चाहते रहे कि साहित्यमें प्रवृत्ति, मन और स्फूर्तिको गुंथ जाना होगा। मगर यह होता कैसे? मनमेंसे उद्भूत होकर मनके आज्ञानुसार प्रवृत्तिका प्रसार धर्मने रोक दिया था। मानवपूर्णता अथवा मानवताके कल्याणके लिए धर्म है, कहनेवाले ठेकेदार यह समझ ही कहां पाते थे कि विज्ञान या

तर्क-प्रधान युगमें धर्मका स्वरूप बदलेगा; किन्तु मानवताका स्वभाव अपरिवर्तित ही रहेगा। जिस प्रकार मनके अवचेतन-स्तरपर बहुत-सी विचित्र धारणायें बंधी पड़ी रहती हैं, उसी तरह कुसंस्कारोंके घटाटोपसे आच्छादित व्यक्ति अनावश्यक आशङ्का और आतङ्कोंसे भी चौंकते रहते हैं। अज्ञानी धर्मावलम्बी सम्प्रदायवादियोंके जीवन भी ऐसे ही थे। मनोविज्ञान-शास्त्रके अनुसार यह एक फोबिया है। इसी फोबियाके चलते धार्मिक पोप-पण्डोंने स्वाधीनचेता कलाकारकी वास्तविक आत्म-स्वीकृतिकी पुनीत धारामें आतङ्क ही का प्रतिबिम्ब देखा! एक फ्रायड आया और उसने मनके रेशे-रेशेको हिला-डुलाकर अथक श्रमशीलतासे जाना कि मनमें जिज्ञासा, सक्रियता और प्रमाद ये तीनों प्रवृत्तियां बह रही हैं। सत, रज और तम गुण यही हैं। पार्थिवका प्रेम, स्थूल रक्त-मांसका मोह, रूप-गुणकी चाह, यह सृष्टिकी आदि व्याप्त प्रवृत्ति है। विकार इनके मूलका नहीं, इनकी शाखा-प्रशाखाका है। एकमें अनेककी उत्पत्ति और अनेकमें एकके विस्तारका कुतूहल है यह विश्व-जीवन! देहपर कब्जा कलाकारकी सर्वप्रथम साधना है। इसे तीन तरहपर किया जा सकता था। ज्ञानका शासन, प्रथम श्रेणीका; परम्पराका, रूढ़िका शासन द्वितीय और व्यवधान यह तीसरा तरीका रहा। पहला जितना कठिन, दुरूह; तीसरा उतना ही सरल, सुगम। हां Traditian से,प्रवृत्ति-प्रतिरोध कुछ कठिन नहीं; किन्तु महान् घातक जरूर सिद्ध हुआ। समन्वयात्मक, परम्परागतात्मक पहुंच धर्मान्धताकी देन है। धर्मने न जाने क्यों यह समझाना उचित नहीं समझा कि व्यक्ति-जीवनके, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, जिस कोनेसे देवत्व-दान हो रहा हो; ग्रहण करनेवालेको भी उसे देवत्व ही के हाथों ग्रहण करना चाहिए। चाहे वह धर्म, रूढ़ि या परम्पराके विपरीत ही क्यों न हो! प्रायः ऐसा होता है कि प्रेमका आमन्त्रण और धर्मकी पुकारका भाव आपसमें टकरा जाया करते हैं। ऐसे अवसरपर क्या निर्णय किया जाय? कलाकार कहता है: तुम अपनी कृतिका विस्तार करो, इससे अपने अभीष्ट-भावको प्राप्त कर लोगे। धर्ममें एक कहता है—कर्मण्येऽवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। दूसरा कहता है—मा मेकं शरणम् व्रज। तीसरा कहता है—त्वदीयं वस्तु गोविन्दम् तुभ्यमेव समर्पयेत् आदि। ऊपरसे देखनेमें एक गहरा भेद जान पड़ता है; परन्तु बात ऐसी नहीं है। असलमें लक्ष्य-दर्शनके साधन, पथके अन्धकारके कारण, बीचके बीच, परस्पर ही में टकरा गये हैं। यह जो दृष्टिकोणकी विषमताका सङ्घर्ष-चीत्कार मचा हुआ है न, यह उन्हीं भटके हुए, अन्ध-साधनोंकी विफल खीझ और निर्लज्जता है! यदि धर्म, समाज, विज्ञान, नैतिकता, न्याय इन सबमें दृष्टि-साम्य हो गया होता, तो उलझन-भरा यह विश्व सुलझनकी ओर बढ़ा होता। टेढ़ाई, रहस्य, पेचीदगी, उलझन सब दृष्टिहीनता (आध्यात्मिक या जागतिक कोई भी) का भ्रम है। सत्य, अन्ततः अति सरल है। बिलकुल स्पष्ट है। यहां कोई झमेला नहीं। धर्मके पथसे जन-कल्याणकी ओर जो महामानव बढ़े थे, वे स्वयंमें बिलकुल स्पष्ट थे। उनके अनुयायियों और साथियोंने उनकी विचार-धाराका कचूमर निकाला। विचारकताकी दिशासे जो लोग समाजको ऊंचा उठानेका कार्य करनेको उद्यत होते हैं, वे भी स्वयं इतने ही सत्य, सरल और सुस्पष्ट हैं। मार्क्सकी विचार-धाराको खतरा या फ्रायडकी मनोलोक-यात्राको विकारग्रस्त मानने या उसके अनुसार काम करनेसे इच्छित ध्येयकी प्राप्ति नहीं होगी। परन्तु शताब्दियोंके बाद आज मानव उत्कर्षकी चरमतापर आसीन दीख पड़ रहा है। फिर भी जिस उच्चतर चेतनाकी हम वाञ्छा रखते हैं, उसका पूर्ण विकास अभी भी होना बाकी है। इसका कारण अतीव बुद्धिवादी मनोविश्लेषज्ञ भी यही मानते हैं कि हम जो आज सभ्य हो गये हैं—वर्षोंसे पशु थे, अतः आज दिन भी हमारे मनके अंधेरे, गहरे स्तरोंपर उसी पशु-जीवनकी क्रूर प्रवृत्तियां दबी पड़ी हैं, जिन्हें धर्मने आसुरी प्रवृत्तियां नाम दे रखा है। हम आजके वातावरण और अतीतके संस्कारोंका हवाला देकर जिस महत्ताकी प्रतिष्ठा सब मनुष्योंमें देखना चाहते हैं, उन्हें यह न भूलना होगा कि हमारे इस विचार-की उम्र वर्षानुवर्षसे सञ्चित हमारी कुप्रवृत्तियोंकी उम्रके सम्मुख बहुत कम है। फ्रायडने आधुनिक मनोविश्लेषणको जिस दूरी तक ला दिया है, वहांसे आगे ले जानेकी जवाबदेही भी उसके समर्थकोंपर है। विस्तारके भयसे बारीकीसे उसपर लिखा नहीं जा सकता; किन्तु चित्तका धर्म और चित्त-रचनाकी एकरसतामें अभाव चला ही जा रहा है। इसलिए फ्रायडने 'ध्यान' की तीव्रतापर अन्ततः सारा जोर

दिया है। यह निर्विवाद है कि विश्वके विचारक मात्र मनोलोकके दिव्य प्रकाशके सहारे फैलेंगे और वैज्ञानिक मार्क्सकी कठोर साधना-भूमिके सहारे। और ऐसा ही हो भी रहा है। विश्वके वैज्ञानिक इस नतीजेपर आ लगे हैं कि यह अखिल सृष्टि 'शक्ति'का ही प्रतीक है। तब, सहसा प्रश्न साफ हो जाता है कि इस जगतमें रहनेवाला हर प्राणी 'शक्ति' और 'ध्यान' की महत्तापर एकाग्र हो। शक्तिसे अर्थ 'सत्ता' (अपने सम्पूर्ण विकारों सहित) न लिया जाय, न ध्यानका अर्थ माला या मन्दिर-प्रवेश। अंगरेजीके शब्द Energy (शक्ति) और Concentration (एकाग्रता) इसके लिए उपयुक्त होंगे।

आजके महाविकासमान् जगत्के बीच सारी चीजें धीरे-धीरे सिमट आयी हैं, जैसे इन दोनों मूलतत्त्वोंको छा देनेकी, ढक देनेकी कटुता रखकर। मार्क्स और फ्रायडकी विचार-धारामें रूहकी तरह व्याप्त रहे ये दो तत्त्व अति गम्भीर रूपसे विचारणीय हैं। यह स्पष्ट है कि वैज्ञानिकता दोनोंका चिन्तन-धरातल रही है। अतः विज्ञानके अपने वरदान फ्रायड और मार्क्स दोनोंको प्राप्य रहे हैं।

उनके चरणोंका अरुण राग

उनके चरणोंका अरुण राग

करता रहता मनको चञ्चल
प्रतिपल बेकल, प्रतिपल विह्वल
नयनोंमें भर लाता है जल
बनता आंसूके अमिट दाग;
उनके चरणोंका अरुण राग

सुधि बन गमकाता है सितार
बजते प्राणोंके तार तार
आंखोंमें छाता बन खुमार
यह किस नव मुरलीका विहाग?
उनके चरणोंका अरुण राग

ऊषा सजती है उजियाली
माणिक मरकत पाते लाली,
भरता गुलाब खाली प्याली,
उनके चरणोंका पा पराग
उनके चरणोंका अरुण राग

चुम्बन लेता, झुक झुक प्याला,
शरमाती, मुरझाती हाला,
बलि हो जाती मुग्धा बाला,
उकसाता कैसा अमर त्याग?
उनके चरणोंका अरुण राग

वह बिखर गया सौरभ बनकर
मधु गन्ध अन्ध हो रहे भ्रमर,
मधु ऋतु ले आया कौन सुघर?
फूले पलाश ले नयी आग,
उनके चरणोंका अरुण राग

सिन्दूर बिन्दुमें मधु लाता,
मेहंदीमें नव श्री धर जाता,
गालोंमें लाली बन छाता
लज्जा पा जाती है सुहाग
उनके चरणोंका अरुण राग

इस लालीसे जगकी लाली
इस लालीसे सब हरियाली
इस लालीसे श्री श्रीवाली
है अङ्ग - अङ्गमें अङ्गराग
उनके चरणोंका अरुण राग

—सोहनलाल द्विवेदी, एम० ए० एल-एल० बी०

यूरोपीय महासमर और सोवियट रूस

श्री जी० पी० शर्मा, एम० ए० एल-एल० बी०

एशियाके भविष्यकी दृष्टिसे सोवियट रूसकी राजनीति क्या है और वर्तमान महासमरका उसपर क्या प्रभाव पड़ सकता है—ये प्रश्न हैं, जो बार-बार उठते हैं। कुछ समय हुआ, हर हिटलरके अपने पत्र "बोलकिशे बोबाचर" ने सोवियट रूसको हिन्दुस्तानपर हमला करनेकी सलाह दी थी; क्योंकि हिन्दुस्तान ब्रिटिश साम्राज्यका एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग है। पत्रने बतलाया था कि राजनीतिक और सैनिक, दोनों ही दृष्टियोंसे वैसा होनेके लिए यही उपयुक्त समय है। राजनीतिक स्थितिके सम्बन्धमें उसका कहना यह था कि महात्मा गांधीकी राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी असन्तुष्ट है; क्योंकि ब्रिटिश सरकार हिन्दुस्तानको युद्ध समाप्त हो जानेपर ही औपनिवेशिक पद देनेकी बात कहती है। सैनिक दृष्टिकोण बतलाते हुए इस पत्रने लिखा था कि हिन्दुस्तानमें बहुत थोड़े ब्रिटिश सैनिक हैं और निश्चित रूपसे वे उत्तरसे रूसकी गतिको रोक न सकेंगे। इसी तरहके लेख इटलीके दो पत्रों 'लावोरो फेसिस्टा' और 'मेसाजिरो'में भी प्रकाशित हुए थे। इन पत्रोंका नाजियोंसे घनिष्ट सम्बन्ध है और हो सकता है कि "बोलकिशे बोबाचर" में जिसकी आवाज है, उसीके इशारेपर इन पत्रोंमें भी लिखा गया हो। जो हो, सोवियट रूसको हिन्दुस्तानपर हमला करनेकी सलाह देने और इस तरह उसे आक्रमणकारी बनानेकी बात लिखकर कमसे कम नाजियोंके इस पत्रने यह तो बतला ही दिया है कि युद्धसे पहले २३ अगस्त १९३९ को रूसके साथ जर्मनीकी जो सन्धि हुई, उसमें हिटलरका भीतरी उद्देश्य रूससे क्या काम लेनेका था।

अक्टूबर १९१७ की क्रान्तिके समय और उसके बादके कुछ वर्षोंमें लेनिनका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य था कम्यूनिस्ट घोषणाके अन्तमें दिये हुए वाक्यमें परिवर्तन करना। मार्क्स और एञ्जिल्सने इस घोषणाके अन्तमें केवल यह लिखना काफी समझा था कि "संसारके मजदूरो, एक हो जाओ।" लेनिनने क्रान्ति और साम्राज्यवादके वर्तमान युगकी दृष्टिसे इस बातपर जोर दिया कि यह वाक्य इस तरह होना चाहिए—"संसारके मजदूरो और पीड़ितो, एक हो जाओ।"

पीड़ितोंसे लेनिनका अभिप्राय था साम्राज्यवादी राष्ट्रोंके अधीन देशोंके करोड़ों निवासी! फलतः नवीन सोवियट शासनका एक तात्कालिक ध्येय पीड़ित लोगोंका परित्राण हो गया। रूस आज जब लेनिनकी क्रान्तिमूलक मुख्य शिक्षाओंसे हट रहा है और 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली राजनीतिका अनुसरण कर रहा है, उसे नैतिक दायित्वकी याद दिलानेका अवसर नाजियोंको मिल गया है। यह कुछ व्यङ्ग-सा मालूम होता है; परन्तु यह तो साफ ही है कि हिटलरको वैसा होनेमें कोई दिलचस्पी नहीं है। 'बोलकिशे बोबाचर' में जो सङ्केत किया गया है, वह अपना वर्तमान उद्देश्य पूरा करनेके लिए है। उसका विश्वास है कि यदि रूसको हिन्दुस्तानपर हमला करनेके लिए लुभाया जा सके, तो इससे ब्रिटेनको, जो जर्मनीका सबसे बड़ा शत्रु है, दो मोर्चोंपर लड़नेके लिए विवश किया जा सकेगा और साथ ही रूससे लड़नेके लिए भी उसे सामने आना पड़ेगा, जब कि अभी तक ब्रिटेनने रूसके विरुद्ध लड़नेकी स्थितिको टाला है, बड़ी सावधानीसे बचाया है।

जर्मनीके इन सङ्केतोंके उत्तरमें रूसने अपनी यूरोप सम्बन्धी नीतिको और भी अधिक चुस्त कर लिया। जर्मनीने अपना स्वार्थ साधनेके लिए वैसी सलाह दी थी। यदि स्टालिन उस ओर ध्यान देता, तो यह उसकी बड़ी जबर्दस्त भूल होती। कोई भी देश हो, उसकी परराष्ट्र-नीति बहुत कुछ उसकी भौगोलिक स्थिति और राजनीतिक परिस्थितिपर निर्भर होती है। रूस भी इसका अपवाद नहीं है। एक बार नक्शेपर निगाह डालकर देखिये, पूर्वमें एशियामें प्रशान्त महासागरसे लगाकर पश्चिममें यूरोपके मध्य भाग तक रूस फैला हुआ है और समस्त पृथिवीका लगभग छठा भाग रूसके अधीन है। फलतः रूसकी परराष्ट्र-नीति हमेशा ही इस तरहकी होगी कि वह

पूर्वमें जहां ब्लाडीवोस्टककी स्थितिके उपयुक्त हो सके, वहां पश्चिममें वह मास्कोके लिए भी ठीक हो। रूसको इसीलिए कभी एशिया सम्बन्धी समस्याओंकी ओर विशेष ध्यान देनेके लिए विवश होना पड़ता है और कभी यूरोपकी घटनाओंकी ओर ध्यान देना पड़ता है।

एशियामें इधर कुछ दिनोंसे रूसकी नीतिमें कुछ शिथिलता या ढीलापन आ गया है। कौन नहीं जानता कि मन्चूकोकी सीमापर रूस और जापानके सैनिकोंमें बराबर ही भिड़न्त होती रहती है, दोनों किसी क्षेत्रको अपना-अपना बतलाते हैं, सीमा-सम्बन्धी इस झगड़ेका निपटारा करनेके लिए कमीशन बैठते हैं, कमीशन अपने प्रयत्नमें विफल हो जाते हैं और उसके बाद भी एक नया कमीशन बैठा दिया जाता है। इसका अर्थ स्पष्ट है। यूरोपमें इसके विपरीत रूसने दृढ़ निश्चयका परिचय दिया है—भले ही वर्तमान महासमरमें उसने क्रियात्मक रूपसे भाग न लिया हो। वर्तमान यूरोपीय युद्ध अभी तक अनिश्चित अवस्थामें है। इसका कारण मुख्यतः यह है कि यद्यपि उसकी सम्भावना बहुत दिनोंसे थी, तथापि वह आरम्भ अचानक ही हो गया। १९१४ वाले महासमरके सम्बन्धमें यह नहीं कहा जा सकता। उस समय यह पहलेसे ही निश्चित था कि कौन किसका साथी होगा। जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी, बलगेरिया और तुर्की एक गुटमें थे और दूसरे गुटमें थे ब्रिटेन, फ्रान्स और रूस। उस समय कुछ जर्मन तो यह विश्वास भी नहीं करते थे कि युद्धमें फ्रान्स और ब्रिटेन एक-दूसरेके साथी होंगे। युद्ध आरम्भ हो जानेके बाद कई अन्य राष्ट्र उसमें शामिल हुए। इटली, रूमानिया और अमेरिकाका रुख लड़ाई होनेके दिनोंमें स्पष्ट हुआ। फिर भी, एक बात साफ है, उस समय युद्ध-लग्न दोनों पक्षोंके साथियों और मित्रोंकी जो रूप-रेखा पहलेसे ही निश्चित थी, वह न्यूनाधिक अन्त तक रही थी। आज अवस्था बिलकुल भिन्न है। यह सच है कि इस युद्धमें भी, पहलेवाली लड़ाईके समान, अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नोंकी गुत्थियां हैं। ब्रिटेन और फ्रान्स अपने साम्राज्यकी रक्षा करना चाहते हैं और जर्मनी अपने साम्राज्यकी सृष्टि करना चाहता है। इसके अलावा एक अन्य बात भी है। जर्मनीमें राष्ट्रीय समाजवादमूलक राजनीतिक प्रणाली है और यह युद्ध इस प्रणालीके भी विरुद्ध है। सबसे बड़ी बात वर्तमान महासमरके सम्बन्धमें यह है कि वह ऐसे समयमें हो रहा है, जो आर्थिक और सामाजिक विकास और क्रान्तिकी सम्भावनाओंसे परिपूर्ण है। गत महासमरका परिणाम केवल यही हुआ था कि नक्शेमें कुछ देशोंकी सीमायें बदल गयी थीं और कुछ देशोंके रङ्ग भी बदल गये थे। परन्तु यह हो सकता है कि वर्तमान युद्ध यूरोपके सामाजिक भविष्यका निपटारा कर दे।

आज जो दो गुट हैं, क्या यह सम्भव नहीं है कि लड़ाई चलते रहनेके दिनोंमें ही उनमें परिवर्तन हो जाय। यह बिलकुल निश्चित-सा मालूम होता है। पहले भी ऐसा अनेक बार हुआ है। देखा गया है कि एक युद्धमें जो दो देश एक-दूसरेके मित्र थे, वही किसी अन्य युद्धमें एक-दूसरेके शत्रु हो गये। वर्तमान युद्धमें भी यह हो सकता है और युद्ध चलते-चलते हो सकता है। इस समय नार्वे, हालैण्ड और बेल्जियमको साथी बनाकर ब्रिटेन और फ्रान्स जर्मनीसे लड़ रहे हैं, जिसकी रूसके साथ अनाक्रमण सन्धि है। रूसके अलावा जर्मनीका साथी है इटली, जो मुस्तैदीसे तटस्थ बना हुआ है। यह निश्चित मालूम होता है कि वर्तमान युद्ध चलते-चलते शक्तिके इस सन्तुलनमें उलट-पलट हुए बिना नहीं रहेगी।

रूसके सम्बन्धमें जो प्रश्न मुख्य रूपसे सामने आता है, वह यह है कि क्या वह इस युद्धसे दूर रहेगा, दूसरे शब्दोंमें वह कब तक अपनी तटस्थताको कायम रखेगा? यह प्रश्न आसान नहीं है। स्वयं रूसके लिए यह सम्भव नहीं है कि वह इस प्रश्नका उत्तर दे सके। इस समय रूसका स्वार्थ युद्धसे अलग रहनेसे सधता है; क्योंकि यह युद्ध यूरोपके उन देशोंमें हो रहा है, जिनकी आर्थिक और औद्योगिक प्रणाली अत्यन्त उन्नत अवस्थामें है। जर्मनी और रूस, दोनों देशोंके तानाशाहोंमें अन्तर है। हिटलर वही नहीं है, जो स्टालिन है। हिटलरकी परराष्ट्र-नीति स्टालिनसे भिन्न है। दस वर्षसे अधिक समय बीत रहा है, रूसकी परराष्ट्र-नीतिमें स्थिरता आ गयी है। उसे अपनी घरेलू नीतिका विस्तार करनेकी जरूरत नहीं है। वर्तमान युद्धमें यदि रूस तटस्थ रहे, तो उसे लाभ ही रहेगा, उसकी भीतरी शासन-नीति और भी अधिक सुदृढ़ होगी। फिर, आर्थिक क्षेत्रमें भी

दोनों देशोंमें बड़ा अन्तर है। कई साल पहलेसे योजना बनाकर जर्मनीने भरसक यह प्रयत्न किया है कि वह सभी आवश्यकताओंके लिए कृत्रिम साधनोंसे आत्म-निर्भर हो जाय और जर्मनीकी सीमाओंसे बाहर आर्थिक संसारपर निर्भर रहे बिना अपना कार्य चला सके। जर्मनी अपने इस प्रयत्नमें विफल हुआ है। इसका पता इस बातसे चल जाता है कि ब्रिटेन और फ्रान्सने जो घेरा जर्मनीपर डाल रखा है, उसके कारण गत ७-८ महीनेमें वहां तबाही आ गयी है। वहांकी शोचनीय आर्थिक अवस्थाके जो समाचार आते हैं और तटस्थ देशोंके पत्रोंमें जो विवरण छपता है, उससे पता चलता है कि जर्मनीका आर्थिक सङ्गठन आत्म-निर्भर नहीं है। रूस इसके विपरीत आर्थिक दृष्टिसे अपनेको आत्म-निर्भर बनानेमें न्यूनाधिक समर्थ हो सका है और इसके लिए उसने जिन साधनोंसे काम लिया है, वे कृत्रिम नहीं हैं। रूसके कारखानोंमें अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए माल तैयार होता है। उसके लिए रूसको बाजार खोजनेकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती। उसकी जो विस्तारात्मक नवीन परराष्ट्र-नीति है, उसके मूलमें न तो आर्थिक आवश्यकतायें हैं और न आर्थिक साम्राज्यवाद। राजनीतिक आवश्यकताओंके सम्बन्धमें बात यह है कि स्टालिनने जो कदम उठाया है, वह केवल उससे होनेवाले प्रत्यक्ष लाभको दृष्टिमें रखकर। फिर, युद्ध ऐसी बात नहीं है, जिसकी सारी सम्भावनाओंको पहले ही देखा जा सके। वह स्वयं स्टालिनके शासनके लिए भी भयावह हो सकता है।

हिटलर और उसके साथियोंकी अवस्था भिन्न है। हिटलरने ब्रिटेन और फ्रान्ससे युद्ध छेड़ रखा है। यह तो पहले भी नहीं सोचा जाता था और बादमें घटनाओंसे भी साबित हो चुका है कि जर्मनी चुपचाप नहीं बैठा रह सकता। उसकी सत्ता तभी रह सकती है, जब वह दूसरे देशोंमें लगातार हस्तक्षेप करता रहे—फिर, यह हस्तक्षेप चाहे पश्चिममें हो या पूर्वमें, या दक्षिण-पूर्वमें।

पोलैण्डमें जर्मनीको जो कुछ करना था, वह रूसके साथ अनाक्रमण-सन्धि होनेके कारण ही हो सका, इसमें सन्देह नहीं है; परन्तु उसे कर लेनेके बाद हिटलरने एक बार फिर बोलशेविज्मका हौआ सामने लानेकी कोशिश की—यद्यपि रूसकी वर्तमान सुदृढ़ स्थितिके लिए हिटलर सबसे अधिक जिम्मेदार है। गत अक्टूबरमें 'फिगारो' और 'इपक' पत्रोंमें प्रकाशित कितने ही लेखोंमें बोलशेविज्मके सम्बन्धमें यह भय प्रकट किया गया था। परन्तु पश्चिमी यूरोपकी शक्तियां तो हृदयसे हिटलर और हिटलरवादका अन्त करनेका निश्चय कर चुकी हैं, उन्होंने जर्मनीके शान्ति-सम्बन्धी अप्रत्यक्ष प्रस्तावोंका कोई उत्तर नहीं दिया, फिर भी रूसका अभी तक यह विश्वास है कि मित्र-राष्ट्रों और जर्मनीमें वैसी कम्यूनिस्ट-विरोधी शान्ति होना सम्भव है। लड़ाई जिस ढङ्गसे चल रही है, उससे रूसकी उस आशङ्काकी पुष्टि-सी होती है। जो हो, यह प्रारम्भिक युद्ध यदि सचमुच युद्धका रूप ग्रहण करे और लाखों मनुष्योंका संहार होने, युद्धलग्न और तटस्थ देशोंके नैतिक और भौतिक साधनोंके समाप्त हो जानेके बाद यदि यूरोपमें सचमुच बोलशेविज्मका भय उपस्थित हो और जर्मनी एवं पश्चिमी यूरोपके अन्य देशोंको यह भय अपने लिए दिखलाई पड़ने लगे, तो सारी अवस्था तुरन्त ही बदल जायगी। इसीलिए यह कोई असम्भव कल्पना नहीं है कि हो सकता है, ऐसा दिन आये, जब जर्मनीको सफेद झण्डीके साथ मित्र-राष्ट्रोंके पास एक दूतके हाथ यह सन्देश भेजना पड़े कि 'जर्मनीका सामाजिक ढांचा खतरेमें है।' रूसको यह कभी अभीष्ट नहीं हो सकता।

ब्रिटेन और फ्रान्स यदि सचमुच ही उद्देश्य पूरा होने, हिटलर और उनकी प्रणालीके मिट जाने तक युद्ध चलानेका इरादा कर चुके हों, तो रूस इस लड़ाईमें कभी नहीं पड़ेगा। जिस लड़ाईमें बहुत ज्यादा शक्तिका स्वाहा हो रहा हो और जिसके अन्तमें हिटलरको न रह जाना हो, उससे यूरोप और एशियापर सोवियट रूसका राजनीतिक प्रभाव बहुत अधिक बढ़ जायगा; क्योंकि युद्धलग्न सभी शक्तियां बुरी तरह थक जायंगी। हिटलर और स्टालिन, दोनों ही इस बातको हमेशा सामने रखते हैं और मोशिये रेनाड और मि० चर्चिल भी इसे जानते हैं। यह हो सकता है कि उस स्थितिके आधारपर रूसके विरुद्ध ब्रिटेन, फ्रान्स और जर्मनीकी सन्धि हो।

यूरोपमें जिस समय ये सब दांव-पेंच चल रहे होंगे या उनकी सम्भावना होगी, क्या यह आशा की जा सकती है कि स्टालिन चुपचाप देखता रहेगा, वह कुछ न करेगा? जब तक उसके लिए हस्तक्षेप करना सम्भव होगा, तब तक

वह हस्तक्षेप करना चाहेगा; परन्तु यदि कोई अन्य मार्ग न हो, तो यह हो सकता है कि वह जर्मनीकी राष्ट्रीय बोलशेविक विचार-धाराका समर्थन करे और मित्र-राष्ट्रोंके विरुद्ध जर्मनीको सहायता पहुंचाये। इस तरह सोवियट रूस उसी समय तक तटस्थ रह सकता है, जब तक रूसके विरुद्ध जर्मनी, ब्रिटेन और फ्रान्सका सम्मिलित मोर्चा बननेकी सम्भावना नहीं है। स्टालिनकी सारी नीति हिटलरकी गतिविधिपर निर्भर है। संक्षेपमें, यदि जर्मनी यह युद्ध जारी रखे और युद्ध भयङ्कर भी होता जाये, तो रूससे तटस्थ रहनेकी आशा की जा सकती है; परन्तु ज्यों ही सोवियट रूसके विरुद्ध मोर्चा बनानेके लिए समझौता होनेकी मनोवृत्ति पैदा होने लगेगी, स्टालिनको इस बातमें कोई सङ्कोच नहीं होगा कि वह जर्मनीको सहायता पहुंचाये और जर्मनीकी वर्तमान सामाजिक प्रणालीके बजाय राष्ट्रीय बोलशेविक विचार-धाराका समर्थन करे। यह मित्र-राष्ट्रोंकी योजनाके प्रतिकूल होगा।

स्टालिनकी नीतिका प्रभाव केवल यूरोपपर ही नहीं पड़ता, एशिया सम्बन्धी सोवियट उद्देश्योंसे भी उसका सम्बन्ध है। इस समय यह नीति प्रतीक्षापूर्वक घटनाओंको देखनेकी है। यूरोपीय युद्धके सम्बन्धमें अपनी नीतिका अन्तिम निर्णय करने और उसमें क्रियात्मक योग देनेसे पहले स्टालिन यह देखेगा कि किस करवट ऊंट बैठ रहा है। किसी अन्य देशमें रूसी सेनाओंको भेजनेसे पहले वे अच्छी तरह विचार करेंगे। इसमें सन्देह नहीं है कि प्रतीक्षामूलक वर्तमान नीतिसे रूसकी एशियाई प्रगतिमें बाधा पड़ गयी है। जिन घटनाओंके परिणाममें मञ्चूकोकी सीमापर सङ्घर्ष आरम्भ हुआ था और बाहरी मङ्गोलियामें एक युद्धके रूपमें जारी रहा था, उनके सिलसिलेमें अग्रसर होने और अन्तिम रूपसे निपटारा करनेके बजाय अब स्टालिनका प्रयत्न यह है कि अस्थायी सन्धि हो जाय।

पूर्व कालमें सोवियट रूस और जापानने अपने झगड़ेके प्रश्नोंको जान-बूझकर बनाये रखा है, उन्होंने कभी अग्रसर होकर अपना विवाद मिटानेका प्रयत्न नहीं किया है। रूसने अपनेको इन झगड़ोंमें संसारके समक्ष इस तरह रखा है, मानो वह शान्तिका पूर्ण पक्षपाती हो और जापान दोषी हो। जनवरी १९३६ में मोशिये मोलोटोवने कहा था—"मञ्चूरियामें चाइनीज ईस्टर्न रेलवेको बेच देनेका समझौता कर रूसने इस बातका परिचय दिया है कि वह सहिष्णु और शान्तिप्रिय है।...परन्तु रूस और जापानके पारस्परिक सम्बन्धके विषयमें मुख्य प्रश्न अभी तक हल नहीं हुआ है।" इसके आगे मोशिये मोलोटोवने बतलाया था कि १९३३ से इधर कई बार जापानके सामने यह प्रस्ताव रखा गया कि दोनों देशोंमें अनाक्रमण सन्धि हो; परन्तु जापानने जान-बूझकर इस विषयको टाला है। उन्होंने इस बातपर भी जोर दिया कि जापान और मञ्चूरियाके सैनिक रूसकी सीमामें घुसते रहते हैं। इस सम्बन्धमें जापानका रुख बहुत ही सन्देहजनक है।

किन्तु रूसका रुख भी वैसा ही सन्देहजनक है। चाइनीज ईस्टर्न रेलवे खरीदनेके कारण जापानपर रूसका जो पावना हो गया है, उसकी किस्त चुकानेसे जब जापान इनकार कर रहा था, रूस इस बातपर अड़ा हुआ था कि मछलियां मारनेके सम्बन्धमें रूस और जापानमें जो समझौता है, उसकी अवधि एक समयमें केवल एक सालके लिए ही बढ़ायी जाय। इसी तरह सखालियन टापुओंमें मिट्टीके तेलके जो सोते रूसके अधिकारमें हैं, उनके सम्बन्धमें जापानको उसने काफी तङ्ग किया। जापान और रूसके बीच सीमा-सम्बन्धी झगड़ोंने एक बार तो युद्ध-जैसा रूप ग्रहण कर लिया; परन्तु इधर जो घटनायें हुई हैं, उन्होंने दोनों ही पक्षोंको थोड़ा ठण्डा होनेके लिए विवश कर दिया। यूरोपकी घटनाओंका रूसकी एशिया सम्बन्धी नीतिपर जबर्दस्त प्रभाव पड़ा है। जापानने रेलवे सम्बन्धी पावनेकी किस्त दे दी और रूसने भी सीमा सम्बन्धी झगड़ा निपटानेके लिए कमीशन बैठाना स्वीकार कर लिया। यह सब उस समय हुआ, जब यूरोपमें रूस और जर्मनीमें अनाक्रमण सन्धि हुई। उस समय ऐसा प्रतीत होता था, मानो रूस और जापान भी आपसमें अनाक्रमण सन्धि करना चाहते हैं और शायद चीनके सम्बन्धमें दोनोंमें कोई समझौता हो गया है। किन्तु वास्तवमें यह बात नहीं है। दोनों देशोंके बीच झमेलेकी मुख्य बातें ज्योंकी त्यों बनी हुई हैं और दोनों ही अस्थायी रूपमें शान्ति बनाये रखनेके लिए उत्सुक हैं। जापानका हमला यदि कभी हो, उसका सामना करनेके लिए रूस अपनी पूर्व सीमाको दृढ़ तो कर लेना चाहता है;

परन्तु यूरोपकी घटनायें उसे उधर ध्यान देनेके लिए विवश कर रही हैं, क्योंकि उनका प्रभाव स्टालिनके शासनके लिए भयावह साबित हो सकता है। जापान भी कठिनाईमें है। उसका चीनके साथ अभी तक युद्ध चल रहा है और जरूरत यह है कि पड़ोसके देशोंके साथ उसका सम्बन्ध अच्छा हो। फिर, रूसके साथ यदि जापानकी तनातनी इस समय रहे, तो अमेरिकापर दवाव डालकर वह अपना काम नहीं बना सकता। इसके विपरीत यदि जापान और रूस एक-दूसरेके नजदीक आने लगें, तो जापान स्थितिसे लाभ उठानेके लिए अमेरिकापर प्रभाव डाल सकता है; क्योंकि अमेरिकाको यह अभीष्ट नहीं है कि प्रशान्त महासागरमें उसके स्वार्थोंके विरुद्ध रूस और जापानका एक गुट बन जाय। इसीलिए रूस और जापानमें पिछले दिनों जो समझौता हुआ है, उसका ज्यादा महत्त्व नहीं है। सब कुछ यूरोपकी घटनाओं और वहां रूसके फंसावपर निर्भर है— चाहे यह प्रश्न रूसके प्रति जापानकी नीतिका हो या एशियामें रूसकी नीतिका। जहां तक रूसकी जापान सम्बन्धी नीतिका प्रश्न है, स्टालिन उसी चालसे काम ले रहे हैं, जिससे उन्होंने जर्मनीके साथ लिया है। जर्मनीके साथ अनाक्रमण सन्धि कर उन्होंने हिटलरके कम्यूनिस्ट-विरोधी विचारोंका डङ्क काट दिया है और जापानके साथ समझौता हो जानेका परिणाम भी यही हो सकता है। फिर, यदि कभी हिटलरका विचार बदल जाय, तो उसकी दृष्टिसे उन्होंने अपने देशकी रक्षा करनेके लिए सीमाओंका यथेष्ट विस्तार कर दिया है। इसके बाद एक बात और भी है— यूरोपके युद्धमें यदि रूस तटस्थ रहे, तो उसकी सञ्चित शक्ति सुरक्षित रहेगी और इधर चीनसे लगातार लड़ते रहनेसे जापानमें कमजोरी आना अनिवार्य है। एशियामें रूसको यही स्थिति अभीष्ट हो सकती है।

———

गीत

सपने कैसे सत्य बनाऊं ?
अन्तरका परिचित आकर्षन,
मानो खोल रूप निज लोचन—
मौन संदेशा दे, खो जाता—कैसे उसमें प्राण बसाऊं ?

सपने कैसे सत्य बनाऊं ?
देव नहीं,—मिल जाते दर्शन,
और शून्यसे उठ आवाहन,—
छाया दूर दिखा जाते हैं—कैसे उसपर प्यार चढ़ाऊं ?

सपने कैसे सत्य बनाऊं ?
नयनोंमें हंस डाल हिंडोले,
जीमें उतर, मधुर रस घोले,
पर न सामने दिखता कोई—कैसे मैं पहिचान बढ़ाऊं ?
सपने कैसे सत्य बनाऊं ?

—नर्मदाप्रसाद खरे।

महिलायें और मताधिकार

श्रीमती श्यामकुमारी शर्मा

भारतवर्षमें, जहां स्त्रियोंको धर्मशास्त्रके अनुसार मन, वचन, कर्मसे पतिकी सेवा करनेके सिवा और कोई अधिकार नहीं मिला था, अब उन्हें देशके शासन-कार्यमें अपनी राय देनेका भी अधिकार प्राप्त हुआ है। अब वे जिला बोर्डों, म्यूनिसिपल बोर्डों, लोकल बोर्डों और व्यवस्थापिका सभाओंकी सदस्यायें ही नहीं, बल्कि स्पीकर, डिप्टी स्पीकर या मिनिस्टर तक बन सकती हैं। पर भारतीय महिलाओं-को जो राजनीतिक मताधिकार मिला है, उसके लिए वास्तवमें उन्हें कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ा है। इंगलैण्डमें उनकी बहनें वर्षोंसे अपने अधिकारोंको पानेके लिए प्रयत्न करती आ रही थीं, भारतीय महिलायें भी आज उसीके फलका उपभोग कर रही हैं।

इंगलैण्डमें यह सङ्घर्ष प्रायः एक शताब्दी तक चला और गत यूरोपीय महायुद्धके समाप्त होनेपर महिलाओंको अपने अधिकारोंके पानेमें सफलता मिली। यह कहा जाता है कि इंगलैण्डमें, महिला-आन्दोलन मि० जान स्टुअर्ट मिलकी सुप्रसिद्ध पुस्तक Subjection of Women (महिलाओंकी पराधीनता) प्रकाशित होनेके बाद आरम्भ हुआ। परन्तु उसके बहुत पहले ही उत्साही कार्यकर्ताओं द्वारा इसके लिए क्षेत्र तैयार किया जा रहा था, और लोगोंके विचारोंमें परिवर्तन लानेकी भी कोशिश की जा रही थी।

इस आन्दोलनका वर्तमान रूपमें आरम्भ फ्रान्सकी राज्य-क्रान्तिके बाद हुआ; क्योंकि उस समय लोगोंमें स्वाधीनता और स्वतन्त्रताके भाव जोरोंसे फैल रहे थे। जब कि पुरुष गणतन्त्रात्मक सरकार कायम करनेकी बातें सोच रहे थे, महिलाओंके मनमें ये विचार आ रहे थे कि स्त्रियां पुरुषोंकी अधीनतामें कब तक पड़ी रहेंगी। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने अपने अधिकारोंको प्राप्त करनेके लिए आवाज उठायी और सङ्घबद्ध हो उसके लिए आन्दोलन करने लगीं। वातावरण सर्वथा अनुकूल था, चारों ओर स्वाधीन विचारोंकी लहर फैल रही थी, इसलिए आन्दोलन क्रमशः जोर पकड़ता गया।

पर किसी आन्दोलनके जोर पकड़नेसे ही उसमें सफलता प्राप्त नहीं होती। सफलता प्राप्त करनेके पहले आन्दोलनको दो बातों—उपहास और विरोध—का सामना करना पड़ता है। जब महिलाओंने अपने राजनीतिक अधिकार पानेकी बात उठायी, तब पुरुषोंने उसपर गम्भीरतापूर्वक विचार करनेके बदले उसका मजाक उड़ाया, और बादमें आन्दो-लनको तीव्र गतिसे बढ़ते देख उसका विरोध किया।

मिलकी पुस्तक १८६१ में प्रकाशित हुई थी। साहि-त्यिक और दार्शनिक जगत्में मिलको जो गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था, उससे महिलाओंको उनकी पुस्तकसे अपने अधि-कारोंकी लड़ाईके लिए काफी स्फूर्ति मिली। परन्तु मिलके प्रायः ७० वर्ष पहले मेरी वुलस्टोन क्राफ्ट नामक एक महिलाने इसी विषयपर एक पुस्तक लिखी थी, जिसमें महिलाओंके अधिकारोंका बड़े सुन्दर ढङ्गसे समर्थन किया गया था। उस पुस्तकने महिला-आन्दोलनकी बाइबिलका काम किया।

अमेरिकन महिलायें भी अपने अधिकारोंके सम्बन्धमें चुप नहीं बैठी थीं। १८४८ में उन्होंने अपनी सभा कर एक घोषणा प्रकाशित की, जिसमें कहा गया कि हम इसे स्वयं-सिद्ध सत्य मानते हैं कि सभी पुरुष और स्त्रियां जन्मसे बराबर हैं। सृष्टिकर्ताने दोनोंको कुछ समानाधिकार दिये हैं। जीवनका उत्कर्ष करने, सभी क्षेत्रोंमें स्वतन्त्रताका उपभोग करने और सुखकी खोजमें पुरुषोंके समान ही स्त्रियोंको भी अधिकार मिले हैं। आगे चलकर घोषणामें कहा गया कि मानव जातिका इतिहास स्त्रियोंपर पुरुषोंके क्रमागत अत्या-चार और उत्पीड़नका इतिहास है। इसके बादमें अभि-योगोंके रूपमें उन अत्याचारों और कष्टोंकी सूची दी गयी है, जिन्हें स्त्रियोंको सहना पड़ता है, और यह जोरदार दावा पेश किया गया है कि जहां और जब कभी स्त्रियोंके मौलिक अधिकार किसी सरकार द्वारा स्वीकार नहीं किये जायं, वहां महिलाओंका अधिकार है कि वे उस सरकारसे सहयोग न करें और उसको बदल देनेके लिए आन्दोलन करें।

इस घोषणा-पत्रमें उस सङ्घर्षशील रूपका आभास हमें मिलता है, जिसे आन्दोलनने आगे चलकर धारण कर लिया। फिर भी महिलाओंके राजनीतिक अधिकारोंका आन्दोलन बहुत दिनों तक वैध रूपसे ही चलता रहा। मि० मिल इस आन्दोलनके सूत्रधार थे और पार्लमेण्टके सदस्यकी हैसियतसे उन्होंने १८६७ के रिफार्म बिलमें स्त्रियोंके मताधिकार सम्बन्धी एक उपधारा जुड़वानेकी कोशिश की, पर उनका संशोधन बहुमतसे गिर गया। फिर भी आरम्भमें इस प्रकारकी कितनी ही विफलताओंसे आन्दोलनमें किसी तरहकी शिथिलता नहीं आने पायी, वरन् दूने उत्साहसे वह आगे बढ़ता गया।

महिलाओंमें उनके अधिकारोंकी जानकारी करानेके लिए जोरोंसे प्रचार-कार्य आरम्भ किया गया और मिसेस फासेटके सभानेत्रीत्वमें एक सुसङ्गठित संस्था कायम की गयी। उसकी ओरसे महिलाओंके मताधिकार सम्बन्धी आन्दोलन करनेके लिए पत्र निकाला गया। पर आन्दोलनके मार्गमें बाधा पहुंचानेके लिए दूसरा अड़ङ्गा तैयार था। जब १८८४ में लिबरल गवर्नमेण्टने मि० ग्लेडस्टोनके प्रधान-मन्त्रीत्वमें रिफार्म बिल पेश किया, तो यह उम्मेद की गयी थी कि उसमें महिलाओंके मताधिकार सम्बन्धी व्यवस्थाका भी समावेश किया जायेगा, पर वैसा न हो सका। सबसे आश्चर्यकी बात तो यह थी कि इस बार कितनी ही विख्यात और सम्भ्रान्त महिलाओंने अपनी प्रतिक्रियात्मक नीति दिखलायी और महिलाओंके मताधिकारका विरोध किया।

इस विरोधसे आन्दोलनने और भी जोर पकड़ा। वैधानिक आन्दोलनसे पद-पदपर जो विफलताओंका सामना करना पड़ रहा था, उससे काफी असन्तोष फैल रहा था और महिलाओंमें यह विश्वास दृढ़ हो गया कि सङ्घर्षके सिवा वैधानिक ढङ्गसे आन्दोलन चलानेमें उन्हें कभी भी सफलता नहीं मिल सकती। ब्रिटिश शासक वर्गकी यह खास आदत है कि जब तक कोई आन्दोलन सङ्घर्षका रूप धारण नहीं कर लेता, तब तक वह उसके महत्त्वको नहीं समझता। अतः एक ओर मिसेस फासेटके नेत्रीत्वमें १८९७ में सङ्गठित नेशनल यूनियनने अपना कार्य जारी रखा, दूसरी ओर पैंकहर्स्टके नेत्रीत्वमें, १९०३ में वीमेन्स सोशल एण्ड पोलिटिकल यूनियन स्थापित हुआ। यद्यपि इस संस्थामें सङ्घर्षकी भावना जोरोंसे काम कर रही थी, पर सरकारके उभाड़नेपर इसे हिंसाका मार्ग अवलम्बन करनेको बाध्य होना पड़ा। सन् १९०६ में मैन्चेस्टरके फ्रीट्रेड हालमें एक सभा हो रही थी, उसमें उक्त संस्थाकी दो सदस्यायें भी शामिल थीं। उन्होंने सर एडवर्ड ग्रेसे पूछा, जो उस सभामें उपस्थित थे, कि स्त्रियोंके मताधिकारके सम्बन्धमें लिबरल सरकारकी क्या भावी नीति होगी। यह सर्वथा उचित प्रश्न था। पर इसका कोई उत्तर नहीं दिया गया। उल्टे दोनों युवतियोंको बाहर निकलवा दिया गया। इसके प्रतिवादमें क्षोभ प्रकट करनेके लिए जब उन्होंने एक सभा की, तो रास्ताबन्दीके जुर्ममें उनको गिरफ्तार करा लिया गया। जुर्माना देनेके बजाय दोनोंने जेल जाना ही ठीक समझा। इस मामलेसे बड़ी सनसनी फैली और कितने ही लोगोंका ध्यान महिला-आन्दोलनकी ओर आकर्षित हुआ। आन्दोलनसे सहानुभूति रखनेवाले कितने ही लोग, यह ख्याल कर कि न्यायका गला घोंटा गया है, सक्रिय कार्यकर्ता बन गये।

इसके बादसे नियमित रूपसे सार्वजनिक प्रदर्शन होने लगे और आन्दोलन और भी आक्रमणात्मक हो गया। महिलाओंने अपने अधिकारोंकी मांग पूरी करानेके लिए कमर कस ली और सरकारको चुनौती दी। मि० वाई० एम० रेजने अपनी पुस्तक 'ह्विदर विमेन' में आन्दोलनके उग्र रूपका वर्णन इस प्रकार किया है :—

उन्होंने सरकारी उपनिर्वाचनोंमें उपद्रव मचाया, मन्त्रि-मण्डलके मन्त्रियोंको भाषण नहीं करने दिया। हर तरहकी पोशाकोंमें वे सब जगहोंमें जा उपस्थित होतीं। सभा-भवनमें खिड़कियोंसे कूदकर उन्होंने तरह-तरहके ऊधम और उपद्रव मचाये। बादको तो उन्होंने पार्लमेण्टपर धावा बोल दिया। वे गिरफ्तार की गयीं और उन्हें सजायें दी गयीं। उन्होंने खुशीसे जेल जाना पसन्द किया। इसके बाद ईंट और पत्थरोंकी वर्षा शुरू हुई। उन्होंने दूकानों और सार्वजनिक भवनोंपर आक्रमण किया। उनकी ओरसे यह दलील पेश की गयी कि जब हम अपने मताधिकार पानेके लिए जेल जा रही हैं, तो हमारे शरीरके बदले सरकारी इमारतोंकी खिड़कियां टूटें।

फिर १९१२ में रिफार्म बिलमें महिलाओंके मताधिकारकी कोई व्यवस्था नहीं की गयी। इससे महिला-आन्दोलनकारियोंको हिंसात्मक प्रदर्शन करनेका प्रोत्साहन मिला।

मि० रेजने अपनी पुस्तकमें लिखा हैः—उन्होंने लेटर बक्सोंमें तेजाब डालकर चिट्ठियां जलायीं, तार काटे और पिक्चर गैलरियोंमें टंगी तसवीरोंको तोड़ डाला। उन्होंने खाली मकानोंमें आग लगा दी, गोल्फ खेलनेके मैदानको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला और गिर्जा-घरोंपर बम फेंके। लायड जार्जके मकानको भी जलानेकी चेष्टा की गयी।

यूरोपीय महायुद्धके आरम्भ होनेसे इस आक्रमणात्मक आन्दोलनका अकस्मात् अन्त हो गया। तत्काल ही यह अनुभव किया गया कि कुछ ऐसे कामोंके लिए, जिन्हें अब तक पुरुष करते आ रहे थे, महिलाओंकी आवश्यकता है। उन्होंने अपने कामको इस खूबी और योग्यतासे किया कि उनके समानाधिकार पानेकी मांगके विरोधमें जो भावना प्रदर्शित की जाती थी, वह बिलकुल दूर हो गयी। १९१८ में एक रिफार्म बिल, जिसके द्वारा ३० वर्षसे ज्यादा उम्रवाली महिलाओंको वोट देनेका अधिकार मिला था, पेश किया गया और लार्ड कर्जनके विरोध करनेपर भी वह पार्लमेण्ट द्वारा स्वीकृत कर लिया गया। १९२८ में एक और एक्ट पास किया गया, जिसमें उम्रकी कैद ३० वर्षसे कम करके २१ वर्ष कर दी गयी।

यह है इंगलैण्डकी महिलाओंके मताधिकार आन्दोलनका इतिहास। वर्षोंके आन्दोलन और सङ्घर्षके बाद महिलाओंको अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें सफलता मिली। अब भी कुछ ऐसी महिलायें हैं, जिनका कहना है कि स्त्रियां अब भी कई बातोंमें पुरुषोंसे पीछे हैं। कुछ स्त्रियोंका यह कहना है कि केवल थोड़ी-सी महिलायें अपने अधिकारोंसे लाभ उठाती हैं। पार्लमेण्टके गुरुतर और गम्भीर कार्यको संभालनेके लिए उपयुक्त महिलाओंका मिलना बहुत कठिन है। वे अब भी ताश खेलने और सैर-सपाटेमें लगी हुई हैं।

भारतीय महिलाओंको भी अपने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारोंको पानेके लिए इंगलैण्डकी अपनी बहनोंकी भांति आन्दोलन करनेकी आवश्यकता है। इसमें सन्देह नहीं कि देशकी महिलाओंमें काफी जागृति है, और उनकी विभिन्न संस्थायें महिला-आन्दोलनको सफलतासे चला रही हैं; पर अब भी वह तीव्रगतिसे आगेकी ओर बढ़ नहीं रहा है। यह आन्दोलन अभी तक शहरों और कस्बों तक ही सीमित है। गांवोंमें रहनेवाली, अपढ़ एवं नाना प्रकारकी सामाजिक कुरीतियोंमें फंसी स्त्रियोंको, इस नव जागृति और नवजीवनके युगमें भी पता नहीं कि उनके क्या-क्या अधिकार हैं। देशके राजनीतिक कार्योंमें वे किस तरह भाग ले सकती हैं। इसलिए हमारी उन बहनोंका, जिन्हें शहरोंमें रहकर उच्च शिक्षा प्राप्त करनेका सुयोग प्राप्त है, यह परम कर्तव्य है कि वे महिला-आन्दोलनको गांवोंमें भी चलायें और वहांकी अपढ़ स्त्रियोंमें शिक्षा-प्रचार कर उनकी जहालत दूर करें। तभी उन्हें इंगलैण्ड तथा अन्य पाश्चात्य देशोंकी महिलाओंकी तरह पुरुषोंके समान अधिकार प्राप्त होगा, और उनमें कितनी ही श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डितकी तरह मन्त्रिणियां होंगी।

———

मां

श्री 'रहबर', बी० ए०

रूपा बूढ़ी हो गयी थी। सिरके बाल रुईके गालोंकी तरह सफेद हो चुके थे। मगर जैसे-जैसे जिन्दगी घट रही थी, जीनेकी लालसा बढ़ रही थी; और बढ़ती भी क्यों न? उसे अपने लल्लूका ब्याह देखना था। ब्याह देखनेकी तो बात ही क्या थी, वह तो चाहती थी कि उसे फूलता-फलता देखे, उसके बच्चोंको गोदमें लेकर खिलाये, लोरी दे, कहानियां सुनाये और वे 'दादी-दादी' करते आगे-पीछे फिरें, चूर-चूरकर रोटी खिलायें। तब कहीं उसे सुखकी मौत प्राप्त हो।

लालचन्दकी उम्र सोलह-सतरह सालकी थी, लेकिन रूपा उसे अब भी नन्हा लल्लू ही समझती थी, जिसे उसका पिता दो बरसका छोड़कर मरा था और जिसे उसने बड़े लाड़-प्यार और परिश्रमसे पाला था। उसका धन, धर्म और संसार सब कुछ वही था। पहले वह बेटी, बहन और पत्नी सब कुछ रही होगी। परन्तु अब वह मां—केवल मां थी। उसकी अभिलाषाओं, उमङ्गों और आकांक्षाओंका मात्र केन्द्र —लल्लू था।

मां-बेटेकी दुनिया प्रेम और प्यारकी दुनिया थी। इस दुनियामें कितने ही दिन, कितने ही महीने और वर्ष गुजर गये, उन्हें किसी बातकी कमी अनुभव न हुई। मांने यद्यपि पतिको खोया था; परन्तु पुत्रको पाकर सब कुछ पा लिया था। वह इसीमें सन्तुष्ट थी। किन्तु लल्लूने तो कुछ नहीं खोया था, उसे तो मां मिली थी और मां उसके पास थी।

मां-बेटा एक-दूसरेमें निहित होकर जीवन व्यतीत कर रहे थे और वे अपने व्यक्तिगत अस्तित्वको भूल-से गये थे।

मगर अब मांके मनमें एक और अभिलाषा सिर उठा रही थी। वह चाहती थी कि लल्लूका ब्याह हो जाय और बहू घर आये, जिसे वह दिखा सके कि उसका लल्लू इतना बड़ा होकर भी मांसे बच्चोंकी तरह प्यार करता है। उसका प्यार दुनियासे निराला और अजेय है।

इस विचारके आते ही उसकी शुष्क धमनियोंमें अपूर्व आनन्दकी लहर दौड़ गयी। उसने गोदमें पड़े लल्लूकी ठोड़ी एक हाथसे पकड़कर उसका मुंह ऊपर उठाया और दूसरा हाथ उसके नरम-नरम बालोंमें फेरते हुए कहा—

"क्यों बेटा लल्लू! अब तो तुम्हारा ब्याह हो जाये?"

"ब्याह!" लल्लूने मांकी छातीपर सिर रखकर कहा।

"हां, ब्याह! फिर तुम्हारी गुड़िया-सी बहू घर आ जायेगी। वह ठुमक-ठुमक अन्दर-बाहर फिरा करेगी, सब काम-धन्धे किया करेगी और मैं बैठी देखा करूंगी।"

"लेकिन अभी नहीं।" लल्लूने अन्यमनस्कतासे कहा।

"अच्छा, फिर तुम्हीं बताओ, कब लाओगे?"

"जब तुम मर जाओगी, मां!"

इस वाक्यमें लल्लूके दिलकी सादगी और सरलता भरी थी। क्योंकि वह मांके रहते ब्याह आदि किसी बातकी जरूरत महसूस न करता था। लेकिन मरनेका नाम सुनकर बूढ़ी मांके दिलको ठेस लगी और उसने दीन स्वरमें कहा—"न बेटा, अशुभ नहीं बोला करते।" यह कहकर उसने निःश्वास छोड़ा और फिर बोली—"मेरे मर जानेपर उस परायी बेटीको क्या सूने घरमें लाओगे? मेरे रहते आयेगी, तो और कुछ नहीं तो सासको देख लेगी।"

"सासको देख लेगी, तो क्या वह मोटी हो जायेगी?" लल्लूने हंसकर कहा।

"मोटी तो क्या होना है बेटा? कह तो दिया करेगी कि मेरी सास बड़ी अच्छी थी।"

अब लल्लूको शरारत सूझी और उसने भौंहें सिकोड़कर कहा—"और यह न कहेगी कि मेरी सास बहुत बुरी थी।"

"हट, पागल कहींका! आदमी बुरा हो, तभी दूसरा बुरा कहता है। कोई वैसे ही थोड़े कह देता है।" इसपर मांने अपने समस्त स्नेह और ममताको आंखोंमें इकट्ठा किया और फिर पूछा, "अच्छा तुम्हीं बताओ, क्या मैं बुरी हूं?"

लल्लूने मांकी आंखोंमें देखा। वह मन ही मनमें प्रसन्नतासे झूम उठा। अकथनीय प्रेम और निःस्वार्थ त्यागके दो स्रोत थे, जिनमेंसे निकलती अमृतकी धारायें उसके मन

और मस्तिष्कको सिक्त कर रही थीं। उसे मांपर गर्व हुआ; परन्तु उत्तरमें कहा—"हां, मैं तो कहता हूं बुरी—लाख बुरी !"

"एं ! झूठा कहींका।" मांने उसे अपनी निर्बल बांहोंमें जकड़ते हुए कहा।

(२)

आखिर वह दिन भी आ गया, जब लल्लू दुलहा बना और दुलहन ब्याह कर घर लाया।

बूढ़ी मांका कदम जमीनपर न पड़ता था। जिस प्रकार चांद निकलते ही समुद्रके पानीमें ज्वार-भाटा उठने लगता है, नयी-नवेली, चमेली-सी बहूका मुखड़ा देखकर उसका मन बल्लियों उछलने लगा। उसके भविष्य—सपनों और आशाओंपर निर्भर भविष्यने अकस्मात् यथार्थ रूप धारण कर लिया और प्रकाशसे जगमगा उठा। फिर यह प्रकाश आंखोंको चौंधिया देनेवाला बिजलीका तीव्र प्रकाश न था, बल्कि पूर्णिमाके चांदकी मधुर, मीठी और ठण्डी चांदनी थी, जो कवि-सुलभ हृदयमें कोमल और सुन्दर विचार उत्पन्न करती है।

रूपाने समझा कि उसने मञ्जिलको पा लिया। जिस पेड़को इतने परिश्रम और कठिनतासे पाला था, वह आज फल लाया। दुःखोंका युग बीत गया, अबसे सुखोंका आरम्भ होगा। उसे हर रोजके धन्धोंसे छुट्टी मिलेगी। चौका-चूल्हा, झाड़ू-बहारू सब बहू किया करेगी और वह—वह तो राजरानी बनकर पड़ोसिनोंमें बैठेगी, अपने लल्लूके प्रेम और बहूकी सेवा-शुश्रूषाका बखान किया करेगी, और पड़ोसिनोंके मुखसे उनके बेटों और बहुओंकी शिकायतें और चुगलियां सुन-सुनकर गर्वसे फूल जायेगी।

ये सब बातें पहले ही से उसके दिमागमें बैठीं—एक उपन्यासकारके प्लाटकी भांति—मीठी चुटकियां ले रही थीं।

वह बार-बार लल्लूके मुंहकी ओर देखती और देखती ही जाती थी। आज वह कितना सुन्दर, कितना भला और कितना प्यारा मालूम देता था। गुलाबका पुष्प वर्षामें धुलकर पहलेसे कहीं अधिक मनोहर, अधिक विकसित और अधिक आकर्षक हो गया था। उसे देखते ही रहो—तबीयत ही नहीं भरती—उसका देखना आंखोंको आनन्दित करता है·········।

मांकी प्रसन्नतामें लल्लू भी प्रसन्न था। लेकिन ब्याहसे जवानीमें जिन उमङ्गोंका आभास होता है, वे उमङ्गें लल्लूके मनमें अभी उत्पन्न ही न हुई थीं। उसने विवाह किया था, तो अपनी इच्छासे नहीं, मांके बार-बार कहनेपर। जो प्रसन्नता और भावनायें ब्याहको ब्याह बनाती हैं, वे उसमें कहां थीं? उसने जबसे होश संभाला, मांका प्यार देखा था और वह प्यार इतना था कि किसी औरको भागी बनाये बिना ही उसके समस्त मनका स्वामी बना बैठा था। उसने किसी दूसरे प्यारको अन्दर आने ही न दिया था। इसलिए लल्लूके मनमें मात्र एक प्यारके लिए स्थान था। और इसपर मांका प्यार चौकड़ी मारे, गर्दन उठाये सगर्व बैठा था।

(३)

एक साल बीत गया।

लालचन्द खाना खाकर अन्दरसे निकला था और दुकान जा रहा था। मांने उसे पाससे गुजरते देखा, तो बोली—"बेटा, जरा बैठ जाओ, दस मिनट सुसता लो। अभी तो रोटी खायी है। इतनी क्या जल्दी है? चले जाना·········।"

"जल्दी क्यों नहीं? दुकानपर गाहक खड़े होंगे, मैं न जाऊं, तो उन्हें कौन निपटायेगा? अगर इस तरह देर करने लगूं, तो सब कुछ चौपट हो जाये।"

"बेटा लल्लू! तुम तो इतने रूखे कभी न थे। क्या तुम्हें मांसे प्यार नहीं रहा?"

"भला मां! इसमें प्यार बे-प्यारकी कौन-सी बात है? दुकानपर न जाऊं, तो काम कैसे चले?"

"अच्छा बेटा!" रूपाने एक लम्बी सांस ली और कहा—"तुम्हारी खुशी, मेरा क्या जोर चलता है?"

"फिर वह जोर चलता है। सच है, बूढ़े और बच्चे बराबर होते हैं। जरा भी अक्ल नहीं रहती।"

वृद्ध और सब कुछ सुन लें; परन्तु अपनी अक्लकी निन्दा वे नहीं सुन सकते। और किसीको भले ही सन्देह हो, उन्हें अपनी बुद्धिमत्तापर पूर्ण विश्वास होता है। 'अक्ल नहीं रहती' लल्लूकी यह बात रूपाको भी चुभ गयी और वह तुनककर बोली :—

"अच्छा लल्लू! ज्यादा जबान न चलाओ। अक्ल नहीं रही! अक्ल करती ही क्या है? उम्र खाये बैठी हूं, जो थोड़ा-बहुत और जीना है, वह बिना अक्लके ही जी लूंगी। तू अक्लवाला बना रह। मैंने तो बिना अक्लके ही तुझे पाल-पोसकर इतना बड़ा कर दिया।" यह कहते-कहते उसकी सांस फूल गयी और झुर्रियों-भरा चेहरा क्रोधसे तमतमा उठा।

"अच्छा रहने दे, लगी ताने देने। न करती इतना बड़ा, कोई तुझे कहने गया था।"

इतना कहकर लल्लू बाहर निकल गया। मांने हसरत-भरी निगाहोंसे उसे जाते देखा और आंचलसे आंसू पोंछ लिये।

बहू भी रसोई छोड़कर बाहर निकल आयी थी और खड़ी-खड़ी सब कुछ सुन रही थी।

वृद्धाके आंसू देखकर उसका मन सहानुभूतिसे भर आया। लल्लूका मांसे यह शुष्क व्यवहार उसे अच्छा नहीं लगा और वह उसके पास आकर बड़े ही विनीत भावसे बोली :—

"मांजी, तुम उन्हें क्यों छेड़ा करती हो? वह तो किसीकी सुनते ही नहीं।"

"मैं उसे लाख छेड़ूंगी, तुम्हें इससे मतलब? वह मेरा बेटा है और मैं उसकी मां। वह मेरे साथ लड़े-झगड़े, मैं उसे लाख झिड़कूं, लाख कोसूं। तुम कौन होती हो बीचमें बोलनेवाली?" रूपाने गरजकर कहा।

"मांजी, तुम तो हरएकसे लड़ी पड़ती हो। मैंने तो साधारण बात की, तुम उलटे लड़ने लगीं। हमसे तो लड़ा नहीं जाता।"

"तुमसे क्यों लड़ा जाने लगा! पहले पतिको सिखाकर भेजा, वह गया तो खुद आ धमकी। फिर कहती है—हमसे तो लड़ा नहीं जाता। हां, बहूरानी! तुम क्यों लड़ो? तुम्हारे लिए वह जो लड़ लेता है।"

"मेरे लिए क्यों लड़ने लगे? तुम खुद लड़ती हो, तो वे भी बोल पड़ते हैं......।"

"तो बस, मैं ही लड़ाकी हुई। कोई सुने, तो सच ही जाने। यह तो सारा मुहल्ला जानता है कि इतनी उम्र गयी, कभी किसीसे बोली तक नहीं; मां-बेटेमें कभी मन-मुटाव न हुआ। तूने आते ही उसपर न जाने क्या जादू कर दिया?"

"मैं कोई जादूगरनी हूं?......"

"जादूगरनी न होती, तो मेरा लल्लू ऐसा न था कि मांको इतनी जल्दी भूल जाता। उसका तो मां-मां करते गला सूखता था। कहनेपर भी पाससे उठकर न जाता था।"

"मैं उन्हें कहीं उठाकर थोड़े ही ले गयी हूं? अब भी पास बिठाये रखो, डिब्बेमें बन्द कर लो, कहीं मत जाने दो।"

यह कहकर अगर बहू अन्दर न चली जाती, तो इस महाभारतका अन्त न होता। रूपाके पास जवाब तैयार रखा था।

प्रकृतिका नियम है कि ब्याहके बाद लड़के मां-बापसे नहीं, पत्नी और बच्चोंसे प्रेम करने लगते हैं। मगर मोह-माया-के बसमें पड़े हुए मां-बाप यही चाहते हैं कि उनके जवान और विवाहित लड़के उन्हें पहलेकी भांति प्यार करते रहें। इसलिए रूपा भी लल्लूकी शुष्कताका कारण बहूको समझती थी और बात-बातपर उससे उलझ पड़ती थी।

× × ×

एक दिन इन दोनोंमें अच्छी खासी झपट हो गयी। बहू बचकर निकल जाना चाहती थी। मगर रूपाको यह बात पसन्द न थी। उसके तीर हमेशा खाली जाते थे; आज वह निशाना लगाना चाहती थी। झल्लायी हुई बिल्लीकी तरह वह उसपर झपट पड़ी। बहूके पास बेलन था। आत्म-रक्षाके विचारसे उसने हाथ झटक दिया। बेलन रूपाकी कनपटीमें लगा और लोहू निकल आया। वृद्धाका सारा जोश ठण्डा पड़ गया और वह हाय-हाय करती जमीनपर बैठ गयी।

(४)

रूपाने उस दिन कुछ नहीं खाया, मुंह बनाये बैठी रही।

लल्लू रातको देरसे घर आया। रूपाको आशा थी कि वह मनायेगा, अनुनय-विनय करेगा। तभी वह खाना खायेगी। नहीं तो भूखी बैठी रहेगी।

लल्लू उसके पास आया जरूर; परन्तु उस रङ्गमें नहीं, जिस रङ्गमें रूपाने सोचा था। उसने आते ही कहा—चल मां, रोटी खा ले।

मां सोच न सकी कि वह रोटी खानेको पूछता है अथवा रोटी खानेका आदेश करता है। उसे पहले मांसे सहानुभूति

प्रकट करनी चाहिए थी। यदि वह इतना पूछ लेता—मां, तुम्हें कहां चोट लगी है ? दर्द तो नहीं होता ? क्या बात थी ?—मांकी ममता सन्तुष्ट हो जाती और वह उठकर रोटी खा लेती। लेकिन यह क्या आते ही कह दिया—मां, रोटी खा ले। इससे तो न पूछना ही अच्छा था।

रूपाका हृदय सन्न-सा हो गया और वह रुंधे कण्ठसे बोली :—

"मुझे तो भूख नहीं है, बेटा !"

"भूख कहां गयी ?"

"लगी ही नहीं।"

"सुबहसे कुछ नहीं खाया, रात हो गयी; फिर भी भूख क्यों नहीं लगी ?"

"उसीसे पूछ लो—क्यों नहीं लगी।"

"उससे क्या पूछूं ? भूख तुम्हें लगती है न कि उसे ?"

"अच्छा बेटा, मुझे जब लगेगी, मैं आप खा लूंगी।"

"फिर खा क्यों नहीं लेती ? बे-फायदा पाखण्ड रचानेसे क्या हासिल ?"

"मैं पाखण्ड रचाती हूं ! मार-मारकर अधमुई कर दिया, फिर भी तुम पाखण्ड बताते हो।"

बूढ़ी मांने हिचकियां भरते हुए कहा। उसने सोचा था कि मांका रोना सुनकर बेटेका मन पसीजेगा। मगर लल्लू था कि अपनी बातपर दृढ़ रहा :—

"पाखण्ड नहीं, तो और क्या है ? पहले लड़ती हो, फिर डराती हो। यहां यह मुफ्तकी अकड़ नहीं सहते।"

"अच्छा बेटा, न सहना। मेरा ही दुखड़ा है न ? वह अब खतम हो जायेगा। तुम्हारा मुंह देखकर जीती थी। जब तुम्हें ही अच्छी नहीं लगती, तो अब जीकर क्या करूंगी ? ऐसे ही पड़ी-पड़ी मर जाऊंगी; तुम दोनों जीव अपने सुखी रहना। जीकर मुझे और क्या करना है ?" उसके स्वरमें वेदना थी।

"अच्छा, अब तो उठकर रोटी खाओ।"

"बस बेटा, अब मैं न खाऊंगी।"

"क्यों न खाओगी ? मुझसे यह रोज-रोजका झगड़ा नहीं देखा जाता। आज उठकर रोटी खाओ, कलसे बेरीवाले घरमें रहा करना। न बांस रहेगा, न बंसरी बजेगी।"

रूपाने पहले रोकर, फिर मरनेका नाम लेकर बेटेके दिलमें दर्द पैदा करनेकी कोशिश की। उसके सुप्त प्रेमको फूंकोंसे जगाना चाहा ! परन्तु उसका प्रेम सोया न था, बुझा न था। उसपर फूंकें मारना और फूस डालना व्यर्थ था। उसके हृदयमें प्रेम पहलेकी तरह उपस्थित था। उसपर केवल किसी औरका अधिकार हो चुका था। मां उसमेंसे हिस्सा नहीं बंटा सकती थी। क्योंकि यह केवल एक ही दिशामें बहना जानता था। भिन्न-भिन्न धाराओंमें बंट जाना उसने नहीं सीखा था।

रूपा गमके बहावमें बही जाती थी। वह चाहती थी कि बेटा पकड़कर निकाले, किसी प्रकार सहारा दे; किन्तु उसे एक ही स्थानपर निश्चल खड़े देखकर स्वयं बांह आगे बढ़ायी—"क्या कहा ? बेरीवाले घरमें जाकर रहूं ! लोग क्या कहेंगे कि बेटेने मांको घरसे निकालकर अलग कर दिया !"

"लोग कहेंगे तो कहते रहें। किसीके कहने-सुननेकी मुझे कुछ परवा नहीं। जब घरमें झगड़ा रहे, तो सब कुछ सुनना पड़ता है।"

"बसते घरोंमें ऐसा हो ही जाता है। मेरा क्या है, मैं तो वहां पड़ी रहूंगी। पर तुम्हारी नाक कट जायेगी, कहीं मुंह दिखानेके योग्य न रहोगे।"

"मेरी नाककी कुछ चिन्ता न करो। यह ऐसी मोमकी बनी हुई नहीं कि उलटे उस्तरेसे भी कट जाये। अलग रहनेकी बात है, तो अलग ही रहूंगा।"

प्रेमकी अन्तिम अपील भी खाली गयी।

(९)

बेरीवाला घर दूसरे मुहल्लेमें था। पुराने ढङ्गका मकान था। दो बड़े-बड़े कमरे और बीचमें एक बड़ा आंगन था। आंगनके मध्यमें बेरीका एक वृक्ष था। इसी कारणसे इसका नाम बेरीवाला घर पड़ गया था। पहले इसमें जानवर बंधते थे। लेकिन जबसे रूपाका पति मरा था, यह बिलकुल खाली पड़ा था।

अब दो महीनेसे रूपा स्वयं इस मकानमें रहती थी। उसके यहां आनेपर लोगोंमें कानाफूसी होती रही। किसीने लालचन्दको बुरा कहा, तो किसीने रूपाको विषकी गांठ बताया। लेकिन अलग होना और अलग रहना जमानेका दस्तूर है। कुछ दिनोंमें बात दब गयी।

एक कमरेमें रूपाकी चारपाई पड़ी थी, उसके पास दो-तीन बर्तन पड़े थे, जिनपर उसके मनकी भांति मैल चढ़ गया था। दुकानका नौकर दो वक्तका भोजन उनमें डाल जाता था। कभी-कभी बहू स्वयं भी आ जाती थी। कई दफा त्योहार और पूजाके समय घर चलनेको भी कह चुकी थी, मगर रूपा नहीं गयी थी। लल्लूकी निठुरता उसे सदैव दुखी बनाये रखती थी। वह बहूको बेटेका प्यार न दिखा सकी, पड़ोसिनोंमें बैठकर अपने सौभाग्यको न सराह सकी। मनकी हसरत मनमें रह गयी—उपन्यासकारका प्लाट, प्लाट ही रहा—उपन्यास न बन सका!

चैत्रका महीना, बेरीपर बेर लगे थे।

प्रातःकालकी सफेदी फूट रही थी। रूपा कमरेमें बैठी बेटेके व्यवहारपर कुढ़ रही थी। वह प्रतिदिन उसके आनेकी आशा बांधती थी और उसके न आनेपर झुंझलाती थी। एक उसे ही देखकर वह जीती थी। जवानीमें वह विधवा हुई। उसके लिए संसार अन्धकारमय हो गया। परन्तु पुत्र-स्नेह उसकी आत्माको प्रकाश देता था। लेकिन अब जब कि वह प्रकाश भी न रहा, वह अन्धकारमें भटकने लगी। वैधव्यका सारा जीवन भयावह रूप धारण करके सामने आ गया। उसने लल्लूके लिए जो दुःख, तकलीफ, कठिनाइयां सहन की थीं, वे सब अखरने लगीं। यह सोचती थी, वह पैदा ही क्यों हुआ, उसके स्तनोंका दूध क्यों न सूख गया, ताकि उसके न होनेसे यह होनीका दुःख तो न होता······।

उसी समय हवा चली। आंगनमें दो-चार बार टप-टप हुई। रूपाने यह आवाज सुनी और सोचा, बेर गिरते हैं—पके हुए बेर!

वह उठकर बाहर आयी। दिन साफ निकल आया था। मुहल्लेके कुछ बालक बेरीके नीचे बेर चुन रहे थे। जब नीचेके बेर खत्म हो गये, तो उन्होंने ऊपर झांका और टहनियां पकड़-पकड़कर हिलाने लगे।

"बेटा, पक्के-पक्के तोड़ना, कच्चे मत गिराना।"

रूपाने यह शब्द समाप्त ही किये थे कि उम्री दाई अन्दर आयी। उसके मुखपर असाधारण प्रसन्नता और आंखोंमें सुख-सन्देश था। उसने रूपाको देखते ही कहा—"रूपा माई! बधाई, बधाई!"

"क्योंरी उम्री, क्या खबर लायी?" रूपाने बड़ी उत्सुकतासे पूछा।

"अरी, पोता हुआ है पोता! ला, मिठाई खिला।"

"पोता!"

"हां, चल दिखाऊं।"

बहूके लाख कहनेपर भी रूपाने कभी जाना स्वीकार न किया था। जिस घरसे उसे इस प्रकार निकाला गया हो, वह वहां क्यों जाये? मगर आज न जाने किसलिए तत्काल तैयार हो गयी और उम्रीके कन्धेपर हाथ रखकर चली। उम्रीने चलते-चलते कहा :—

"बच्चा क्या है, मक्खनका खिलौना है। गोरा चट्टा, गोल-गोल चेहरा, चपटी नाक। बिलकुल तुझको पड़ा है।"

"मुझको?"

"हां।"

इस 'हां' में न जाने कौन-सा जादू भरा था। रूपाका मन हर्षसे नाचने लगा। गमका बादल फट गया। इन्द्र-धनुषका सुन्दर दृश्य आंखोंके सामने फिर गया। वह चाहती थी कि उसे दौड़कर छू ले। उसकी निर्बल और कांपती हुई टांगोंमें क्या जाने कहांकी शक्ति आ गयी कि वह उम्रीको तनिक ठेलकर बोली :—जल्दी चल!

होमटास्क

श्रीमती राजेश्वरी सिनहा, बी० ए०

मेरा बच्चा जबसे स्कूल पढ़ने जाने लगा है, तबसे, मैं देखती हूं, उसके स्वभावमें अजीब तरहका परिवर्तन आ गया है। पहले वह बड़ा खुशदिल रहता था। कभी सुस्त न बैठता, सारा दिन खेलता-कूदता रहता। कभी मुझे तङ्ग करता, कभी अपने पिताको चिढ़ाता; और उसके इस तरहके ऊधम मचानेसे भी हम दोनोंको आनन्द मिलता। सारा घर हरा-भरा रहता। पर स्कूल जानेके बादसे उसमें वह प्रसन्नता और खुशदिली न रही। उसका वह बाल-सुलभ नटखटपन न रहा। उसका मिजाज चिड़चिड़ा हो गया है। बात-बातपर वह बिगड़ जाता है। खेलने-कूदनेमें भी उसकी रुचि कम हो गयी है। उसकी यह हालत देखकर मुझे बड़ी फिक्र हो गयी है। उसके स्कूल जानेपर मैं बड़ी उत्सुकतासे उसके आनेकी प्रतीक्षा करती हूं कि अब वह आयेगा और मुसकराते हुए मेरी गोदमें चढ़नेके लिए मचलेगा; पर वह आते ही झल्लाने लगता है। जो नौकर उसे स्कूलसे लिवा लानेके लिए जाता है, उससे रास्ते-भर लड़ता-झगड़ता आता है। आते ही जल्दी-जल्दी मुंह-हाथ धोकर कुछ जलपान करता है और फिर किताबें और कापियां ले होमटास्क करने बैठ जाता है। मैं देखती हूं, होमटास्क करनेकी उसकी इच्छा नहीं रहती; पर मजबूरन् स्कूलके मास्टर साहबके डरसे वह जैसे-तैसे पूरा करता है। अगर बीचमें मैं कभी कुछ खानेके लिए या और किसी कामके लिए प्यारसे पुकारती हूं, तो वह बड़े जोरसे झल्ला उठता है और भौंहें चढ़ाकर कहता है—जा, मैं नहीं आऊंगा, हिसाब लगा रहा हूं। उस वक्त मैं अपने मनमें कहती हूं, अच्छा होता, मेरा लड़का स्कूल न जाता और अगर जाय भी, तो उसके ऊपर होमटास्कका बोझ न लादा जाय। क्योंकि होमटास्कसे ही वह इतना चिड़चिड़ा हो गया है और बात-बातपर झल्ला उठता है।

मैं समझती हूं, मेरे मनमें जो भाव उठ रहे हैं, मुमकिन है, वे ही भाव मेरी उन बहनोंके मनमें भी उठते होंगे, जिनके बच्चे स्कूल पढ़ने जाते होंगे। और मेरी ही तरह वे सब भी यह सोचती होंगी कि स्कूलके अध्यापक बच्चोंको होमटास्क देना क्यों नहीं बन्द कर देते। मैं सच कहती हूं, अगर मेरा बस चले, तो एक घण्टेके अन्दर स्कूलोंमें होमटास्क देनेकी प्रथा बन्द करवा दूं। अगर ऐसा नहीं होता, तो हम सब माताओंको इसका जोरदार प्रतिवाद करना चाहिए। पर मैं जानती हूं कि किसी भी माता-पिता या अभिभावकको इस प्रथाके खिलाफ आवाज उठानेका साहस न होगा; क्योंकि वे डरते हैं कि अगर लड़केको घरपर करनेके लिए कुछ काम न दिया जायगा, तो वह परीक्षामें पास न हो सकेगा या पास भी होगा, तो अच्छे नम्बर नहीं लायेगा। कुछ लोगोंको इस बातका भी डर रहता है कि होमटास्कके बिना उनके बच्चोंकी वास्तविक शिक्षा हो ही नहीं सकती और वे उन विषयोंको सीख नहीं सकेंगे, जिनकी आवश्यकता उन्हें अपने जीवन और स्कूलमें पड़ती है। इसी श्रेणीके कुछ अभिभावकोंका कहना है कि होमटास्कसे ही बच्चेको उद्यमशीलता और स्वतन्त्र अध्ययनकी आदत पड़ती है। खेलकूद, सिनेमा, नाटक, रेडियो आदि मन-लुभावने विषयोंकी ओरसे मुंह मोड़कर, घरपर करनेके लिए दिये गये काममें मन लगा, जिसकी जिम्मेवारी उसपर रहती है, वह अनुशासन पालन करना सीखता है। कुछ माता-पिताओंका कहना है कि होमटास्कसे उनका सम्पर्क स्कूलसे बना रहता है। अपने बच्चोंको होमटास्क करनेमें मदद दे, वे अपनेको स्कूलके अध्यापकोंका सहायक और सहयोगी समझते हैं।

होमटास्कके समर्थनमें ऊपर जो बातें कही गयी हैं, उनमें कुछ तो ऐसी हैं, जिनसे होमटास्ककी उपयोगिता सिद्ध हो सकती है। पर शेष ऐसी हैं, जिन्हें होमटास्कके विरोधमें मजेमें पेश किया जा सकता है।

सबसे पहला सवाल होमटास्ककी आवश्यकताका है। अगर लड़के घरपर दिये गये कामको पूरा नहीं करते हैं, तो क्या वे परीक्षामें पास हो सकते हैं या वे स्कूली शिक्षाके सभी महत्त्वपूर्ण अङ्गोंको प्राप्त कर सकेंगे? इस प्रश्नका उत्तर स्कूलकी शिक्षा-प्रणाली और उसके स्टाफकी योग्यतापर निर्भर करता है। यदि स्कूलमें बच्चोंको वे ही काम

करनेको दिये जाते हैं, जिन्हें वे कर सकते हैं, यदि उन्हें व्यर्थ, अनुपयोगी और ऊल-जलूल बातोंको सीखनेके लिए दिमाग लड़ाना नहीं पड़ता, यदि पढ़ाईके समय उनकी देख-रेखके लिए पूरी व्यवस्था हो, ताकि वे ध्यानसे अपना सबक पढ़ें, इधर-उधर अपने मनको न दौड़ायें, तो स्कूलके साधारण पाठ्य विषयोंकी पढ़ाईके लिए होमटास्क देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। पर जब बच्चोंको ऐसा काम दिया जाय, जिसे करनेमें वे असमर्थ हों, या इतना अधिक काम दिया जाय कि वे पूरा भी न कर पायें, उन्हें इतने विषयोंको हृदयङ्गम करनेको कहा जाय, जो उनके लिए बिना किसी महत्त्व और मतलबके हों, जब एक बच्चेका समय दूसरोंकी पाठ-आवृत्ति सुननेमें नष्ट हो, जिसे वह अच्छी तरह पढ़े और समझे हुए हो, तो स्कूलकी पढ़ाईकी गति इतनी मन्द और दुःखदायी होती है कि उसे पूरा करनेके लिए होमटास्क देना आवश्यक हो जाता है।

दूसरा सवाल होमटास्ककी उपयोगिताके सम्बन्धमें उठ सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि थोड़े-से ऐसे सम्पन्न और सुखी परिवार हैं, जहां उनके बच्चोंकी पढ़ाईके लिए अलग शान्तिमय कमरेकी व्यवस्था रहती है, जहां रेडियोकी चिल्लाहट उन्हें बाधा नहीं पहुंचाती, रोशनीका ऐसा प्रबन्ध रहता है कि उनकी आंखें खराब नहीं होने पातीं, जहां अलमारियोंमें उनकी ज्ञानवृद्धिके लिए विभिन्न विषयोंकी पुस्तकें रखी रहती हैं, जहां समझदार और धैर्यशील माता-पिता सुबह-शाम एक-डेढ़ घण्टा बच्चोंकी पढ़ाईकी देख-रेखमें लगाते हैं और उन्हें ऐसी सहायता देते हैं, जो उनके लिए वास्तवमें आवश्यक और लाभप्रद होती है। ऐसी दशामें होमटास्ककी कुछ उपयोगिता हो सकती है। पर कितने घरोंमें बच्चोंकी पढ़ाईके लिए ऐसी व्यवस्था है?

हम इस बातपर जोर दे सकते हैं कि स्कूलके अध्यापक कुशल एवं धैर्यवान् हों। यह उनके पेशेका एक आवश्यक अङ्ग है। हम इस बातपर भी जोर दे सकते हैं कि उन्हें बाल-मनोविज्ञानका पूर्ण ज्ञान होना चाहिए और अध्ययन-कक्षामें उन्हें पूर्ण दक्ष होना चाहिए। पर हमें यह आशा नहीं करनी चाहिए कि बालकोंके माता-पिता सुशिक्षित एवं सुयोग्य अध्यापक हो सकते हैं। हम इस बातपर जोर दे सकते हैं कि स्कूल हवादार हो और उसमें काफी प्रकाश आना चाहिए। बेञ्चें और डेस्कें इस साइज और आकारकी हों कि बच्चोंको बैठनेमें असुविधा न हो। पढ़ाईके समय स्कूलका वातावरण इतना शान्त हो, जिससे बच्चोंके काम करनेमें बाधा न पहुंचे। पर क्या हम अपने अधिकांश घरोंमें उपर्युक्त बातोंकी व्यवस्था कर सकते हैं? यदि आवश्यक हो, तो सम्भवतः हम अपने घरोंको इस स्थितिमें लानेके लिए आन्दोलन कर सकते हैं; पर अगर होमटास्क आवश्यक न हो, तो फिर घरको एक छोटा-मोटा स्कूल बनानेकी क्या जरूरत है?

वर्तमान परिस्थितिमें बहुत कम ऐसे परिवार हैं, जहां बच्चोंके पढ़नेके लिए अलग कमरे नियत हैं। अधिकांश घरोंकी हालत ऐसी रहती है कि वहां पढ़ाई हो ही नहीं सकती। लड़के पढ़नेमें लीन हैं, अकस्मात् छोटा बच्चा मांका दूध पीनेके लिए रो उठता है, या थका-मांदा पिता बाहरसे आता है और जोर-जोरसे चिल्लाकर पानी मांगता है। उसका चिल्लाना सुनकर अपढ़ एवं शिक्षाके नियमोंसे सर्वथा अनभिज्ञ गृहिणी गिलास या लोटेमें पानी ले बड़बड़ाती हुई आती है और जल्दबाजीमें रास्तेमें किसी चीजसे ठेस लगती है और लोटा हाथसे छूट जाता है। लड़केका ध्यान बंट जाता है और वह पढ़ाई छोड़कर देखने लगता है कि बात क्या है। ऐसी हालतमें वह घरपर क्या पढ़ सकता है, और होमटास्कसे उसे क्या लाभ पहुंच सकता है?

कभी-कभी माता-पिता शिक्षा-विषयक जानकारी न रहनेके कारण भी बच्चोंकी पढ़ाईमें बहुत मदद पहुंचाते हैं। एक दिन एक लेखक महोदय मुझसे मिले। बच्चेकी पढ़ाईके सम्बन्धमें बातचीत चलनेपर आपने कहा कि श्यामू पढ़नेमें कुछ कच्चा है। मैंने उसके अध्यापकसे उसे हर रोज कुछ होमटास्क देनेके लिए कहा है। और मैं घरपर बराबर इस बातकी ताकीद रखता हूं कि श्यामू अपना काम रोज पूरा कर ले। पर अब उसका अध्यापक कहता है कि वह जो निबन्ध घरपरसे लिखकर ले आता है, वह ठीक नहीं होता। उसे फिर क्लासमें लिखना पड़ता है। इसका साफ मतलब यह है कि मैं लेखक होकर भी निबन्ध लिखना नहीं जानता। हर सप्ताह मेरे लेख भिन्न-भिन्न पत्रोंमें प्रकाशित होते हैं। और मैं जो निबन्ध श्यामूको लिखाता हूं, वह अध्यापककी दृष्टिमें ठीक नहीं होता। मैं निबन्धका एक-एक शब्द बोलकर

लिखाता हूं। श्यामूके अध्यापकका कहना है कि श्यामू ऐसा सही और विचारपूर्ण निबन्ध लिखकर ले आता है कि उसमें कहीं एक भी गलती नहीं रहती। पर स्कूलमें उसकी गलतियोंकी भरमार रहती है; एक लाइन भी मुश्किलसे सही लिख पाता है। इसलिए मैं समझ जाता हूं कि वह घरपर दूसरेसे लिखवाकर निबन्ध ले आता है। ऐसा करनेसे तो उसकी कमजोरी दूर नहीं हो सकती और मालूम नहीं हो सकता कि उसकी त्रुटि कहां है। इसलिए स्कूलमें फिर उससे दुबारा लेख लिखवाया जाता है और जहां उसकी गलती होती है, उसे बतलाया जाता है। इस तरह होमटास्कसे घर और स्कूलके बीच घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित होनेके बजाय, दोनोंमें गहरा अन्तर पड़ सकता है। बहुत-से ऐसे अति उत्साही पिता होते हैं, जो अपने बच्चोंको घरपर घण्टों पढ़ाते हैं और स्कूलसे दिये हुए होमटास्क उनसे कराते नहीं, बल्कि खुद कर देते हैं। उनकी पढ़ाईका तरीका स्कूलके तरीकेसे भिन्न होता है और लड़के उसकी आलोचना करते हैं। मगर वे उनकी कुछ नहीं सुनते और अपनी ही धुनमें चले जाते हैं; क्योंकि उन्हें किसी-न-किसी तरह अपने बच्चोंको 'पास' कराना होता है। वे उल्टे स्कूलकी पढ़ाईमें ही दोष निकालते हैं और बच्चोंको बात-बातपर डांटते हैं। अगर लड़का पढ़नेमें कमजोर है या वह इम्तहानमें पास नहीं होता है, तो पिता समझता है कि इसके लिए वही जिम्मेवार है। इसका गुस्सा वह घरपर उस अभागे बच्चेको डांट-डपटकर और स्कूलमें अध्यापकों या स्कूलकी शिक्षा-पद्धतिको कोसकर उतारता है।

लड़के जब मन्दबुद्धिके कारण विषयको समझ नहीं पाते अथवा जब उनकी ग्रहण-शक्ति इतनी विकसित नहीं हुई रहती कि वे पढ़ाये जानेवाले विषयको अच्छी तरह हृदयङ्गम कर सकें, अथवा जब अध्यापक ही इतना अयोग्य होता है कि वह लड़कोंको पाठ्य-विषय अच्छी तरह समझा नहीं सकता, तब स्कूलके निर्धारित समयमें क्लासका काम पूरा नहीं होता और बाकी कामको घरपर पूरा करनेके लिए दिया जाता है।

कभी-कभी स्कूलसे इतना ज्यादा काम दे दिया जाता है कि उसे पूरा करना लड़केके लिए कठिन हो जाता है। किसी ऐसे स्कूलमें, जहां इस बातकी पूरी देख-रेख रखी जाती है कि पढ़ाईके समय लड़कोंको बहुत ज्यादा काम न दिया जाय, अगर कभी ऐसा हो जाता है, तो मालूम हो जानेपर अध्यापक उसमें आवश्यक सुधार कर देता है। पर जब घरपर काम करनेको दिया जाता है तथा होशियार लड़का अपने पिता या भाईकी सहायतासे, अधिक काम होनेपर भी बड़े अच्छे ढङ्गसे पूरा करके ले आता है, तब अध्यापक इस बातपर कुछ न ख्यालकर कि काम ज्यादा था, दूसरे लड़कोंको सुस्त और निकम्मा कहकर डांटता है। मिडिल और हाई स्कूलोंमें, जहां लड़कोंको भिन्न-भिन्न विषय भिन्न-भिन्न अध्यापकोंसे पढ़ने पड़ते हैं, और भी शोचनीय अवस्था होती है। वहां हरएक अध्यापकके लिए यह जानना कठिन होता है कि दूसरे अध्यापकने लड़कोंको अपने विषयका कितना काम दिया है। अक्सर ऐसा होता है कि अध्यापकोंमें, ज्यादासे ज्यादा होमटास्क देनेके लिए होड़-सी रहती है। इस तरहकी प्रथा प्रायः सभी स्कूलोंमें प्रचलित है; पर शायद ही कोई स्कूल इसकी उपयोगिताके समर्थनमें समुचित दलील पेश कर सके। अच्छे स्कूलमें इस प्रणालीको प्रोत्साहन नहीं दिया जाता।

होमटास्क न केवल अनावश्यक और अनुपयोगी है, बल्कि घरपर करनेके लिए अत्यधिक कामका बोझ लाद देनेसे बालकोंकी प्रतिभा नष्ट होनेका भी खतरा रहता है। इसके अतिरिक्त होमटास्कसे और भी कितनी ही हानियां होती हैं।

लड़कोंको स्कूलमें अपनी आंखोंसे बहुत ज्यादा काम लेना पड़ता है। फिर क्या यह ठीक है कि वे घरपर भी कृत्रिम रोशनीमें अपनी आंखें खराब करें? यद्यपि हमारे सामने इसके लिए कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है, फिर भी इस विषयमें हमें जितनी जानकारी है, उससे कहा जा सकता है कि इसीलिए स्कूलके छात्रोंकी आंखें छोटी उम्रमें ही खराब हो जाती हैं। इस बातको सभी स्वीकार करते हैं कि बालकोंके लिए शारीरिक व्यायाम और खुली हवामें खेलना-कूदना अत्यन्त आवश्यक है। हम लोग अपने बच्चोंको, उनके शारीरिक विकासके अधिकांश समयमें, स्कूलकी चहारदीवारीके अन्दर बन्द रखते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनके शरीरकी समुचित वृद्धि रुक जाती है और वे दुबले-पतले और कमजोर हो जाते हैं। इसलिए स्कूलसे आनेके बाद उन्हें इस कमीकी पूर्तिके लिए किसी पार्क या मैदानमें खेलने-

कूदने देना चाहिए। अक्सर शामको ही उन्हें स्कूलका होमटास्क करना पड़ता है, जिसका मतलब होता है बिजली, लालटेन या और किसी कृत्रिम प्रकाशमें आंखें खराब करना। क्या किसी और निर्दोष आमोद-प्रमोदमें बच्चोंके सन्ध्या समयका उपयोग नहीं किया जा सकता?

हमारे घरोंमें पारिवारिक जीवनका एक खास स्थान है। होमटास्क बालकोंको पारिवारिक जीवनके आनन्दसे वञ्चित रखता है। शामको घरभरके लोग भोजन करनेके बाद इकट्ठे होते हैं, आपसमें किस्से कहानियां कहते और सुनते हैं। तरह-तरहके इनडोर खेलोंद्वारा अपना दिलबहलाव करते हैं। पर घरके जिस लड़केको होमटास्क मिला रहता है, वह एक कोनेमें उसे लिये बैठा रहता है और घरके दूसरे बच्चोंको आमोद-प्रमोद करते देख अपनी बदकिस्मतीपर खीजता और होमटास्क देनेवाले अध्यापकपर मन ही मन कुढ़ता है। यदि उसे होमटास्क न दिया जाय, तो वह भी इस पारिवारिक जीवनका सुख ले सकता है।

इस तरह होमटास्कसे बच्चेका मिजाज चिड़चिड़ा हो जाता है। उसे झूठ बोलनेकी लत पड़ जाती है। जब वह खेल-कूदमें फंसे रहनेके कारण या किसी और वजहसे, होमटास्क नहीं कर पाता, तो वह तरह-तरहके झूठ बोलकर या कितने ही बहानेकर अध्यापककी डांट-फटकारसे अपनी रक्षा करता है। कभी-कभी वह जल्दीमें किसी दूसरे लड़केके होमटास्कके हलकी नकल कर लेता है, और उसे अपना किया हुआ बताकर बड़े कौशलसे बेञ्चपर खड़े होने तथा कान पकड़कर उठने-बैठनेके दण्डसे अपनेको बचा लेता है। इस तरह उसे चोरी करनेकी भी आदत पड़ जाती है।

इस तरह होमटास्कसे अनेक बुराइयां हैं, जिनसे बालकोंके शारीरिक और मानसिक विकासमें बड़ी बाधा पहुंचती है। स्कूलकी शिक्षा समाप्त करनेपर वे जीवनमें कुछ भी सफलतापूर्वक नहीं कर पाते। पर मेरे कहनेका आशय यह नहीं कि होमटास्कमें जब इतनी बुराइयां हैं, तो उसे देनेसे क्या लाभ? मेरा मतलब यह है कि बालकोंके अभिभावक और अध्यापक मिलकर होमटास्क देनेकी वर्तमान दूषित प्रणालीमें ऐसा सुधार करें कि बच्चे घरपर दिये गये कामको आसानीसे कर सकें और साथ ही उनके शारीरिक और मानसिक विकासमें कोई रुकावट न पड़े और न वे पारिवारिक जीवनके आनन्दसे ही वञ्चित रहें।

गीत

पलभर न हुआ जीवन प्यारा!

पूजाके मन्दिरमें झांका,
अर्चनकी चाहोंको आंका,
जगने अपराधिनि ठहराया,
आजीवन खुल न सकी कारा!
पलभर न हुआ जीवन प्यारा!

मधुके घट रक्खे दूर-दूर,
जब छूना चाहा हुए चूर,
जग अन्तरालसे पिला सका,
मुझको केवल विषकी धारा!
पलभर न हुआ जीवन प्यारा!

—सुमित्राकुमारी सिनहा।

हालैण्डकी रानी विलहेलमिना

श्री बाबूरामजी मिश्र

पचास वर्ष पहलेकी घटना है, हालैण्डके नगर एम्सटरडममें राजप्रासादके छज्जेपर दस वर्षकी एक बालिका खड़ी हुई थी। बालिकाके पास ही उसकी माता भी थी। बालिकाने अपनी मातासे सटते हुए हाथ पकड़कर नीचेकी ओर देखा और लोगोंकी एक बड़ी भीड़को हर्षध्वनि करते देखकर कौतूहलसे पूछा—"ये सब आदमी क्या मेरे हैं?"

बालिकाके पिता राजा विलियम (तृतीय) की मृत्यु उस समय हो चुकी थी। बालिकाकी माताने कुछ उदास होकर उत्तर दिया—"नहीं, बेटी, अब तुम इन सबकी हो।"

वही बालिका आज सारे संसारमें हालैण्डकी रानी विलहेलमिनाके नामसे अपनी राजनीतिज्ञता, सुशासन और साहसपूर्ण कार्योंके लिए विख्यात है। हालैण्डके निवासी ६० वर्षकी अपनी इस रानीको 'देश-माता' कहकर आदर देते हैं।

हालैण्डका क्षेत्रफल १२७७१ वर्गमील और जन-संख्या ७९३५९६९ है। लगभग दो तिहाई भाग समुद्रसे लगा हुआ है। अधिक धरातल समुद्रकी सतहसे नीचा है। जगह-जगह बांध बने हुए हैं और नहरे हैं, जिनके द्वारा आवश्यकता होनेपर देशको जलप्लावित किया जा सकता है और शत्रुके लिए सारा देश दुर्गम बनाया जा सकता है। हालैण्डके साम्राज्यका क्षेत्रफल ७९०००० वर्गमील और जनसंख्या ६०९९४८९० है। किसी समय हालैण्डकी शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी थी और यूरोपके प्रमुख राष्ट्रोंमें इसकी गणना की जाती थी। आज भी हालैण्डके व्यापारिक जहाज संसारके सब हिस्सोंमें आते-जाते हैं।

हालैण्डकी रानी विलहेलमिना

हालैण्डमें वंश-परम्परागत वैधानिक राजतन्त्र-प्रणाली है। पार्लमेण्ट है और मन्त्रिमण्डल भी है; परन्तु ये रानीके समक्ष उत्तरदायी हैं। अन्तिम जिम्मेदारी रानीकी ही है। एक बार एक फ्रान्सीसी राजनीतिज्ञने कहा था कि "यूरोपमें एकमात्र राजसत्ता हालैण्डमें है।" हालैण्डकी रानीको यूरोपके कितने ही नरेशोंकी अपेक्षा अधिक अधिकार हैं। वे किसी भी प्रस्तावको बिलकुल अस्वीकृत कर सकती हैं, पार्लमेण्टको भङ्ग कर सकती हैं, चौदह मेम्बरोंकी स्टेट कौन्सिल बना सकती हैं, जिससे प्रत्येक कानूनके मसविदेपर सलाह ली ही जानी चाहिए। इतना व्यापक अधिकार रखनेपर भी हालैण्डकी रानीने अपने विशेष अधिकारसे काम लेकर कभी कोई प्रस्ताव अस्वीकृत नहीं किया और ४० वर्षसे अधिकके शासनमें केवल दो ही बार ऐसा अवसर आया कि पार्लमेण्टको भङ्ग कर देना पड़ा। रानी जो कुछ चाहती हैं, उसे पार्लमेण्टके नेताओंको बतला देती हैं और वे उसे पूरी तरह पालन करते हैं। रानीके मन्त्रिमण्डलमें सुयोग्य व्यक्ति हैं। सुयोग्य व्यक्तियोंको चुननेकी प्रतिभा रानी विलहेलमिनामें खास तौरसे पायी जाती है।

रानी विलहेलमिनाको बचपनमें इस बातका बड़ा चाव था कि वे समग्र हालैण्डकी रानी हैं। पुलिस कर्मचारियों और स्टेशन-मास्टरोंको हुक्म देना उन्हें बड़ा अच्छा लगता था। उनसे जब कोई राजसी तरीका छोड़कर निजी तौरसे सफर करनेको कहता, तब वे इनकार कर देतीं और जब कोई अवसर मिलता, यह कहे बिना नहीं रहती थीं कि वे हालैण्ड-

की रानी हैं ! रानी विल्हेलमिनाकी इस प्रवृत्तिको दूर करनेका उपाय उनकी माताने खोज निकाला। उन्हें इस बातकी छुट्टी दे दी गयी कि वे मखमली वस्त्रों और रत्नजटित भूषणोंसे अपनेको, जितना चाहें, सजायें और जब तक चाहें, राजमहलके चारों ओर परेड किया करें। इसका परिणाम बड़ा अच्छा हुआ। कहानियों-जैसी राजकुमारी बनकर फिरनेसे वे थोड़े ही दिनोंमें ऊब गयीं और उसके बाद फिर उन्होंने कपड़ों और रत्नोंकी कभी परवा नहीं की। आज तो उनका पहनावा बहुत ही सादा है। वे साधारण प्रजाजनोंकी भांति बड़ी सादगीसे रहती हैं। किसी समय वे घोड़ेपर बाहर घूमने जाया करती थीं; पर आज तो हेगकी सड़कोंपर उन्हें साइकिलपर देखा जा सकता है। कभी-कभी वे राजमहलकी खिड़कीके सामने मशीनसे कपड़ोंकी सिलाई करती हुई भी दिखलाई : पड़ती हैं। सादगीके साथ ही उनमें एक और भी गुण है। वे साधारणतः जिन कामोंको स्वयं कर सकती हैं, उनके लिए किसी दूसरेको कष्ट नहीं देना चाहतीं। एक बारकी बात है, वे बाइसिकिलपर बाहरसे लौटकर आयी थीं। राजमहलका सन्तरी उन्हें उतरता देखकर सहायता पहुंचानेके लिए आगे बढ़ा; परन्तु रानीने हाथके इशारेसे उसे रोक दिया। इसके बाद उन्होंने स्वयं अपनी साइकिल उठायी और उसे रेकमें लगाकर भीतर चली गयीं।

रानी विल्हेलमिनाको बचपनमें अपनी माताके कड़े अनुशासनमें रहना पड़ा था। उन्हें किसीके साथ खेलने नहीं दिया जाता था और बहुत-सा समय पढ़ने-लिखनेमें लगाना पड़ता था। एक बड़े हालमें एक लम्बी कतारमें कुर्सियां रख दी जातीं और प्रत्येक कुर्सीका नाम हालैण्डके किसी बड़े आदमीके नामपर रख दिया जाता। रानी विल्हेलमिनाको, जब वे बालिका ही थीं, जबानी यादकर यह बतलाना पड़ता था कि किस कुर्सीपर कौन-सा नाम है। सोलह वर्षकी आयुमें उन्होंने जर्मन, फ्रेञ्च और अंगरेजीसे अभिज्ञता प्राप्त कर ली। इसके बाद उन्होंने नौ-सेना और नौ-युद्ध-सम्बन्धी ज्ञान अपने जनरलों और एडमिरलोंसे प्राप्त किया। उनकी अर्थशास्त्र सम्बन्धी शिक्षा इतनी व्यवहारिक हुई कि लगभग ६० लाख डालर आयकी अपनी जमीनका प्रबन्ध वे स्वयं ही करती हैं और देशका शासन-प्रबन्ध करनेमें वे इतनी चुस्त हैं कि किसी महत्त्वपूर्ण कागजपर उस समय तक अपनी राजकुमारी जुलियानाको हस्ताक्षर नहीं करने देतीं, जब तक राजकुमारी यह न साबित कर दें कि कागजके प्रत्येक शब्दका अभिप्राय वे अच्छी तरह समझती हैं।

तेरह वर्षकी उम्रमें रानी विल्हेलमिना महारानी विक्टोरियासे मिलने इंगलैण्ड गयी थीं। वहां महारानीने उनका खूब स्वागत किया। बीन आदि कई तरहके बाजे सुनकर रानी विल्हेलमिना बहुत प्रसन्न हुई। उन्होंने वहां राजप्रासादके रस्म-रिवाजों और समारोहोंको भी देखा। इन सब बातोंका रानी विल्हेलमिनापर बड़ा प्रभाव पड़ा। जब लौटकर हालैण्ड गयीं, उन्होंने बालकोंके सहज भावसे अपनी मातासे प्रश्न किया—"मां, अपना काम अच्छी तरह करनेसे मैं भी महारानी विक्टोरियाकी तरह महान् हो जाऊंगी।"

रानी विल्हेलमिना बड़े सवेरे उठती हैं और ८॥ बजे तक प्रातःकालके सभी आवश्यक कामोंसे छुट्टी पाकर जलपान करने बैठती हैं। जलपान बहुत ही साधारण होता है। उसमें रोटी और पनीरके अलावा काफी भी रहती है। जलपानके बाद डाक सामने आती है। सारी चिट्ठियोंको वे स्वयं छांटती और खोलती हैं। कुछ चिट्ठियोंका उत्तर देनेके लिए वे अपने सेक्रेटरीको हिदायत कर देती हैं और कुछके उत्तर वे स्वयं लिखती हैं। इसके बाद मुलाकातोंका सिलसिला आरम्भ होता है और मन्त्री एवं अन्य प्रमुख नागरिक मिलते हैं। रानी विल्हेलमिना एक मेजके सामने कुर्सीपर बैठी होती हैं। उनकी ठोड़ी एक हाथकी हथेलीपर सधी रहती है और उनके दूसरे हाथमें पेन्सिल होती है। बड़े-बड़े मेधावी और वीर पुरुष भी रानी विल्हेलमिनासे बातचीत करते समय उसी तरह घबराये हुए-से हो जाते हैं, जैसे परीक्षाके समय स्कूलके छात्र। इसका कारण है और वह है रानी विल्हेलमिनाका अगाध ज्ञान और अध्ययन। साधारण विषयोंको भी विवरणके साथ अध्ययन करनेका उन्हें पूरा शौक है। हालैण्डका साम्राज्य प्रशान्त महासागरके दक्षिणी भागके टापुओं तक फैला हुआ है; परन्तु इन सब भागोंका रानी विल्हेलमिनाको आश्चर्यजनक ज्ञान है। उनकी स्मृति बड़ी अच्छी है। कितनी ही बार किसी मन्त्रीका कोई प्रस्ताव सुनकर उन्हें यह कहते हुए सुना गया है—"पिछले साल आपने जो रिपोर्ट पेश की थी, उससे

आपके इस कथनका मेल नहीं है। क्यों ?" कई बार प्रधान मन्त्री तकको उनके पाससे यह सुनकर लौट आना पड़ता है—"क्या आप यह नहीं सोचते कि आपका इस विषयमें कुछ ज्यादा अध्ययन कर मेरे सामने आना ज्यादा अच्छा होता !" रानी विल्हेलमिना अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं-को बड़ी अच्छी तरह समझती हैं। कई साल हुए, एक अमेरिकन सिनेटर उनसे मिलने गया था। बातचीत होनेपर नीग्रो लोगोंकी समस्याकी चर्चा चल पड़ी। रानी विल्हेलमिनाने इस बातचीतके समय नीग्रो लोगोंकी समस्याके सम्बन्धमें आश्चर्यजनक जानकारीका परिचय दिया और अमेरिकन सिनेटरको अपनी जानकारीपर लज्जित होना पड़ा। रानी विल्हेलमिनाने यह सब ज्ञान अपने व्यापक अध्ययनसे प्राप्त किया है। इसके सिवाय उन्हें जिन विशेषज्ञोंसे मिलनेका अवसर मिलता है, उनसे भी प्रश्नोत्तर कर वे हमेशा ही अपनी जानकारी बढ़ाती रहती हैं।

रानी विल्हेलमिनामें असाधारण साहस है। राज्याधिकार ग्रहण करते ही उन्होंने अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रताकी खातिर मन्त्रियों द्वारा भाषण तैयार किये जानेकी प्रथाको बिलकुल ही उठा दिया और पहली बार ही जब बोलनेका अवसर आया, उन्होंने अपना भाषण स्वयं तैयार किया। १९०० ईस्वीकी घटना है। उस समय उनकी वय केवल २० वर्षकी थी। अंगरेजोंने दक्षिण अफ्रीकामें बोअरोंके नेता पाल क्रूगर-को विवश कर दिया था। उस समय ब्रिटेनका बड़ा दबदबा था और यूरोपके बड़े-बड़े राष्ट्र उससे कांपते और झुकते थे। परन्तु रानी विल्हेलमिनाको रत्ती-भर भी भय नहीं था। पाल क्रूगर डच थे, इसलिए रानी विल्हेलमिनाकी आज्ञासे हालैण्डका एक जङ्गी जहाज दक्षिण अफ्रीकाके लिए रवाना हुआ और पाल क्रूगरको वहांसे लेकर हालैण्ड लौट आया। ब्रिटिश सरकारने इसपर आपत्ति की; परन्तु रानी विल्हेलमिनाने जो उत्तर दिया, उससे महारानी विक्टोरियाने इस विषयको आगे न बढ़ाना ही ठीक समझा।

इसी तरहकी एक अन्य घटना १९१८ में हुई और रानी विल्हेलमिनाने बतलाया कि वे क्या हैं। जर्मनीके कैसर विलियमने राज्य त्याग कर हालैण्डमें शरण ली थी। ब्रिटेनके तत्कालीन प्रधान मन्त्री मि० लायड जार्ज यह चाहते थे कि हालैण्डकी रानी जर्मनीके कैसरको दे दें, जिससे उनपर
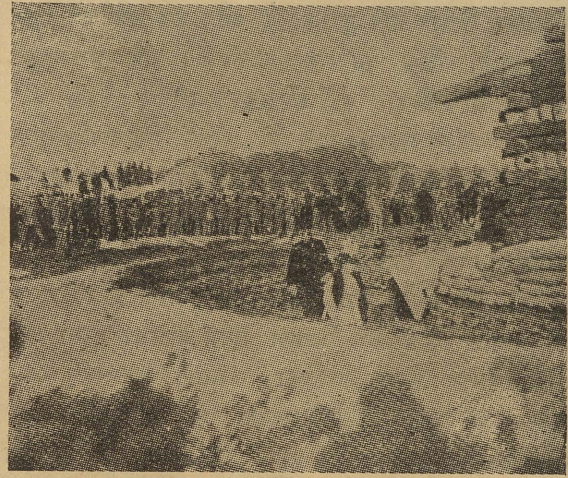
रानी विल्हेलमिना सैनिकोंके एक मोर्चेपर खाइयोंका निरीक्षण कर रही हैं।

मामला चलाया जा सके। रानी विल्हेलमिनाको जब यह मालूम हुआ, उन्होंने इस विचारकी मूर्खता दिखलाते हुए जबानी ही कहला दिया कि वैसा करना कैसी गलती होगी। रानीके इस साहससे उस समय ब्रिटिश सरकार स्तम्भित रह गयी थी और बादमें युद्धका बुखार उतरनेपर तो मि० लायड जार्जने भी उस दृढ़ताके लिए रानी विल्हेलमिनाको धन्यवाद ही दिया होगा। इसी तरह वर्सेलीजकी सन्धिके समय जब रानी विल्हेलमिनाको मालूम हुआ कि मित्र-राष्ट्र हालैण्डके कुछ भाग बेल्जियमको दे डालना चाहते हैं, तब उन्होंने उसका घोर विरोध किया और प्रस्तावित अञ्चलोंका दौरा कर प्रजाजनोंको मित्र-राष्ट्रोंके निश्चयके विरुद्ध अपना कर्तव्य पालन करनेके लिए तैयार किया। मित्र-राष्ट्र रानी विल्हेलमिनाके सङ्कल्प और उनकी दृढ़तासे पहलेसे ही परिचित थे, अतः अन्तमें उन्होंने विवेकपूर्वक अपना वह विचार छोड़ देनेका ही निश्चय किया।

ऐसा ही एक अन्य अवसर उस समय उपस्थित हुआ, जब कई साल पहले राजकुमारी जुलियानाका विवाह प्रिन्स बर्न हार्डके साथ हुआ। प्रिन्स बर्न हार्ड जर्मन हैं और हर हिटलर यह चाहते थे कि शादीके अवसरपर जर्मनीका स्वस्तिक झण्डा फहराया जाय। रानी विल्हेलमिनाने इस सम्बन्धमें हर हिटलरको टका-सा जवाब देते हुए लिखा था

कि "यह विवाह मेरी पुत्रीका है और उस व्यक्तिके साथ हो रहा है, जिसे वह प्यार करती है। यह हालैण्डका जर्मनीके साथ विवाह नहीं हो रहा है।"

कई महीने पहलेकी बात है, रानी विलेहेलमिनाको मालूम हुआ कि जर्मनी हालैण्डपर हमला करनेकी तैयारी कर रहा है। उन्होंने तुरन्त ही हर हिटलरको लिखा—"नहरोंसे पानी खोलकर लगभग तिहाई भू-भागको जल-प्लावित कर दिया जायगा और इस बातकी परवाह न की जायगी कि इसका कितना मूल्य चुकाना होगा और वैसा होनेसे कितने कष्टोंका सामना करना होगा। बेल्जियमकी सेनायें भी मेरी मददके लिए पहुंच जायेंगी।" रानी विलेहेलमिनाका पत्र पाकर उस समय हर हिटलरने हालैण्डपर हमला करनेका विचार स्थगित तो कर दिया; परन्तु उसे सर्वथा छोड़ नहीं दिया। इसीलिए गत १० मईको जब जर्मनीने पूर्व सूचना दिये बिना ही हालैण्डपर आक्रमण कर दिया, रानी विलेहेलमिनाने भी जर्मनीके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी और अपने प्रजाजनोंसे कहा कि "हालैण्ड युद्ध-कालमें पूर्ण सावधानीके साथ लगातार ही तटस्थ रहा है; परन्तु जर्मनीने कोई चेतावनी दिये बिना अचानक ही आक्रमण कर दिया। मेरी सरकार अपना कर्तव्य पालन करेगी।" जर्मनीके विरुद्ध हालैण्डकी इस युद्ध-घोषणाका अर्थ क्या है, इसका अनुमान आसानीसे किया जा सकता है। रानी विलेहेलमिनाने जर्मनीके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर अपने साहससे निश्चय ही सारे संसारको चकित कर दिया है।

बीस वर्षकी उम्रमें १९०१ ईस्वीमें रानी विलेहेलमिनाका विवाह मेकलेनबर्गके प्रिन्स हेनरीसे हुआ। प्रिन्स हेनरी जर्मन थे, इसलिए गत महासमरमें जर्मनीके साथ उनकी सहानुभूति होना स्वाभाविक ही था। रानी विलेहेलमिना-को यह अभीष्ट नहीं था और वे हालैण्डको तटस्थ ही रखना चाहती थीं। एक ओर पतिकी इच्छाका प्रश्न था और दूसरी ओर था देशके लाभका प्रश्न। रानी विलेहेलमिनाने देशके प्रति अपना कर्तव्य पूरा किया और अपने पति प्रिन्स-को पुलिसकी निगरानीमें रख दिया। कर्तव्य मनुष्यको कभी-कभी बड़ा कठोर कर्म करनेके लिए विवश कर देता है।

रानी विलेहेलमिना कभी शराब नहीं पीतीं। उन्हें अपने साधारण प्रजाजनोंकी तरह रहना पसन्द है। राजकुमारी जुलियानाको उन्होंने सार्वजनिक स्कूलोंमें पढ़ाया है। स्कूलमें राजकुमारी जुलियानाको प्रायः सभी विषयोंमें अच्छे नम्बर मिला करते थे। रानी विलेहेलमिना इन नम्बरोंको हमेशा ही सन्देहकी दृष्टिसे देखा करती थीं। उनका खयाल था कि योग्यता नहीं होनेपर भी राजकुमारी होनेके कारण ये नम्बर दे दिये जाते हैं। इसीलिए जब राजकुमारी जुलियाना कालेजमें पढ़ने गयीं, तो उन्होंने विश्वविद्यालयके अधिकारियोंको लिखकर यह सूचित कर दिया कि राजकुमारीके साथ साधारण छात्रों और छात्राओं-जैसा ही व्यवहार किया जाय, राजकुमारी होनेके कारण उसके साथ किसी तरहका विशेष व्यवहार न किया जाय। रानी विलेहेलमिनाको अपनी मर्यादाका भी बड़ा खयाल है और रहन-सहन, वेश-भूषा और खान-पान, जो कुछ हालैण्डका है, वही उन्हें प्रिय है। जर्मन प्रिन्स बर्न हार्डके साथ विवाह हो जानेके बाद जब राजकुमारी जुलियाना रीवियरामें उल्लास कर रही थीं, रानी विलेहेलमिनाको यह मालूम हुआ कि वे रात्रि-क्लबोंमें नाचती, रविवारको सार्वजनिक रूपमें मद्य पीती, फ्रान्सीसी तर्जका गाउन पह-नती और नहानेकी पोशाक पहननेका दुःसाहस करती हैं। इसपर उन्होंने नव-दम्पतिको तुरन्त ही लौट आनेकी आज्ञा दी और सबसे अलग एक महलमें उनके रहनेकी व्यवस्था कर दी। एक बारकी बात है, राजप्रासादमें आने-जानेवाली एक महिला पेरिस फैशनकी बढ़िया पोशाक पहनकर गयी। रानी विलेहेलमिनाकी दृष्टि ज्यों ही उसपर पड़ी, उन्होंने रौबके साथ पूछा—"यह हैट कहांसे मंगाया?" महिलाने सकपकाकर उत्तर दिया—"पेरिससे।" रानी विलेहेलमिनाने कहा—"यहां डच पहनावा पहना जाता है।"

गत महासमरके बाद एक ऐसी घटना हुई, जिससे रानी विलेहेलमिनाकी राजनीतिक दूरदर्शिताका पता चलता है और मालूम होता है कि वे समयकी प्रगतिको पहचाननेमें कितनी कुशल हैं। गत महासमरमें ब्रिटेनने जर्मनीके चारों ओर जो घेरा डाला था, उसका शिकार हालैण्डको भी होना पड़ा था। इससे वहां जनताको बड़े कष्टोंका सामना करना पड़ा था। देशमें गरीबी फैल गयी थी और पेटकी ज्वालासे हालैण्डवासी दुःखी हो रहे थे। इस गरीबी और पेटकी ज्वालाने समाजवादको जन्म दिया और राजतन्त्र-

विरोधी प्रबल हो गये। समाजवादी नेताने सरकारको इस्तीफा देनेके लिए चुनौती दी और क्रान्तिके लिए एक दिन निश्चित कर दिया गया। रानी विलहेलमिना इस दिन भी गिरजेमें गयीं। मन्त्रियोंके साथ मिलकर उन्होंने ईश्वरसे प्रार्थना की कि वह मार्ग-प्रदर्शन करे, सुमार्गपर चलाये। इसी समय किसीने हालैण्डका राष्ट्रीय गीत आरम्भ कर दिया। यह गीत आरम्भ हुआ ही था कि सारा जन-समूह उसे गाने लगा। रानी विलहेलमिना भी उसे खूब जोरसे चिल्लाकर गा रही थीं। इस राष्ट्रीय गीतके साथ जो प्रदर्शन आरम्भ हुआ, उससे सारा वातावरण ही बदल गया और जो क्रान्ति उसी दिन होनेवाली थी, वह नहीं हुई।

क्रान्ति नहीं हुई; परन्तु रानी विलहेलमिनाने यह अनुभव किया कि समयका क्या तकाजा है। उसी दिन सन्ध्याको उन्होंने एक घोषणा प्रकाशित की कि "जनतामें जैसी जागृति है, उसके अनुरूप शीघ्रताके साथ सामाजिक सुधारोंको कार्यान्वित किया जायगा।" यह घोषणा केवल घोषणा नहीं थी, रानी विलहेलमिनाने जो वचन दिया था, उसे पूरा किया है। हालैण्डमें समाजका नये रूपमें सङ्गठन कमसे कम हल्ले-गुल्लेसे ज्यादासे ज्यादा हुआ है। कामके घण्टे, मजदूरी, बुढ़ापेका बीमा, बेकारी आदि आधुनिक प्रश्नोंको वहां बड़ी खूबीसे हल कर लिया गया है।

इधर यूरोपमें जबसे युद्ध आरम्भ हुआ, रानी विलहेल-मिनाकी चर्या थोड़ी बदल गयी है। वे वैसे भी कार्य-व्यस्त रहा करती थीं, युद्धारम्भसे इधर तो उनका कार्य और भी ज्यादा बढ़ गया है। अपने महलसे बाहर निकलनेका अवसर उन्हें बहुत कम मिलने लगा। यह अवसर जब उन्हें मिल जाता, तो वे सीमान्तके सैनिक पड़ावोंमें जातीं और यह देखतीं कि किसीको कोई कष्ट तो नहीं है। सेनामें रानी विलहेलमिना इतनी लोकप्रिय हैं कि सैनिक उन्हें देखते ही 'देशमाता' 'देशमाता' कहकर आनन्दसे उछल पड़ते हैं।

गत १० मईको जर्मनोंने हालैण्डपर जो आक्रमण किया, उसकी निन्दा सारे संसारने की है। वर्तमान महासमरमें हालैण्डने यत्नपूर्वक तटस्थ रहनेका प्रयत्न किया था; परन्तु हिटलरने उसपर भी आक्रमण कर दिया। रानी विल-हेलमिनाका इरादा हालैण्ड छोड़नेका नहीं था; परन्तु जर्मनीकी कोशिश यह थी कि उन्हें किसी तरह पकड़ लिया जाय। मन्त्रियोंको समय रहते इसका भेद मालूम हो गया और उन्होंने रानीसे हालैण्ड छोड़ देनेका अनुरोध किया। रानी विलहेलमिनाने यह अनुभव किया कि हालैण्डमें रहकर स्वतन्त्रतापूर्वक युद्ध-सञ्चालन करना सम्भव नहीं है, इसीलिए अपनी सरकारके साथ वे लन्दन चली गयीं। जिस समय ये पंक्तियां लिखी जा रही हैं, हालैण्डकी सरकार लन्दनमें है। रानी विलहेलमिनाने अपने प्रजाजनोंको आश्वा-सन दिलाया है कि "ईश्वरकी सहायतासे हम अवश्य जीतेंगे।" हालैण्डके इस सङ्कटमें संसारके सभी स्वतन्त्रता-प्रेमियोंकी सहानुभूति हालैण्डके साथ है और हमें विश्वास रखना चाहिए कि अन्तमें सत्य और न्यायकी विजय होगी और हालैण्ड घने बादलोंको चीरकर निकले हुए चन्द्रमाकी भांति फिर चमकेगा।
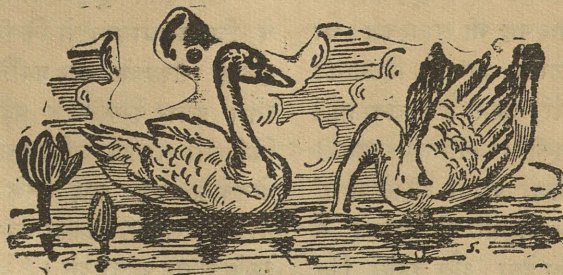
नाजीवादके जर्मन शत्रु

श्री फ्रिट्ज मैक्स काहेन

[फ्रिट्ज मैक्स काहेन एक सुप्रसिद्ध जर्मन राजनीतिज्ञ हैं। आजकल आप अमेरिकामें हैं। जेकोस्लोवाकियाको भी हिटलरने जब हड़प लिया, तो आपको अमेरिका भागना पड़ा। कई वर्षों तक नाजीवादके मूलोच्छेदनके लिए आपने जर्मनीके अन्दर गुप्त समितियोंमें एक जिम्मेदार पदाधिकारीकी हैसियतसे काम किया है। आपने अभी हालमें अंगरेजीमें एक पुस्तक लिखी है, जिसमें नाजी-विरोधी गुप्त समितियोंकी कार्यवाहियोंपर पूर्ण रूपसे प्रकाश डाला गया है। उसी पुस्तकसे प्रस्तुत लेख उद्धृत किया गया है।—अनु०]

उन दिनों मैं जेकोस्लोवाकियामें भागकर चला आया था। किन्तु मेरे मित्र इस बातको बखूबी समझते थे कि मैं अपना सारा समय केवल सिनेमाके मनोरञ्जक प्लाट लिखनेमें नहीं व्यतीत कर सकता। मैंने भी नाजी-विरोधी प्रचारके लिए नये साधन शीघ्र ही ढूंढ़ लिये। कुछ ही सप्ताहोंके अन्दर कई विश्वासपात्र 'लेटर बाक्स' हमने ठीक कर लिये और उनके जरिये जर्मनीके अन्दरसे हर तरहके महत्त्वपूर्ण समाचारोंका नियमित रूपसे आदान-प्रदान होने लगा।

'लेटर बाक्स' गुप्त अन्तरङ्ग समितियोंका विशेष शब्द है। इसका प्रयोग ऐसे व्यक्तियोंके लिए किया जाता है, जिनके द्वारा हम गैरकानूनी कागजात तथा सन्देश अपने भिन्न-भिन्न अड्डोंके लिए भेजा करते हैं।

जर्मनीके भीतर इन लेटर बाक्सोंके जरिये पहला सन्देश भेजा गया कि 'युद्ध छिड़नेके पहले ही हमें हिटलरकी जड़ उखाड़ देनी चाहिए।' जर्मनीके भिन्न-भिन्न शहरोंमें मकानोंकी दीवालोंपर खड़ियामिट्टीसे ये वाक्य लिखे हुए हर कहीं नजर आये। इस उद्बोधनके साथ यह भी आवश्यक था कि जर्मनीकी आम जनताको बतलाया जाय कि हिटलरकी सत्ताका मूलोच्छेदन करना क्यों जरूरी है। अतः प्रति सप्ताह मैं संक्षेपमें अन्तर्राष्ट्रीय जगत्की राजनीतिक हालतकी रिपोर्ट लिखता और उसमें कहीं-कहीं अपनी ओरसे मौजूं टिप्पणी भी रख देता। अपने 'लेटर बाक्सों' की मददसे मैं नियमित रूपसे इन्हें केन्द्रपर भेज देता और वहांसे फिर प्रत्येक जिलेमें इनका वितरण हो जाता। मेरा सन्देश काफी अधिक संख्यामें लोगोंके पास पहुंच जाया करता था, फिर भी मैंने महसूस किया कि इस प्रकारकी खबर जिन तरीकेसे लोगोंके पास पहुंच रही है, वह कुछ विशेष प्रभावोत्पादक नहीं—अतः मैंने निश्चय किया कि जर्मनीके अन्दर हिटलरका विरोध करनेवाले जितने भिन्न-भिन्न दल हैं, उन सबका एक संयुक्त मोर्चा हिटलरके खिलाफ कायम किया जाना चाहिए और इस संयुक्त मोर्चेको एक सुसङ्गठित रूप भी देना आवश्यक होगा।

इस स्कीमके अनुसार हम लोगोंने इसी आशयकी एक अपील सन् १९३६ में भिन्न-भिन्न दलोंसे की। अप्रैल १९३७ में इस संयुक्त मोर्चेकी पहली बैठक जेकोस्लोवाकियामें हुई और संयुक्त मोर्चेके नामसे काम करनेके लिए मुझे पूरे अधिकार प्रदान किये गये।

जर्मन गेस्टैप्पोकी सतर्क आंखोंसे बचाकर गैरकानूनी पर्चेका बांटना निस्सन्देह खतरेसे खाली न था; किन्तु हमारा काम बराबर जारी रहा। नित्य ही पर्चे बांटनेके लिए हम नयी-नयी तरकीबें निकालते। प्रायः व्यावसायिक विज्ञापनोंकी आड़में हम अपना मतलब हासिल कर लेते। उदाहरणके लिए हम किसी रेडियो पैम्फलेटके पहले पृष्ठको तो ज्योंका त्यों रहने देते; किन्तु दूसरे पृष्ठपर हम शुरू करते :—

"किन्तु दुनियाके सबसे उम्दा लाउडस्पीकर डाक्टर गोबेल्स हैं। हां, इनमें थोड़ी-सी खराबी यह है कि यह लाउडस्पीकर झूठ बहुत बोलता है।........."

फिर हमने बहुत-से ग्रामोफोन रेकार्ड भी तैयार कराये थे, जिनका प्रारम्भ तो किसी प्रचलित गानेसे होता; किन्तु कुछ ही सेकण्डके बाद क्रान्तिकारी आह्वान उनसे सुनाई देते। हमारे पैम्फलेटोंके बड़े-बड़े पार्सल रेलगाड़ी, नहर, किश्तियों आदिके जरिये जर्मनीके अन्दर पहुंचते रहते। या बोतलोंके अन्दर बन्द करके उन्हें एल्ब और राइन-सरीखी नदियोंके सहारे, जिनका उद्गम जर्मनीसे बाहर है, बहाकर देशके भीतर पहुंचा देते।

मुझे भली भांति याद है कि जर्मन सीमाके निकट होनेवाले कई एक मेलोंमें हम लोगोंने छोटे-छोटे रबरके हजारों बैलून बेचे थे। इन बैलूनोंमें क्रान्तिकारी पैम्फलेट और पर्चे रखे हुए थे। ये सबके सब बैलूनके साथ हवामें उड़कर जर्मन सीमाके अन्दर पहुंच गये थे।

किन्तु हमारा बहुत-सा क्रान्तिकारी साहित्य विश्वास-पात्र व्यक्तियोंके हाथ जर्मनीके अन्दर पहुंचा करता था। किन्तु जैसे-जैसे हमारे प्रमुख मेम्बर गिरफ्तार होते गये, उपर्युक्त आदमी ढूंढ़नेमें हमारी मुश्किल भी उसी हिसाबसे बढ़ती गयी। कई बार तो ऐसा हुआ कि हमारे आदमियोंने पैम्फलेटकी गड्डी जङ्गलमें फेंक दी, या गेस्टैप्पोसे जा मिले। इस तरह जिस साहित्यके उत्पन्न करनेमें हमने इतना परिश्रम किया था, उसका एक बहुत बड़ा अंश बजाय जनताके हाथोंमें पहुंचनेके, हिटलरकी पुलिसके हाथों लगा। आखिर मैंने निश्चय किया कि पैम्फलेटके जरिये प्रोपेगण्डा करना बन्द कर दिया जाय, क्योंकि इसमें धन और शक्तिका भारी अपव्यय होता है।

गैरकानूनी रेडियो-स्टेशनके ब्राडकास्टकी कहानी भी कम रोचक नहीं है। नाजीवादके विरुद्ध ब्राडकास्ट करनेवाला पहला रेडियो - स्टेशन डाक्टर स्ट्रासेरके ब्लैक फ्रण्ट दलका था। प्रेगके नजदीक जहोरी नामक एक होटलसे उनका इञ्जीनियर फोर्मिस प्रतिदिन सन्ध्याको पार्टीके आदेशानुसार प्रोग्राम ब्राडकास्ट करता। फोर्मिस 'शार्ट वेव' ब्राडकास्टमें बहुत ही निपुण था। जर्मनीसे १९३४ में जब वह भागकर आस्ट्रिया आया, तो उसने स्ट्रासेरकी ब्लैक फ्रण्ट पार्टीमें अपनेको भर्ती करा लिया। मामूली पुर्जोंकी मददसे बिलकुल अकेले ही उसने अपना ब्राडकास्टिङ्ग रेडियो सेट तैयार किया और बिला नागा उसने पूरे सालभर उस सेटसे प्रतिदिन पार्टीका प्रोग्राम जर्मन जनताके लिए ब्राडकास्ट किया। ब्राडकास्टमें जरा-सी भी गड़बड़ी कभी नहीं हुई।

आसायशमें हमेशा रहनेवाले फोर्मिसको यह एकान्तवास बहुत खलता था। सेटमें कोई खराबी हुई, तो अकेले ही उसको दुरुस्त करना होता था। कभी-कभी छिपकर वह पैम्फलेट, पर्चे तथा आदेश प्राप्त करनेके लिए प्रेग चला जाया करता। वरना अकेले ही सन्ध्याके लिए वह प्रतिदिन समाचार-पत्रों तथा डाक्टर स्ट्रासेरकी चिट्ठियोंके आधारपर न्यूज़ बुलेटिन तैयार करता।

कुछ तो अपनी गफलतसे और कुछ गेस्टैप्पोकी सतर्कताके कारण थोड़े ही दिनों उपरान्त वह गेस्टैप्पोका शिकार बन गया। बहुत दिनों तक गेस्टैप्पो-कर्मचारी इस रेडियो-स्टेशनकी तलाशमें थे और प्रेग आने-जानेवालोंपर वे तेज निगाह रखते थे। फोर्मिस जब प्रेग जाता, तो वह बराबर एक ही होटलमें ठहरता—गेस्टैप्पोके गुप्तचरोंने इस बातको मार्क किया। दूसरी बार जब फोर्मिस इस होटलमें उतरा, तो उसने अपनी डाइनिङ्ग टेबुलपर दो छरहरे प्रसन्नचित्त नवयुवकों और एक षोडशीको बैठे पाया। बातों-बातोंमें उनकी घनिष्ठता बढ़ गयी। फोर्मिसने, जो एकान्त-वाससे एक तरह घबरा उठा था, अपने इन नये मित्रोंको अपने होटल जहोरीमें चाय पीनेके लिए आमन्त्रित किया। सारांश यह कि गेस्टैप्पोके जालमें वह पूर्णतया फंस गया। अगले रविवारको फोर्मिसको गेस्टैप्पोकी गोलियोंका शिकार बनना पड़ा। हाथमें पिस्तौल और बदनमें गोलियोंके घाव उसकी लाशमें मौजूद थे। धर-पकड़से बचनेके लिए फोर्मिसने पहले गोली चलायी थी और इस काण्डमें कदाचित् गेस्टैप्पो दलके एकाध व्यक्ति भी घायल हुए थे।

इस घटनाके बाद भी ब्लैक फ्रण्टका रेडियो ब्राडकास्ट जारी रहा। दक्षिण अमेरिकामें इन लोगोंने अपना रेडियो-स्टेशन कायम किया और जर्मन भाषामें रातको ये अपना प्रोग्राम ब्राडकास्ट करते थे। किन्तु पैसोंकी कमीसे यह स्टेशन भी इन्हें बन्द करना पड़ा।

गुप्त रेडियो ब्राडकास्टके सम्बन्धमें मुझे भी काफी अनुभव प्राप्त हैं। जर्मन लिबर्टी वेवके नामसे हमारा रेडियो-स्टेशन प्रोग्राम ब्राडकास्ट करता है। इस स्टेशनके बारेमें विस्तृत रूपसे यहां अधिक कुछ इसलिए नहीं लिखा जा रहा है कि ऐसा करनेसे अनेक व्यक्तियोंको गेस्टैप्पोका कोपभाजन बनना पड़ेगा। दिसम्बर १९३६ में हम लोगोंने निश्चय किया कि प्रोपेगण्डाके लिए हम लोग रेडियो ब्राडकास्टिङ्ग सेटका इस्तेमाल करेंगे। संयुक्त प्रदेश अमेरिकासे इस सेटके विभिन्न पुर्जे मंगाये गये और एक-एक, दो-दो करके उन्हें डाकरी आलोंके साथ हैम्बर्ग शहरमें पहुंचाया गया। कुछ ही दिनों उपरान्त हर रातको ९॥ बजे गेस्टैप्पोकी

आंखें बचाकर लोग अपने रेडियो सेटपर सुनने लगे—"जर्मन लिबर्टी वेव स्टेशन—सोशलिस्ट जन-आन्दोलन। हम राजधानी बर्लिनसे बोल रहे हैं·········।"

कुछ सप्ताह बाद मुझे विश्वस्त सूत्रसे पता लगा कि जेकोस्लोवाकिया-स्थित जर्मन राजदूतने वहांकी गवर्नमेण्टसे शिकायत की है कि कुछ लोग जर्मन सरकारके खिलाफ विद्रोहात्मक प्रचार रेडियो द्वारा जर्मन भाषामें कर रहे हैं और उनके आन्दोलनका केन्द्र प्रेगमें है।

प्रेगके निवासी इस बातको नहीं जानते थे कि जर्मनीके अन्दर इस तरहका कोई ब्राडकास्टिङ्ग स्टेशन हिटलर-विरोधी प्रचार कर रहा है। मुझे वह दिन भली भांति याद है, जब मैंने अन्य विरोधी दलके सदस्योंको अपने यहां रातको भोजनके लिए आमन्त्रित किया था। भोजनके उपरान्त ठीक ९॥ बजे मैंने अपने रेडियो सेटका डायल घुमाया और ठेठ जर्मन उच्चारणके साथ उन लोगोंने सुना—"हम जर्मन लिबर्टी वेवसे बोल रहे हैं......।" हमारे सभी साथी आश्चर्य-चकित रह गये थे।

दूसरे दिन दोपहरको बाजारसे कुछ खरीद-फरोख्त करके जब मैं घर लौटा, तो मेरी पत्नी घबरायी हुई मेरे पास आयी और बोली—"सादे लिबासमें दो गेस्टैप्पो गुप्तचर आज यहां आये थे, और आस्कर (मेरे पुत्र) को वे अपने साथ गिरफ्तार करके ले गये। मैं ठीक बता नहीं सकती, माजरा क्या है; किन्तु मामला सङ्गीन नजर आता है।"

अभी वह ठीकतौरपर बात खत्म भी न कर पायी थी कि दरवाजेकी घण्टी बजी, और जेकोस्लोवाकियन पुलिसके दो गुप्तचर सादी वर्दी पहने भीतर आ धमके। मैंने उनसे पूछा, 'आप क्या चाहते हैं?' उत्तर मिला, "हम तुम्हारे मकानकी तलाशी लेने आये हैं। हमें आर्डर मिला है कि तुम्हें मय कागजातके गिरफ्तार करके हेडक्वार्टरपर ले आयें।"

"लेकिन यह सब बावेला किसलिये?"

"अजी बात यह है कि तुम्हारे पुत्रकी मोटर कारमें एक शार्ट वेव रेडियो ब्राडकास्टिङ्ग सेट लगा हुआ पाया गया है और यह एक सङ्गीन जुर्म है।"

पुलिस हेड क्वार्टरपर मैं और मेरी पत्नी दोनों अलग-अलग कमरोंमें १२ घण्टे तक बन्द रहे। जब उन लोगोंने मेरे पुत्रसे इस सम्बन्धमें प्रश्न किया, तो उसने उत्तर दिया—"हमें खबर मिली थी कि हमारे पिताके आन्दोलनमें भाग लेनेवाले जर्मन सदस्योंके इस ब्राडकास्टिङ्ग सेटमें खराबी आ गयी थी। उन लोगोंने कहा था कि जर्मन सीमापर आकर सेट ले जाना और इसे दुरुस्त करके वापस कर देना। सो मैं यह बिगड़ा हुआ सेट उनसे ले आया। तुम स्वयं देख सकते हो कि यह सेट पूर्ण नहीं है। इसमेंके कई पुर्जे गायब हैं।"

"तो क्या तुम यह बहाना बनाना चाहते हो कि तुमने जेकोस्लोवाकियाकी सीमाके अन्दर इस ब्राडकास्टिङ्ग सेटका इस्तेमाल नहीं किया?"

"बेशक! भला एक बिगड़े हुए सेटसे हम किस तरह ब्राडकास्ट कर सकते थे?"

इस प्रकार घण्टों प्रश्नोंका तांता लगा रहा; किन्तु इसके आगे न तो मेरे पुत्रसे और न उसके दोनों मित्रोंसे—जो कारमें बैठे हुए गिरफ्तार कर लिये गये थे—उन्हें कुछ अधिक बातें मालूम हो सकीं। चूंकि ब्राडकास्टिङ्ग सेटका रखना जुर्ममें दाखिल न था, बल्कि उसका ब्राडकास्टिङ्गके लिए इस्तेमाल करना कानूनकी दृष्टिमें अपराध हो सकता था, इसलिए इस सिलसिलेमें हम लोगोंको कुछ ज्यादा दिक्कत नहीं उठानी पड़ी। बादमें मुझे मालूम हुआ कि लगभग हमारे सभी जान-पहचानके लोग इस मौकेपर गिरफ्तार किये गये थे और उन सबसे अलग-अलग जिरह हुई थी। किन्तु कामकी कोई बात पुलिस उनसे निकाल न सकी थी।

इस गुप्त रेडियो ब्राडकास्टिङ्गका एक जबर्दस्त नैतिक प्रभाव जर्मन जनताके ऊपर पड़ता है। यह भी नितान्त आवश्यक नहीं कि सब कोई इन खबरोंको सुने ही; किन्तु यह ख्याल कि हिटलरके खिलाफ एक दल जी-जानसे प्रयत्नशील है, आम जनताकी नसोंमें जादू फूंक देनेके लिए काफी है। गैर-कानूनी क्रान्तिकारी पर्चोंमें हिटलरके खिलाफ कुछ लिख देना उतनी बड़ी बात नहीं है, जितनी कि स्वयं जबानसे बोलनेकी हिम्मत करना। अपनी जानको हथेलीमें लेकर खुले शब्दोंमें हिटलरके खिलाफ नारे लगानेके लिए निस्सन्देह अपूर्व साहसकी जरूरत होती है। लोगोंकी इस दिलेरीका गहरा और स्थायी प्रभाव आम जनताके ऊपर पड़ता है।

ये लोग आज इस मुहल्लेमें, तो कल शहरके दूसरे छोरपर अपना ब्राडकास्टिङ्ग सेट फिट कर रहे हैं; लेकिन नियत

समयपर ठीक उसी नियत विद्युत्-तरङ्गकी लम्बाईपर ब्राडकास्टिङ्ग जारी हो जाता है। कभी-कभी शहर छोड़कर जङ्गलके अन्दर ये लोग चले जाते हैं और वहींसे अपना दैनिक प्रोग्राम ब्राडकास्ट करते हैं।

मेरे पास प्रमाण मौजूद हैं, जिनके आधारपर मैं निश्चितरूपसे कह सकता हूं कि आम जनतामें पूरे ५० प्रतिशत ऐसे व्यक्ति हैं, जो हिटलरकी सभी बातोंका निष्क्रिय विरोध करते हैं; किन्तु हिटलरके आतङ्कके कारण उसके खिलाफ आवाज नहीं उठाते। फिर २० प्रतिशत लोग इस श्रेणीके हैं कि वे इस बातको स्वीकार करते हैं कि हिटलरने जर्मन राष्ट्रको समृद्धिशाली बनाया है; किन्तु जिन तरीकोंका इस्तेमाल उसने किया है, उन्हें वे पसन्द नहीं करते।

अवश्य जिस दिन हमारा संयुक्त मोर्चा इतनी शक्ति प्राप्त कर लेगा कि हिटलरवादसे वह डटकर लोहा ले सके, उस दिन जर्मन जनताके ये ८० प्रतिशत व्यक्ति भी हमारी भरपूर मदद करेंगे। इसका हमें पूरा विश्वास है।

—भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव—अनुवादक

———

प्रेम—स्वार्थपरताकी पराकाष्ठा

श्री रामसरन शर्मा

आज प्रेमपर कुछ भी लिखना, पुरानी लकीरको पीटना जान पड़ता है। न जाने कबसे कौन-कौन अनुपम विद्वान् इसपर लिख गये हैं।

पर, तो भी यह विषय सदा ही नूतन रहा है। कारण स्पष्ट है। प्रेम करना तो मानवका स्वभाव है, उसकी प्रकृति है—यों भी कह सकते हैं कि यह उसकी एक बीमारी है—असाध्य और अटल।

हम सदा ही प्रेममें रहते हैं। जीवनके पहले पलसे अन्तिम सांस तक। वह चाहे मांका दूध हो, मां हो, कोई युवती हो, धन हो, पुत्र हो, या फिर जीवन ही हो। पर, हम सदा ही जीवनके प्रत्येक क्षण किसी-न-किसीके प्रेममें रत रहते हैं।

इसीलिए प्रेमके विषयमें कुछ लिखने और पढ़नेसे हम कभी भी नहीं ऊबते हैं। यह तो हमारे सदाके चिन्तन और मननका विषय है।

एक और भी कारण है जिससे हमें आज इस प्राचीनतम विषयपर एक बारफिरसे, नये सिरेसे विचार करनेकी आवश्यकता जान पड़ती है।

आज दुनिया करवट-सी ले रही है। संसारके कुछ ही युगोंमें इतने परिवर्तन हुए होंगे या हो सकनेकी सम्भावना रही होगी, जितनी आज है। और यह केवल राजनीतिक क्षेत्र तक ही सीमित हो, सो भी बात नहीं है। यह अभूतपूर्व चेतना हमारे सामाजिक, धार्मिक, नैतिक—सभी पहलुओंसे, हमारे जीवनको हिला डालना चाह रही है। न जाने कैसे इस अपूर्व घर्षणने एक अति तेजोमयी किरणके समान हमें चौंकाकर अपने जीवनको एक बार फिरसे देखनेको मजबूर कर दिया है।

प्रेम तो हमारे जीवनके सभी पहलुओंमें व्याप्त है। हमारे मानसिक, आध्यात्मिक या शारीरिक आकर्षणकी भित्तिपर हो तो हमारे भिन्न-भिन्न सम्पर्क या सम्बन्ध बने हैं। और इन्हीं सम्बन्धोंपर तो हमारा जीवन है। इन्हींसे तो जीवन बनता है। यदि किसी भी प्रकार हम जीवनके किसी क्षेत्रसे समस्त आकर्षणको निकाल सकें, रोक सकें, तो हमारा जीवन उस क्षेत्रमें समाप्त हो जायेगा।

इसीलिए प्रेमके विषयमें कुछ कहना या सुनना हमें कभी भी अरुचिकर नहीं लग सकता है।

प्रेम वास्तवमें दो अर्थोंमें समझा जाता है। व्यापक और संकुचित। अपने व्यापक अर्थमें किसी भी प्रकारके आकर्षणका नाम प्रेम हो सकता है और संकुचित अर्थमें प्रेम केवल उस अन्ध, अवैज्ञानिक, तीव्रतर आकर्षणको कहते हैं, जो हम किसीके प्रति प्रतीत करते हैं।

किन्तु इन दोनों ही अवस्थाओंमें प्रेममें एक बात सदा ही होती है। वह होती है अपने प्रेम-पात्रको पूर्णरूपसे अपना लेनेकी तीव्रतर इच्छा। इस इच्छाके बिना प्रेम होता ही

नहीं है। प्रेमके साथ-साथ अपना कर लेनेकी—पूर्णतया—कामना आवश्यक है। प्रेमी किसी भी औरको अपने प्रेम-पात्रमें हिस्सेदार नहीं बना सकता है।

इसी कारण जलनका जन्म होता है, इसी कारण प्रेमको पूंजीवादी भावना भी कह देते हैं हमारे साम्यवादी मित्र।

आपने खूब ही देखा होगा कि धनके प्रेमी वास्तवमें 'चमड़ी जाये, पर दमड़ी न जाये' पर अमल करते हैं। साथ ही धन-प्रेमीको एक प्रकारकी चोट-सी लगती है यह जानकर कि कोई और भी उसके बराबर या अधिक धनवान है। और अपनी धनराशिमें तो हिस्सेदार बना सकना उसके लिए मृत्युसे भी अधिक भयावह होता है।

छोटेसे छोटा बच्चा भी माताके स्तनपानमें भागी अपने भाई या बहनसे चिढ़ जाता है। गोदमें बैठनेके लिए तो नित्य ही आपके घरमें कोहराम मचता होगा।

युवक और युवती तो किसी प्रकार भी अपने प्रेम-पात्रके तनिकसे प्रेमके दावेदारको फूटी आंख नहीं देख सकते हैं।

कहावत है कि झगड़ेकी जड़ तीन हैं—जर, जमीन और जन।

वास्तवमें इन तीनोंमेंसे किसी एकको ही तो मनुष्य प्रेम करता है।

सच पूछा जाये तो प्रेम एक प्रकारकी बीमारी, मानसिक विकार-सा जान पड़ता है। इसमें जितनी पीड़ा, जितनी वेदना होती है, उसे भुक्तभोगी ही जानते होंगे। किन्तु हमें उस वेदनामें भी मजा आता है। हम उस पीड़ासे निकल न सकें, इसके लिए अविरत चेष्टा करते रहते हैं।

बड़ेसे बड़े आदर्श-प्रेमीके जीवनका चरम लक्ष्य रहा है अपने प्रेम-पात्रको पूर्णतया अपना लेना। यह भावना उन महान् तपस्वियोंकी भी रही है, जो भगवान्के प्रेमी थे। उन्होंने संसारके सारे कष्ट केवल इसीलिए तो उठाये थे कि उन्हें उनके भगवान् मिल जायें। उनके अपने हो जायें।

बड़े-बड़े भक्तराज—सूर, तुलसी आदि—कहनेको तो सदा यही कहते थे कि वे भगवान्के चाकर-मात्र थे। किन्तु क्या वे यह नहीं चाहते थे कि उनके भगवान् उनके इशारों-पर नाचें, उनके होकर रहें?

यही हाल पार्थिव प्रेममें भी रहा है। लैला-मजनूं, शीरीं-फरहाद—सबमें ही तो प्रेमीने सदा ही अपनेको अपने प्रेम-पात्रके चरणोंकी धूलि बताया है। किन्तु उत्कट भावना थी यही कि उनका प्रेमपात्र उनका सेवक, आज्ञा-कारी मात्र बनकर रहे।

यदि ये महानुभाव सचमुच ही इतने दुःख न उठाते, इतने सच्चे न होते—या यों कहें कि एक दयनीय रोगसे ग्रस्त न होते—तो हम इन्हें निस्सङ्कोच बिलकुल बने, मक्कार कह सकते थे। इससे बढ़कर राजनीतिक चाल हो ही क्या सकती है कि मुंहसे कहें दास बननेको और मालिकको नौकर बनाना चाहें।

हमने कहा है कि प्रेम मनुष्यकी स्वार्थपरता है। ठीक है। मनुष्य प्रेम उसे करता है, जो उसे सबसे अच्छा लगता है। जिसके बिना वह अपना जीवन अपूर्ण मानता है। चाहे यह वस्तु भगवान् हों या कोई रमणी। ललित कला हो या केवल रुपया। कुछ भी हो। मनुष्य प्रेम तभी करता है, जब वह यह मान बैठता है कि उस वस्तुके बिना जीना व्यर्थ ही है।

कोई लोग इसे मनुष्य-प्रकृतिकी सदा ही पूर्णतर होनेकी भावना मानते हैं। कहते हैं कि हममें जो कमी होती है, हमारी प्रकृति स्वभावतः उसीको अपनाना चाहती है।

दूसरे इसे समान वस्तुओंका आकर्षण कहते हैं। यह समानका आकर्षण हो या विरोधियोंका, यह तो तय है कि आकर्षण होता है अवश्य। चाहे हम उस आकर्षणके कारणको आज तक न समझ सके हों।

साथ ही इसमें भी सन्देह नहीं कि यह होता है बिना किसी समझ-बूझके। नहीं तो गणितके हलके समान सभी मानव एक ही को प्रेम करते।

ऐसा तो होता नहीं है।

जो भी हो। हम चाहे किसी भी कारणसे यह महसूस करने लगें कि किसी एक वस्तुके बिना हमारा जीवन व्यर्थ है, पर हम करते हैं ऐसा अवश्य।

और ऐसा करते ही हम उस वस्तुको प्राणपणसे अपनाने-की चेष्टा करने लग जाते हैं।

इसे हम प्रेम कहते हैं।

दूसरेको हम हिस्सा दे नहीं सकते हैं—मर अवश्य सकते हैं—यही हमारी स्वार्थपरता है।

सामाजिक समस्यायें और कानून

श्री हरिप्रसाद शास्त्री, बी० ए०, एल-एल० बी०

धर्म और समाजके साथ कानूनका क्या सम्बन्ध है, इस विषयका महत्त्व आज अत्यन्त अधिक हो गया है। यह केवल सिद्धान्तका ही प्रश्न नहीं है, वर्तमान युगमें उसका व्यवहारिक मूल्य है। धर्म और समाज-सम्बन्धी प्रचलित व्यवस्थाओंमें जब-जब सुधार होनेकी आवश्यकता अनुभव की गयी है, व्यवहारवादी नेता हमेशा ही कानून बनानेके पक्षमें होते आये हैं; परन्तु इस विषयमें मतभेदके लिए काफी गुञ्जायश है। हो सकता है कि सुधार चाहनेवाले नेता जैसे कानूनके पक्षपाती हों, अन्य पक्षके लोग वैसे ही उसके विरोधी हों और सुधारकी आवश्यकता अनुभव करते हुए भी इस आधारपर विरोधी हों कि धर्म और समाज-सम्बन्धी बातोंमें कानूनका हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए, लोगोंको समझा-बुझाकर ही सुधारके मार्गपर चलनेके लिए तैयार करना चाहिए। यह दृष्टिकोण केवल भावुकता नहीं है और इसका भी मूल्य है; परन्तु प्रश्न परिस्थितिका है और उस जनसमुदायकी अवस्थाका है, जिसमें कोई सुधार करना होता है, जिसे वर्तमान अवस्थासे ऊंचा उठाना होता है। सामाजिक और धार्मिक विषयोंमें कानून बनानेके पक्षपाती यह अनुभव करते हैं कि जब तक किसी रूढ़ि या कुप्रथापर कानून बनाकर प्रहार नहीं किया जायगा, तब तक सुधारकी प्रगतिमें शीघ्रता नहीं होगी। इस विचारके विरोधी हमेशा ही यह दलील दिया करते हैं कि जनताको तैयार किये बिना जो सुधार कानूनके जोरसे किया जायगा, उसका परिणाम भयावह होगा और उसका व्यवहारिक अर्थ कुछ भी नहीं होगा।

इन दोनों दृष्टिकोणोंपर विचार करनेसे पहले यह जान लेना आवश्यक है कि 'धार्मिक' और 'सामाजिक' शब्दोंका प्रयोग विभिन्न अर्थोंमें किया जाता है। एक व्यक्तिकी दृष्टिमें कोई बात धार्मिक होती है और दूसरा उसे धार्मिक नहीं मानता। यही बात सामाजिक विषयोंके सम्बन्धमें भी है; परन्तु जो बात निश्चित है, वह यह है कि साधारणतः जिसे लोग धर्म कहते हैं, उसमें किसी न किसी रूपमें किसी ऐसी अदृश्य शक्तिमें लोगोंका विश्वास पाया जाता है, जो संसारका नियन्त्रण करती है और जिसका भेद नहीं मालूम हो सकता। इस अर्थमें धर्म केवल कुछ रीति-रिवाजों तक ही सीमित नहीं है, कुछ सिद्धान्तोंके आधारपर वह जीवनकी एक विशेष प्रणाली निर्माण करता है और इस जीवनका उन सिद्धान्तोंके साथ पूर्ण सामञ्जस्य होता है। जीवन सम्बन्धी इस विशेष प्रणालीका सम्बन्ध जहां तक इन सिद्धान्तोंसे है कि मनुष्यका कर्तव्य क्या तो अपने प्रति है और क्या अपने साथियों और पड़ोसियोंके प्रति, उनका प्रभाव कानून-सम्बन्धी कल्पनापर पड़ता है और पूरी तरह पड़ता है; क्योंकि आखिर तो कानून ही है, जो मनुष्योंके व्यवहारपर नियन्त्रण रखनेके लिए जिम्मेदार है। जीवन-सम्बन्धी सिद्धान्तोंसे शून्य, अस्पष्ट धर्मभावना या कोरी भावुकताका प्रभाव मनुष्यके सामाजिक व्यवहारपर नहीं पड़ता।

कानूनकी सीमा कहां तक है, कानूनको किन विषयोंमें कहां तक आगे बढ़ना चाहिए और कहांसे आगे नहीं—इस विषयमें मानव-समाजके विचारोंमें समय-समयपर हमेशा ही परिवर्तन होता रहा है; परन्तु लोग बहुधा उसकी सीमाओंको भूल जाते हैं। संसारके विभिन्न भागोंकी राजनीतिक परिस्थितियोंका परिणाम कुछ स्थानोंमें यह होता है कि कानून और धर्मका जो सम्बन्ध है, उसमें भी बड़ी शीघ्रतासे परिवर्तन होनेकी आवश्यकता अनुभव की जाने लगती है। पाश्चात्य देशोंमें इसी आवश्यकताके फलस्वरूप क्या हुआ है—कानून, धर्म और सदाचार, चर्च और सरकार और साधारण अदालतों एवं सांस्कृतिक विषयोंपर विचार करनेवाली अदालतोंमें अलगावकी भावना काफी अग्रसर हो गयी है; परन्तु पूर्वके देशोंका इतिहास पश्चिमसे कुछ भिन्न है। धर्म और कानूनके एक सीमा तक एक-दूसरेसे अलग रहनेकी जो आवश्यकता है और उसमें जो लाभ है, उसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता और न उसमें कोई सन्देह ही करता है। आजकल जिस तरह कानून बनते हैं और

जिस तरह कानूनको कार्यान्वित किया जाता है, उसकी दृष्टिसे भी इन दोनोंके अलग-अलग रहनेपर जोर दिया जाता है; किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि धर्मके साथ कानूनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है और दोनोंका एक-दूसरेसे कोई सम्पर्क नहीं होना चाहिए।

धर्मके साथ कानूनका निकट सम्बन्ध पहलेसे ही चला आया है। शुक्र-नीतिमें कहा गया है कि मन्त्रीको राजाके समक्ष ऐसे कानूनोंका प्रस्ताव करना चाहिए, जिनसे लोग इस लोकमें तो सुखी हों ही, परलोकमें भी सुखसे रहें। शुक्र-नीतिकी इस बातका समर्थन यूरोपके किसी राजनीतिज्ञके इस कथनसे भी होता है कि जो विज्ञानवादी राजनीतिज्ञ मनुष्योंकी धार्मिक प्रवृत्तिकी परवा न कर उनके पारस्परिक व्यवहारके लिए कानून बनाता है, उसके धार्मिक सुधार करनेमें विफल होनेकी सम्भावना है; क्योंकि वह मानव-स्वभावका खयाल छोड़कर कानून बनाता है। कानूनकी जितनी प्रणालियां संसारमें रही हैं, उनमें प्राचीन समयमें धर्मके साथ कानूनका गहरा सम्बन्ध रहा है। हीब्रो लोगोंमें भी धर्म और कानूनका यह सम्बन्ध बिलकुल ही स्पष्ट रूपमें देखा जा सकता था। संसारके लिए आज जिस रोमन और इंगलिश कानूनको आदर्श माना जाता है, उसका भी प्रारम्भिक अवस्थामें धर्मके साथ सम्बन्ध था और अंगरेजी कानूनकी विवाह, उत्तराधिकार आदि सम्बन्धी कुछ बातों-पर अभी तक धर्मका प्रभाव है। मुसलमानोंमें कुरानको कानूनका स्रोत माना जाता है। हिन्दुओंमें यही स्थान वेदों और स्मृतियोंका है। यह माना जाता है कि हिन्दू कानूनका आधार वेद और स्मृतियां हैं। यह आशा की जाती है कि वेदों और स्मृतियोंमें साधारणतः वह सब है, जिसे व्यवहार कहा जाता है। यह कहना ठीक नहीं है कि वेदों और स्मृतियोंमें जितने वचन हैं, उन सबका समान महत्त्व है। इस विषयमें जो भ्रम है, उसके कारण लोगोंमें यह मिथ्या धारणा पायी जाती है कि हिन्दू कानूनके 'व्यवहार' भागमें भी कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। मीमांसकोंने विधि, निषेध, अर्थवाद और अनुवाद आदिके रूपमें वेद-वचनोंके वर्गीकरणका प्रयत्न किया है। विधि और निषेध सम्बन्धी वचनोंके विषयमें यह माना जाता है कि उनमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता; परन्तु अन्य कोटिके वचनोंके सम्बन्धमें कट्टरपन्थी भी यह कहनेका साहस नहीं कर सकते, उनका महत्त्व भी विधि और निषेध वचनोंके समान ही है। शङ्करको उपनिषदों तकके कितने ही भागोंको अर्थवाद बतलाकर अलग कर देनेमें कुछ भी कठिनाई नहीं हुई। स्मृति-चन्द्रिकाकारने एक स्थानपर लिखा है कि स्मृतियोंमें व्यवहारके सम्बन्धमें जो कुछ कहा गया है, वह अर्थवादके रूपमें है।

राजाके ईश्वर-अंश-सम्भूत होनेका जो सिद्धान्त हिन्दुओंमें पाया जाता है, वह पाश्चात्य देशोंमें प्रचलित राजाके पवित्र अधिकारों सम्बन्धी मध्यकालीन सिद्धान्तसे भिन्न है। हिन्दुओंकी दृष्टिमें राजा उस अर्थमें कानूनसे परे नहीं है, जिसमें पवित्र अधिकारों सम्बन्धी सिद्धान्त उसे मानता है। हिन्दू-शास्त्र यह नहीं मानते कि राजा जैसे चाहे वैसे कानूनको बदल सकता है। राजासे केवल यही आशा की जाती है कि वह कानूनको कार्यान्वित करेगा, लोगोंको कानूनके अनुसार चलनेके लिए बाध्य करेगा। यही कारण है, जिससे परिवर्तित परिस्थितिके अनुसार आव-श्यकता अनुभव होनेपर भी पिछले समयमें हिन्दू-कानूनमें परिवर्तन करनेमें कठिनाई प्रतीत हुई है।

कानूनके वर्तमान उद्देश्य और सीमाके सम्बन्धमें भी आजके विचारोंमें पहलेसे अन्तर है। कानून, धर्म और सदा-चारको एक-दूसरेसे अलग रखनेका जो खयाल प्रचलित है, उसपर आधुनिकताकी छाप है, प्राचीन विचारों और जीवनकी नहीं। परन्तु एक अन्तर है, जिसे हमेशा ध्यानमें रखना चाहिए। अन्तर यह है कि अलगावका भाव स्वयं विचारमें नहीं है—कानून, धर्म और सदाचारके कार्या-न्वित होनेमें है। हिन्दू जिसे धर्म मानते हैं, उसमें उन सब कर्तव्योंका समावेश हो जाता है, जिनके लिए शास्त्रोंने आदेश किया है। मनुष्यका ईश्वर सम्बन्धी कर्तव्य क्या है, माता-पिता आदि गुरुजनों, पत्नी, पुत्र, भाई-बहन आदि स्वजनों, मित्रों और साथियों एवं राजाके प्रति क्या कर्तव्य है, ये सब बातें भी उसमें शामिल हैं। प्राचीन स्मृतियोंमें इन सब बातोंपर एक ही साथ विचार किया गया था; परन्तु बादके स्मृतिकारोंने आचार, व्यवहार और प्राय-श्चित्त व्यवस्थामें अन्तर किया।

प्राचीन कालमें किस तरहकी न्यायप्रणाली प्रचलित

थी, इस विषयमें बहुत कम उल्लेख मिलता है। इसमें तो सन्देह ही नहीं है कि मनु और कौटिल्यने न्यायालयों या कानूनका विस्तृत वर्णन किया है; परन्तु कई तरहके जुर्मोंमें गिरफ्तारियों और अदालती डिग्रियोंके लिए जमानतोंके सिवाय अन्य बातोंके विषयमें ऐसा विवरण नहीं मिलता, जिससे यह मालूम होता कि उन दिनोंमें अदालतोंके फैसलोंको कार्यान्वित किस तरह किया जाता था। न्याय-प्रणालीके सम्बन्धमें यह मालूम होता है कि गवाहोंके साथ जिरह करनेकी प्रणाली उस कालमें भी प्रचलित थी; परन्तु यह निश्चित करना सहज नहीं है कि उस कालमें आजकलकी तरह गवाहीको महत्त्व दिया जाता था, या गवाहीका महत्त्व दोनों पक्षोंके गवाहोंकी तादादसे समझा जाता था या किसी मामलेके विषयमें स्वयं अदालतको जो जानकारी होती थी, उसपर अदालत निर्भर रहती थी। परन्तु एक बात निश्चित है—न्यायाधीश, वादी-प्रतिवादी और गवाह, सभी झूठ बोलनेसे भय खाते थे और इस बातको मानते थे कि शपथका कुछ मूल्य है। वे यह भी मानते थे कि मनुष्यके प्रत्येक कर्मके साथ दृष्ट और अदृष्ट फलोंका सम्बन्ध है और इस विश्वासका प्रभाव उनके साधारण व्यवहारपर भी अच्छा पड़ता था। सांसारिक दण्ड-व्यवस्था वैसी प्रभावकर हो सकती है, इसमें तो सन्देह ही है।

अदालतोंके स्थानपर प्राचीन कालमें पञ्चायतोंका उल्लेख पाया जाता है। ये पञ्चायतें किसी न किसी रूपमें आज भी विद्यमान् हैं और काम करती हैं। पूर्वकालमें यही पञ्चायतें कानूनके अनुसार न्याय करती थीं। यह नहीं कहा जा सकता कि पञ्चायत-प्रणालीका आरम्भ किस तरह हुआ और कहां हुआ; परन्तु धर्म-शास्त्रोंमें परिषद्‌का उल्लेख मिलता है। इस परिषद्‌में योग्य और सत्यनिष्ठ व्यक्ति होते थे और समाजपर उसका बड़ा प्रभाव होता था—फिर झगड़ा चाहे लेन-देनका हो या जमीन-जायदादका या कोई प्रायश्चित्त-व्यवस्था हो या कोई अन्य कार्य।

ऐसा मालूम होता है कि प्राचीन हिन्दू-कालमें जज और जूरीका अन्तर आजकल जैसा स्पष्ट नहीं था। कुछ ग्रन्थोंमें राजाके समक्ष अपील होने और राजा द्वारा कानूनके अनुसार न्याय किये जानेका उल्लेख पाया जाता है; परन्तु यह पता नहीं चलता कि यह सब एक न्यायप्रणालीके रूपमें था। आधुनिक अर्थमें वैज्ञानिक आधारपर न्याय-प्रणालीका विकास उस समय हुआ, जब किसी न किसी तरहका कोई साम्राज्य अस्तित्वमें आया।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि हिन्दू विचारके अनुसार राजा या किसी अन्य अधिकारीको अपनी इच्छासे कानून बदल देनेका सामर्थ्य नहीं था। विधि, निषेध, अर्थ-वाद और अनुवादके आधारपर ही वे व्याख्याताओंकी सहायतासे वैसा कर सकते थे। ऐसे अवसरोंपर व्याख्याताओंका काम यह होता था कि विभिन्न स्मृति-वचनोंमें सामञ्जस्य स्थापित करें; यह स्थिर करें कि किस वचनपर ज्यादा महत्त्व देना चाहिए और किसपर नहीं। अनुवादपर जोर देकर वे यह कहें कि धर्म-ग्रन्थोंमें जो कुछ लिखा गया है, उसे भी बदला जा सकता है, अथवा इस बातपर जोर दें कि कानूनका सम्बन्ध आखिर तो सांसारिक स्थितिसे है और जब देशकी स्थितिमें परिवर्तन होता रहता है, तब कानूनमें भी परिवर्तन होता ही रहना चाहिए। मिताक्षराकारने एक स्थानपर स्पष्ट कहा है कि किसी खास कार्यके सम्बन्धमें वेदोंने भले ही आदेश किया हो या जोर दिया हो; परन्तु लोकमतके प्रतिकूल कुछ भी नहीं किया जाना चाहिए। इस तरहकी व्याख्याओंके आधारपर ही वर्तमान हिन्दू कानूनमें वाञ्छनीय परिवर्तन करनेका प्रयत्न किया जा सकता है।

व्याख्याताओंके सम्बन्धमें बात यह है कि वे आधुनिक इतिहास-कालमें हुए हैं। मनुके समयमें समाजकी व्यवस्था कैसी थी, इस विषयमें बिलकुल सही-सही कुछ कहना कठिन है। बहुत कुछ तो अनुमानसे ही कहा जा सकता है; किन्तु कितने ही यूरोपियन लेखकोंका यह मत ठीक नहीं है कि मनुने जिस सामाजिक स्थितिका उल्लेख किया है, वह आदर्श है। कोई भी तटस्थ व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि मनुने १२ प्रकारके जिन पुत्रों, ८ प्रकारके जिन विवाहों, अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह-विधियों, इन विवाहोंसे उत्पन्न सन्तानके भेदों और अन्य कितनी ही बातोंका जो वर्णन किया है, वह काल्पनिक है, समाजकी उस कालकी स्थितिको बतलानेवाला नहीं है। अध्ययनसे यह पता चलता है कि मनुने जो कुछ लिखा है, उसमें समाजकी तत्कालीन अवस्थाको ही बतलाया गया है, जो बातें समाजमें

उस समय प्रचलित थीं, उन्हींका मनुने उल्लेख किया है; परन्तु कुछ बातोंको जो अधिक महत्त्व दिया हुआ प्रतीत होता है, उसका कारण तो यही हो सकता है कि स्मृति-कारकी दृष्टिमें उन बातोंमें बतलाये हुए मार्गपर चलना श्रेष्ठ हो। जहां तक हिन्दू-कानूनका सम्बन्ध है, परिवर्तनोंके विषयमें सबसे अधिक महत्त्वकी बात ध्यानमें रखने योग्य यह है कि उसमें जब-जब कोई परिवर्तन हुआ है, धर्मकी आवश्यकताको सामने रखकर ही हुआ है। उदाहरणके लिए विवाहका प्रश्न ही लीजिये। विवाहकी अमान्य प्रणालियोंके स्थानपर मान्य प्रणालियोंका प्रचलन करनेके लिए यह निश्चय कर दिया गया कि धर्म-कृत्योंमें वही पत्नी भाग ले सकेगी, जिसके साथ मान्य विवाह-प्रणाली द्वारा विवाह किया गया हो। इसी तरह बहु-विवाहकी प्रथाको रोकनेके लिए, इस ओरसे लोगोंकी मनोवृत्ति मोड़नेके लिए स्मृतिकारोंने यह व्यवस्था दी कि धर्म-कार्योंमें केवल प्रथम पत्नीको ही सम्मिलित होनेका अधिकार है, अन्य पत्नियोंको नहीं। ये सब व्यवस्थायें किसी समय बड़ी प्रभावकर साबित हुई हैं। इन सब बातोंकी दृष्टिसे अनभिज्ञता ही होगी, यदि कोई यह कहे कि पूर्वके धर्माधिकारियोंने अपना प्रभाव बढ़ानेके लिए संसारके समक्ष कानूनको उस रूपमें नहीं रखा, जिसमें उसे माना जाता था, बल्कि उन्होंने उसे ऐसे रूपमें रखा, जिसके अनुसार वे लोगोंको चलाना चाहते थे। आपस्तम्ब सूत्रोंके आरम्भमें ही समयाचारिकका उल्लेख हुआ है, जिसका अभिप्राय उन बातोंसे है, जिन्हें लोकाचारके आधारपर स्थिर किया गया है। इससे प्रकट होता है कि सूत्रोंपर किन बातोंका प्रभाव पड़ा है। देशके विभिन्न भागोंके व्याख्याताओंकी व्याख्यामें जो अन्तर पाया जाता है, उसका कारण यही है कि उन्होंने अपने प्रदेशकी अवस्थाको दृष्टिमें रखकर व्याख्या की है और इस दृष्टिसे उन्होंने अपने समयमें समाजकी बड़ी सेवा की है। इस सेवाका महत्त्व हमें तब मालूम होता है, जब हम यह सोचते हैं कि दसवीं शताब्दीसे लगाकर १७ वीं शताब्दी तक देशकी अवस्था कैसी थी। विजयनगरका हिन्दू साम्राज्य बहुत ही उन्नत अवस्थामें था, फिर भी वहां न्यायप्रणाली आजकलकी तरह विकसित नहीं थी। उत्तर-भारतमें मुसलमानोंका शासन था, जो हिन्दू-कानूनको कोई आदर नहीं देना चाहते थे। इस अवस्थामें हिन्दू कानूनको जीवित रखनेका भार केवल पञ्चायतोंपर था। व्याख्याताओंने इस स्थितिमें हिन्दू-कानूनको समयकी गतिके साथ रखनेकी कोशिश की, जैसे-जैसे समय बदलता गया, वैसे ही वैसे उन्होंने भी व्याख्याओं द्वारा हिन्दू-कानूनमें आवश्यक सुधार किये और साथ ही प्रचलित कानूनसे हिन्दू कानूनको अलग रखनेका प्रयत्न भी किया। उस विपरीत परिस्थितिमें यही होना सम्भव था। अस्तु।

इस सम्पूर्ण विवेचनका निष्कर्ष यह है कि कानूनके लिए धर्म और समाजका क्षेत्र ऐसा नहीं है, जिसमें उसका प्रवेश निषिद्ध हो। हम देखते हैं कि हमेशा ही देशकी परिवर्तित अवस्थाके अनुसार धर्म और समाजकी व्यवस्थाओंमें जब-जब परिवर्तन करनेकी आवश्यकता हुई है, इन व्यवस्थाओंके आधारभूत स्मृति-वचनोंकी व्याख्या समयकी प्रगतिको दृष्टिमें रखकर की गयी है और आज भी यही किया जा सकता है। समयकी प्रगतिने आज हमारे सामने कितने ही सामाजिक प्रश्न पैदा कर दिये हैं। एक प्रश्न साम्पत्तिक अधिकारोंके सम्बन्धमें है। इस सम्बन्धमें हिन्दू-कानून आज जिस रूपमें है, उससे समयका तकाजा पूरा नहीं होता। पतिकी सम्पत्तिपर स्त्रीको अधिकार और पिताकी सम्पत्तिमें लड़कीके हिस्सेका प्रश्न इसीके अन्तर्गत है। विवाह, दत्तक और सम्बन्ध-विच्छेद सम्बन्धी प्रश्न भी उसी तरहके हैं। समयकी गतिको पहचाननेवाले सुधारक जब इन प्रश्नोंपर वर्तमान दृष्टिकोणसे विचार करते हैं, तब देशका एक वर्ग धर्ममें हस्तक्षेप होनेका हल्ला करने लगता है; परन्तु यह हल्ला है निःसार, इसमें सन्देह नहीं है। समाजकी व्यवस्थाओंमें, उन व्यवस्थाओंके आधारभूत धर्म-वचनोंका जब परिस्थितिके साथ सामञ्जस्य न रहे, तब यह कर्तव्य देशके विद्वानोंका हो जाता है कि वे सामञ्जस्य स्थापित करें और इसके लिए यदि जरूरत हो, तो कानूनकी भी सहायता लें। धर्म और कानून वस्तुतः दो चीजें नहीं हैं। प्राचीनतम युगमें ये दोनों बातें एक ही रूपमें थीं, धर्मने कानूनको जन्म दिया था और अब कानूनको धर्मसे उऋण होना चाहिए, जहां समयकी प्रगतिके साथ धर्म और समाजका सामञ्जस्य नहीं रह गया है, वहां उसे स्थापित करनेके लिए कानूनको आगे आना चाहिए।

महेन्द्र

श्री एस० डी० लवरा, बी० ए०

"तो क्या आप स्थानान्तरित न होंगे ?"

"नहीं।"

"मैं जाकर यही कह दूं ?"

"हां, तुम अपनी स्वामिनीसे जाकर कह सकते हो कि नावरिके लिए वे अन्य स्थानका अन्वेषण कर लें।"

श्रावणकी अनुरागमयी सन्ध्या! ऊपर आकाशको आवृत किये हुए सुनील मेघ, नीचे आगत यौवना हरिता धरणी तथा सिंहलके लहराते हुए विशाल सागरके तटपर सिंहल-राजकुमारी नावरिके लिए उपस्थित! सागर-तटपर उसने पहुंचकर देखा कि उसके नित्यके स्थानपर कुछ विदेशी पोतादि लिये हुए आ ठहरे हैं। 'क्यों?' दुर्द्धर्ष राजकुमारीकी भृकुटी वक्र हो गयी—'अभी जाकर उन्हें स्थानान्तरित होनेकी आज्ञा दो।' प्रणधि गया और कुछ अवकाशके पश्चात् लौट आकर निवेदन किया—'वे लोग नहीं हटना चाहते, राजकुमारीजी!'

'नहीं हटना चाहते?' राजकुमारीके नेत्रोंसे अग्नि-वर्षा होने लगी—'देखती हूं मैं, उद्धत यात्री।'

दूसरे ही क्षण राजकुमारी यात्रियोंके सम्मुख उपस्थित थी। अनुचरको आज्ञा हुई—'सब सामग्री उठाकर प्रवाहित कर दो जलमें।' इसी समय उसने देखा, सम्मुख खड़ा है कषाय वस्त्रोंमें एक बौद्ध भिक्षु। वह क्षण-भरको ठहर गयी—'भिक्षु, क्या आप स्थानान्तरित न होंगे?'

"नहीं।"

"यही अन्तिम निश्चय है?"

"निश्चय।"

पुनः आज्ञा हुई—'प्रवाहित कर दो जलमें सब सामग्री।' सेवक आगे बढ़ा। इसी समय जलद-गम्भीर शब्द हुआ—'ठहरो।'

सेवक निस्तब्ध खड़ा रह गया।

'मैं कहती हूं, हट जाओ भिक्षु।' और साथ ही सेवकको पुनः आज्ञा हुई। भिक्षुने दृढ़ स्वरमें कहा—'नहीं।' और सेवक उसी प्रकार खड़ा रह गया। राजकुमारीके नेत्रोंसे अग्नि-वर्षा होने लगी—'मेरी अवहेलना? विजय! क्या तुम राज्यका शिष्टाचार भूल गये हो? मैं सिंहलकी राजकुमारी तुम्हें आज्ञा देती हूं—शीघ्रता करो।'

भिक्षुने एक बार नेत्र उठाकर उसकी ओर देखा—'देवानाम् प्रियदर्शिन धर्मपद सम्राट् अशोकका पुत्र तुमको आज्ञा देता है—विजय! तुम हट जाओ।'

'कुमार महेन्द्र!' अनुचर और राजकुमारीने साथ ही अस्फुट स्वरसे कहा।

महेन्द्र नेत्र अवनत किये खड़े थे। राजकुमारीका मुख लज्जासे आरक्त हो गया—'अपने प्राघूर्णिक, सिंहलराज और सिंहल-निवासियोंके प्राघूर्णिकसे क्षमा-याचना करती हूं।' उसने उनके चरणोंमें झुककर कहा।

'कल्याण हो—अमिताभ तुम्हारे हृदयको आलोकित करें।'

फिर दूसरे दिन विशाल जन-समूहके सम्मुख पुनीत बोधि-वृक्षको स्थापित करते हुए कुमार महेन्द्रने अनुभव किया कि उस विशाल जन-समूहके असंख्य नेत्रोंमें भी वे किन्हीं दो नेत्रोंको भुला नहीं पा रहे हैं। उन शत-शत चक्षुओंकी दृष्टि-रेखाओंके सघन जालका प्रभेदन करके आती हुई एक दृष्टि मानो सीधी आकर उनके हृदयमें चुभ रही है।

वृक्ष स्थापित हुआ। सिंहल-कुमारी सखियों सहित स्वर्ण-कलशमें जल लेकर आयी। कुमारने वृक्षका सिञ्चन किया—'आज मैं कर रहा हूं; किन्तु कलसे इसकी शुश्रूषा आप ही को करनी होगी कुमारीजी!' राजकुमारी लजा गयी और फणिज्झक वृक्ष नवप्राण-से पाकर लहरा उठा।

सिंहलके महाराज और महिषीके नेत्र जलसे परिप्लावित हो गये और शत-शत व्यक्तियोंके साथ उनके शिर श्रद्धासे अवनत हो गये।

'युवराज!' महाराजने थोड़ी देर बाद कहा—'दरिद्रकी कुटियापर चलकर मुझे कृतार्थ करें।'

'भिक्षुको युवराज कहकर युवराज कुणालका अपमान न करें, महाराज!' फिर दूसरे ही क्षण उन्होंने कहा—'मैं कुटीपर

जानेकी आज्ञा चाहता हूं, बहन सङ्घमित्रा आपके साथ जायेंगी।' कहकर वे द्रुतगतिसे कुटीकी ओर चल दिये।

फिर एक दिन समुद्रके तटपर—

कुमार महेन्द्र चुपचाप खड़े थे। सम्मुख भारत और सिंहलके अञ्चलकी पवित्र ग्रन्थि—अपार जलराशि लहरा रही थी। हठीली देवबाला—सन्ध्या आकाशपर निशाका चित्राङ्कन कर रही थी। महेन्द्रने देखा, तूलिकाके एक ही स्पर्शसे चित्रित अन्धकारको प्रभेदित करता विधु-सा मुख, शरीरको आलवालमें घेरे हुए उज्ज्वल रत्न-जटित श्यामल परिधान, पैरोंमें 'मरमर' के नूपुर और हाथोंमें कुमुदोंके कङ्कण!

सहसा वे वृक्ष-पल्लवकी एक नौका बनाते और फिर उसे उदधिकी लहरोंमें छोड़ देते। एक ही क्षणमें वे देखते कि एक ऊर्मिके साथ वह अत्यन्त ऊपर उठ जाती और फिर नीचे गिर जाती। निमिष-भरमें किसी दूसरी ऊर्मिके साथ तटसे दूर—अत्यन्त दूर जा पहुंचती और फिर दूसरे ही क्षण किसी अन्यके साथ उनकी वह पल्लव-निर्मित नौका पुनः कूलपर लौटकर उनके चरणोंके निकट शिथिल-सी आ पड़ती। महेन्द्र उसे देखते, मुसकराते और फिर उनके धवल अपाङ्गके एक कोणमें दो उज्ज्वल मुक्ता चमक उठते।

सहसा कोई कौतुकपूर्ण हंसीसे उन्हें चौंका देता।

'तुम सिंहल-कुमारी?' महेन्द्रने घूमकर कहा।

'कुमार महेन्द्र बाल्यक्रीड़ामें व्यस्त थे क्या?'

'तुम्हींने तो कहा था न, सिंहल-कुमारी, सिंहलकी वनितायें विक्षुब्ध सागरके तटपर अपने नन्हें-नन्हें प्रदीप प्रज्ज्वलित करती हैं—उनके प्रियतमका पग न जाने किस तममय पथपर होगा, यह विचारकर; उन्हें प्रकाशकी एक रेखा देनेके उद्देश्यसे!'

सिंहल-कुमारी मौन।

'इस सागरके इस ओर सिंहल है, उस ओर भगवान् तथागतका भारत है। अपनी नन्हीं नैयापर अपना नाम लिखकर मैं उसे उस पार भेज रहा था। पता नहीं, लहरोंकी किस क्रीड़ाका केन्द्र बनकर, वह उस पार पहुंचकर किस अरुणिम सन्ध्यामें भाई कुणालको मिल जाती। वह उसे उठाकर देखता और जान लेता कि वह मेरी नाव है। किन्तु तुमने तो स्वयं ही देख लिया, राजकुमारी! किस प्रकार मेरी आकांक्षा लहरोंमें उठकर, गिरकर, मध्यसागरमें पहुंचकर और कूलकी ओर लौटकर जहांसे चली थी, वहीं आकर सो गयी है!'

उनके नेत्र झर-झर झर रहे हैं।

एक क्षण चुप रहकर राजकुमारीने कहा—'दर्शनके उस आदि केन्द्र भारतके दर्शनकी मुझे बड़ी इच्छा है, जिस भूमिपर भगवान् तथागतने जन्म लिया था, जिसके कण-कणमें दर्शनके गहन तत्त्वोंकी मीमांसा अन्तर्निहित है, उसे एक बार सिरसे लगानेकी बड़ी साध है......'

अचानक वह देखती कि महेन्द्र एक धीमा चीत्कार करके भूमिपर गिर पड़े। एक बाण उनका भाल बिद्ध कर गया था। उसने दौड़कर उनके सिरको अङ्कमें ले लिया।

दूसरे ही क्षण पीछेसे अट्टहासका भयानक शब्द हुआ—'आदि कालसे शिव और शक्तिके उपासक सिंहलमें कायरोंके धर्मका उपदेश......?'

'तू श्रमण?' राजकुमारीने क्रोधसे कहा—'क्या यही तेरा वीरोंका धर्म है कि इस एकान्तमें अपने इतने अधिक साथी लेकर आया है?'

अचानक भयङ्कर कोलाहल मच गया और थोड़ी ही देरमें श्रमण अपने साथियों सहित बन्दी था।

कुटीमें मूर्च्छित महेन्द्रने दृगोन्मेष किया—

'कौन, सङ्घमित्रा?'

'वह तो नहीं है।'

'तुम राजकुमारी?'

'जी।' उसने लज्जासे सिर झुका लिया।

'कितनी सुन्दर थी वह बेला, जब मैं मृत्युके निकट पहुंच गया था।'

'ऐसा क्यों कहते हैं कुमार?' उसने उनके मुखपर अपना हाथ रख दिया—'आपको मेरी शपथ है।'

महेन्द्रने कुछ मुसकराकर कहा—'तब मैं मौन ही रहूंगा, तुम्हारी—अपनी प्राणदात्रीकी शपथकी अवहेलना नहीं कर सकता।'

'मुझे लज्जित न करें, कुमार!'

'नहीं राजकुमारी, कृतज्ञता-प्रकाश करना लज्जित करना कदापि नहीं। सिन्धु-तीरकी वह अनुरागमयी मूर्ति—वह अञ्चलकी शीतल बयार—क्या विस्मरण की जा सकती है? विचार करता हूं, राजकुमारी, यदि इसी प्रकार दो

आंखोंमें स्नेहका प्रकाश देखते हुए अन्तिम निश्वास ले सकता, तो......'

'फिर वही कहने लगे कुमार ?'

'भूल भी तो नहीं पाता......अच्छा, बहन सङ्घमित्रा कहां हैं ?'

'वे राजसभामें गयी हैं, आज श्रमणका निर्णय है न !'

'तब मेरा वहां पहुंचना आवश्यक है।' और वे आवेशमें उठकर चल दिये। राजकुमारी चकित-सी देखती रह गयी।

फिर राजसभामें—

बन्दी श्रमण अपने अनुचरों सहित खड़ा था। सिंहल-राजने अन्तमें निर्णय सुनाया—'राज्यके अतिथि, सम्राट् अशोकके पुत्र, भिक्षु महेन्द्रपर आक्रमण करनेके अपराधमें श्रमणको प्राणदण्ड......'

"ठहरिये महाराज !"—सहसा महेन्द्रने प्रवेश करके कहा।

सङ्घमित्राने दौड़कर महेन्द्रको पकड़ लिया—'भैया—भैया।'

'नहीं, मुझे छोड़ दो बहन !...वह मेरा अपराधी है, महाराज, उसकी दण्ड-व्यवस्था मैं करूंगा।'

महाराजने सिंहासन रिक्त कर दिया।

'श्रमणको बन्धन-मुक्त कर दो और उसके अस्त्र उसे दे दो—' सिंहासनारूढ़ होकर कुमार महेन्द्रने कहा। राजसभा चकित हो गयी।

सङ्घमित्रा पुनः चिल्ला उठी—'भैया-भैया, तुम अभी बहुत निर्बल हो।'

'ठहरो, मौन रहो सङ्घमित्रा। मैं इस समय न्यायासन-पर हूं और वह शिष्टाचार चाहता है।'

सङ्घमित्रा सजल नेत्रोंसे पृथ्वीकी ओर देखने लगी।

'श्रमण !' कुमारने पुनः कहा—'उस दिन रात्रिके अन्ध-कारमें जो कुछ नहीं कर सके, आज उसे दिनके प्रकाशमें करो—देखो, विचलित मत होना। लक्ष्य-साधन करो।' कहकर कुमार सिंहासनसे उतर आये।

श्रमणने धनुष-बाण फेंक दिया—'मुझे क्षमा कीजिये, देव !' वह उनके चरणोंमें गिर पड़ा। समस्त राजसभा सम-वेत स्वरसे कह उठी—

अमिताभकी जय,
सम्राट् अशोककी जय,
कुमार महेन्द्रकी जय !

एक दिन—सन्ध्याके प्रथम चरणके साथ ही महेन्द्र हाथमें भिक्षा-पात्र लेकर निकल पड़ते और एक द्वारके सम्मुख पहुंचते ही देखते कि कोई अपने चञ्चल पगोंके नूपुर शिञ्जित करती हुई अत्यन्त सलज्ज भावसे भिक्षा देती और प्रश्न करती—'आज कुमार किस ओर गये हैं ?'

महेन्द्रने चौंककर सिर उठाया। चन्द्रके धूमिल प्रकाशमें उन्होंने देखा कि सिंहल-कुमारी उनके सम्मुख खड़ी है। उस शीतल समयमें भी उन्हें ज्ञात हुआ कि उनका सम्पूर्ण शरीर जल उठा है। और सिंहल-कुमारीका तो यह नित्यका अभ्यास ही हो गया था कि वह सन्ध्याके बहुत पूर्व ही से अपनी उत्सुकतापूर्ण आंखोंको पथमें बिछाकर द्वारपर बैठी रहती, भिक्षा देती और फिर महेन्द्रकी दिशाके सम्बन्धमें पूछती, 'एक-न-एक दिन वे मेरे द्वारपर आयेंगे अवश्य,' इस आशासे ! आज अपने उसी अभ्यासके कारण वह यह भूलकर बैठी थी—जब उसका चिर-इच्छित याचक स्वयं उसके द्वारपर आ गया था।

और महेन्द्र इतने दिनोंसे जिस निर्बलताको अपने हृदयमें छिपाये चले आ रहे थे, वह इस समय सहसा अट्टहास कर उठी। दिनमें जब वे उपदेश करते रहते, तब शत-शत चक्षुओं-के लक्ष्य बने रहनेपर भी उन्हें प्रतीत होता कि वे किन्हीं दो चक्षुओंका एकमात्र केन्द्र बनकर आत्मविस्मृत-से हुए जा रहे हैं। उस दृष्टिसे मानो वे आजसे नहीं, युग-युगसे परिचित हैं और वह सर्वप्रथम सागर-तटपर, फिर बोधिवृक्षकी स्था-पनाके समय उनके हृदयमें प्रवेश करके वहांपर अपना चिर-निवास-स्थान बना गयी है। अत्यन्त चेष्टा करके भी वे उसको वहांसे निर्वासित नहीं कर पाते। अवश्य ही उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि वे राजद्वार नहीं जायेंगे; किन्तु आज न जाने किस अचेतनताने उन्हें वहीं लाकर खड़ा कर दिया था, जहांपर कभी न जानेकी उन्होंने प्रतिज्ञा की थी। जितना ही वे दूर रहना चाहते थे, उतना ही निकट आता जाता था, उनका हृदय, उस राजकुमारीके—विद्रोह करके आत्मा-के विरुद्ध ! बुद्धिके विरुद्ध !!

एक क्षणके पश्चात् ही भिक्षापात्र 'झन्न' से भूमिपर गिर पड़ा।

'कुमार !' सिंहल-कुमारीने दौड़कर उन्हें सहारा दिया।

'सिंहल-कुमारी !'

उस समय महेन्द्रको अपने हृदयका स्पन्दन तक स्पष्ट सुनाई दे रहा था।

'कितना दाह है यहां—इस हृदयमें!' राजकुमारी आज विश्वके सम्पूर्ण नियम-उपनियमोंको भूल गयी है।

'सिंहल-कुमारी! मुझको उद्‌भ्रान्त मत करो। मेरे इस विरक्त साधनामय हृदयमें प्रेम कब और कहांसे आ गया, वह तो ज्ञात नहीं हुआ; किन्तु एक दिन मैंने अचानक, अपनी सम्पूर्ण सजगताके साथ देखा कि वहांपर उसका आधिपत्य स्थापित हो गया है—भिक्षु महेन्द्रके विरागी हृदयमें।.........नहीं, कुमारी नहीं, अब अपनेपर अधिक विश्वास करना, अपनी साधनाकी अधिक परीक्षा लेना भयङ्कर हो सकता है। मैं कल ही भारत लौट जाऊंगा।' थोड़ी देर चुप रहकर महेन्द्रने फिर कहा—'तुम्हारी वेदनाका मैं अनुभव कर रहा हूं, राजकुमारी! किन्तु प्रेम—वास्तविक प्रेम वही है, जो अन्तर ही में रहता है और अन्तर ही में फलता-फूलता है। वह सामीप्य चाहता है; किन्तु आत्मिक, मानसिक, शारीरिक नहीं। शारीरिक पार्थक्य अथवा सामीप्य दोनों ही उसके लिए एक-से हैं, इसीलिए दुःखसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं, वियोगका वहां कोई स्थान नहीं, वह चिरसुखमय है, अनन्त आनन्दप्रद!... कल निश्चय ही मुझे जाना होगा।'

सहसा राजकुमारीका अश्रु-प्रवाह रुक गया—'तो तुम जाओगे?'

'हां।'

'तब जाओ, मेरे निर्वाण-पथके पथिक! तुम्हारे मार्गमें मैं प्रत्यूह बनकर नहीं उपस्थित होऊंगी। मैं प्रहृष्टमना होकर तुम्हें विदा देती हूं......तुम्हारा वियोग ही मुझे साधनाका पथ दिखला देगा। मैंने तुम्हें बाहुपाशमें बद्ध करके रखना चाहा था; किन्तु वहांसे तो तुम भाग चले, अब नयनोंमें बन्द करके रखूंगी, देखूं, तुम वहांसे कैसे भागते हो!'

महेन्द्रके नेत्र जलपूर्ण हो गये।

'आप रो रहे हैं कुमार? जो प्रेम आप मुझे देते, वह अब विश्वके समस्त आर्तहृदयोंपर निछावर कर दीजियेगा। मैं नित्य सागरके तटपर बैठकर दूर, सुदूर—जहां क्षितिजपर मेघ और सागर-जल-राशि परस्पर आलिङ्गन करने लगते हैं—उसके भी उस पार बसे हुए दार्शनिक भारतके दर्शन किया करूंगी। एक दिन सन्ध्याके समय सिंहलके तटपर अनेक पोत आकर खड़े हो जायेंगे। मैं देखूंगी कि हिमालयसे लेकर कुमारिका तक फैले हुए सुविशाल मौर्य-साम्राज्यमें अपनी-अपनी वस्तुयें विक्रय करके, सिंहलके व्यापारी मुक्ताओंकी मञ्जूषा लिये लौट आये हैं—उनके वर्षोंसे अन्धकाराच्छादित गृह आलोकित हो उठे हैं और उनकी गृहिणियां आरति-थाल लेकर सागर-तटपर आयी हैं...देखूंगी कि मेरा पथिक अब भी नहीं लौटा है। फिर, मेरी प्रतीक्षा पुनः आरम्भ हो जायेगी...एक वर्ष, दो वर्ष, सम्पूर्ण जीवन-भर!'

राजकुमारी अधिक न कह सकी, उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया।

कुमार महेन्द्र धीरेसे कुटीकी ओर चल दिये।

दूसरे दिन सिंहलका समुद्रतट असंख्य नर-नारियोंसे परिपूर्ण हो गया। कुमार महेन्द्रको भेजने महाराजके पोतको लेकर सिंहलके महानाविक स्वयं भारत जायेंगे। प्रस्थानका समय आ गया। उसी समय मङ्गल-वाद्य बजने लगे। सिंहलके महाराजने अवरुद्ध कण्ठसे निवेदन किया—'आदिकालमें एक बार भारतने सिंहलपर सामरिक विजय प्राप्त की थी और अब उसने उसपर आध्यात्मिक विजय प्राप्त की है। सम्राट् अशोकसे कहियेगा कि उन्होंने मुझपर......।' वे अधिक न कह सके और बालकोंकी भांति रो पड़े। महानाविकने आकर निवेदन किया—'पोत तैयार है।' शत-शत कण्ठोंसे जयध्वनि हुई। कुमारने एक बार उत्सुकतापूर्ण दृष्टिसे विशाल जन-समूहकी ओर देखा। किन्तु उनकी दृष्टि निराश होकर क्षण-भर ही में लौट आयी। वे पोतकी ओर चल दिये। समीप पहुंचकर उन्होंने देखा कि राजकुमारी पोतको पकड़े हुए चुपचाप खड़ी है।

'मैं जा रहा हूं, राजकुमारी!' उन्होंने धीरेसे कहा।

छिपाकर अपने अश्रु पोंछते हुए राजकुमारीने मन्द स्मितके साथ महेन्द्रको प्रथम बार भिक्षु कहकर सम्बोधित करते हुए कहा—'भिक्षु, जाते समय हृदय लिये जा रहे हो; किन्तु दे कुछ भी न सके!'

महेन्द्रने शून्य दृष्टिसे अन्तरिक्षकी ओर देखते हुए कहा—'दे सकें, भिक्षुओंके पास ऐसा होता ही क्या है, राजकुमारी?' और फिर पोतपर आरूढ़ हो गये।

———

इतिहासपर खाद्यपदार्थोंका प्रभाव

मानव-जीवनपर रसोईघरका काफी प्रभाव पड़ता है। रासायनिक खाद्यके कारण ही फ्रान्सकी राज्य-क्रान्ति हुई थी और भविष्यमें इसी एक कारणसे जर्मनीमें भी राष्ट्र-विप्लव हो सकता है। प्याज खानेके कारण नेपोलियनको एक बड़े युद्धमें पराजित होना पड़ा था। ब्रिटेनके इस भूमण्डल-व्यापी साम्राज्य-विस्तारका मूल कारण शलगम है। मुख्यतः खाद्यमें परिवर्तन होनेके कारण ही बन्दरका कुरूप मनुष्यके सुरूपमें परिणत हो गया। मोटर ड्राइवर अगर अधिक परिमाणमें सलगम, हरे साग और तरकारियां खायें, तो बहुत कम दुर्घटनायें हों—आधुनिक खाद्य-विशेषज्ञोंका यही मत है।

शायद किसीको इस बातका विश्वास न हो, पर यह सच है कि सृष्टिके आरम्भमें जिस दिन हव्वाको निषिद्ध फल खानेके कारण स्वर्गसे निकाला गया, उसी आदिम युगसे मानव जातिके इतिहासमें खाद्य अनेक विचित्र घटनाओंके लिए जिम्मेवार है।

प्याजके साथ भेड़का मांस खानेके कारण नेपोलियन-को लिपजिगके युद्धमें हारना पड़ा था। प्याज खानेसे उनकी विचार-शक्ति नष्ट हो गयी। मांसके संरक्षणके लिए मसाले-की खोजमें बाहर निकलनेपर कोलम्बसने अमेरिकाका पता लगाया।

१९०९ में रूस-जापान-युद्धमें जापानकी विजय मुख्यतः दूध और ताजी साग-सब्जीके कारण हुई। उस युद्धके पहले जापानी सेनाके एक चौथाई सैनिक बेरीबेरी रोगसे पीड़ित रहते थे। इसका कारण यह था कि वे मशीनका छंटा चावल खाते थे।

स्वीडेनसे गाजर मंगाकर इंगलैण्डमें बैलों और भेड़ोंको खिलाया जाता था। इसलिए इंगलैण्डवालोंको कभी खाद्य-का अभाव नहीं रहा। और इसीलिए आज अंगरेज पृथ्वीके एक चौथाई भागपर शासन कर रहे हैं।

मिश्रकी ममियोंके दांतोंकी परीक्षा कर वैज्ञानिकोंने यह प्रमाणित किया है कि ईसा मसीहके चार हजार वर्ष पहले ही मिश्रका अधःपतन शुरू हो गया था। और उसका मूल कारण था विटामिन-हीन खाद्य खाना।

क्लियो पेट्राके लिए सुन्दर भोजन तैयार करनेके लिए मार्क एण्टनीने उनके रसोइयेको पुरस्कार-स्वरूप एक शहर दिया था।

रोम साम्राज्यके ध्वंसका कारण रोमन राजाओंका पेटू होना था। कहा जाता है कि गयूस जुलियस वेरास मेक्सिमस हर रोज आधा मन मांस खाते थे और छः गैलन शराब पीते थे। इस तरह गुरु भोजन करनेके फलस्वरूप रोमन राजाओं-की तोंद निकल आयी और उनकी बुद्धि भी कुछ कम हो गयी। डिडियस जब सम्राट हुए, तब वह खतरेकी आशङ्कासे कानून बनाकर कम भोजनकी चेष्टा करने लगे। पर राजाके प्रधान दरबारी अपना भोजन कम करनेको तैयार नहीं हुए। फलस्वरूप छः महीनेके अन्दर ही डिडियसको किसीने गुप्त रूपसे मार डाला। इसी प्रकार अति भोजन करनेके कारण ही रोमन क्षुधार्त असभ्य जर्मनोंके एक दल द्वारा पराजित हुए।

आज जर्मनीकी खाद्य-सामग्रीकी खोजने इतिहासमें नये-नये अध्यायोंकी सृष्टि की है। बहुतोंका मत है कि यूक्रेनके गेहूंके खेतोंके लिए ही जर्मनीने जेकोस्लोवाकियाको जीता। डेञ्जिग और पोलैण्डपर भी इसीलिए अधिकार जमाया। जापान चीनके साथ वहांके धानके खेतोंको अपने काबूमें करनेके लिए युद्ध कर रहा है।

जर्मनीमें रासायनिक खाद्य तैयार करनेकी बराबर परीक्षा की जा रही है। वहांके वैज्ञानिकोंने लकड़ीके बुरादेसे रोटी, चीनी, यहां तक कि चाकलेट तैयार करनेकी भी प्रणाली खोज निकाली है। १७८९ में फ्रान्सके भाग्यमें जो बदा था, वही आज जर्मनीमें भी होगा। फ्रान्सके राजाओंने फेंके हुए कूड़ेसे जिलेटिनकी तरह एक प्रकारका खाद्य तैयार कर गरीब किसानोंकी क्षुधा-तृप्ति करनेकी चेष्टा की। फल-स्वरूप उन क्षुधार्त्त किसानोंने फ्रान्सकी सरकारके विरुद्ध बगावत कर दी।

जर्मनीके लोग बहुत आलू खाते हैं, इसलिए १८४८ की जर्मन राज्य-क्रान्ति सफल नहीं हो सकी। यह मत वहांके एक प्रसिद्ध खाद्यविद् लुडविग एण्डियाज फरवाशका है।

खाद्य-परिवर्तनके फलस्वरूप हमारे मुखकी आकृति और गठनमें बहुत परिवर्तन हुआ है। प्रागैतिहासिक युगके मनुष्य कच्चा या अधपका मांस खाते थे, इसलिए उनके चेहरे बदसूरत होते थे। अब अच्छी तरह पके मांस तथा अन्य नरम चीजोंके खानेसे मनुष्यके मुखके गठनमें रूपान्तर हो गया। प्राचीन कालके जङ्गली मनुष्योंकी अपेक्षा आजके मनुष्यका चेहरा कहीं सुन्दर है। चबानेवाली मांस-पेशी दुर्बल हो गयी और दांत छोटे-छोटे तथा घने हो गये हैं। मुख अण्डाकार हो गया है और ठुड्डी सुन्दर हो गयी है। नरम खाद्य खानेसे सिरके अवयवोंपर कम जोर पड़ता है, इसलिए सिर गोल और कपाल ऊंचा हो गया है, और कोटरोंमें पड़ी आंखें कुछ ऊपर उठ आयी हैं। खाद्य-परिवर्तनके फलस्वरूप मनुष्यके चेहरेमें और भी परिवर्तन हो सकते हैं। उस समयके मनुष्य म्यूजियमोंमें हमारे चेहरोंके माडल देख-कर घृणासे नाक सिकोड़ेंगे। खाद्यके विषयमें मनुष्य क्रमशः अभिज्ञता प्राप्त कर रहा है और यह आशा की जाती है कि भविष्यके मनुष्य हम लोगोंकी तुलनामें मानसिक और शारीरिक शक्तिमें बहुत बड़े होंगे। प्रागैतिहासिक मनुष्योंके कङ्कालोंकी परीक्षा करके देखा गया है कि वे निकृष्ट भोजन करनेके कारण रिकेट और बात-रोगसे पीड़ित रहते थे। खाद्य-पदार्थोंके गुण-अवगुणका आविष्कार होनेसे अनेक असाध्य और कष्टसाध्य रोग आराम हो गये हैं। आयोडिन-युक्त खाद्यने गलगण्डको और नीबू एवं चूनेने स्कार्वि रोगका दमन किया है। दूधसे राजयक्ष्माके रोगियोंकी संख्या कम हो गयी है (भारतमें नहीं), रतौन्धी और क्षीणदृष्टिका कारण खाद्यपदार्थकी खराबी है।

अकालके समय भारत, बर्मा और स्वीडेनके किसान पेड़ोंकी छाल खाकर रहते हैं। आजकल भी अफ्रीकामें वे स्त्रियां, जिन्हें बच्चे हो गये हैं, राख खाती हैं। राखमें केल-शियम या चूनेके रहनेसे बच्चोंके दांत और हड्डीके गठनमें बहुत मदद पहुंचती है।

अफ्रीकाके असभ्य अधिवासी पहले अपने शत्रुका बधकर उसे आगमें पकाकर खाते थे। वर्तमान युगका मनुष्य भी बकरा, भेड़ा, मुर्गी आदिके सिवा और भी नाना प्रकारके जीव-जन्तुओंका भक्षण करता है।

राजनीतिज्ञोंकी परीक्षा

सभी देशोंमें, वहांकी व्यवस्थापिका सभाओंमें कुछ लोग अपने पैसेके बलसे अथवा अन्य उपायोंसे निर्वाचन आन्दोलन-में सफलता प्राप्त कर पहुंच जाते हैं, हालां कि उन्हें राजनीतिक विषयोंका बहुत कम ज्ञान रहता है। वे देशकी शासन-व्यवस्थामें कुछ मदद नहीं पहुंचाते, बल्कि अपने पदका दुरुपयोग कर अपना स्वार्थ-साधन करते हैं। ऐसे लोगोंके लिए 'ग्लासगो इवनिङ्ग टाइम्स' में एक लेखकने यह सुझाव रखा है कि जो लोग पार्लमेण्टका सदस्य होना चाहते हैं, उनकी वकीलों और डाक्टरोंकी तरह परीक्षा होनी चाहिए। उसमें उत्तीर्ण होनेपर वे सदस्य होनेके लिए उपयुक्त समझे जायं। उसने बतलाया है कि उस परीक्षाका निम्न आशयका प्रश्न-पत्र होना चाहिए:—

१—क्या आप राजनीतिमें रुपयेके लिए, देशके लिए प्रवेश कर रहे हैं?

२—१८८२ में ग्लेडस्टोनने क्या कहा था?

३—आप कामन्सको एक पार्टी समझते हैं अथवा दावतमें शामिल होनेके लिए आये हुए मेहमानोंकी मजलिस?

४—यदि पार्लमेण्टके सदस्योंको वेतन न मिले, तो क्या फिर भी आप राजनीतिमें दिलचस्पी लेंगे? इस विषयमें अपनी स्पष्ट राय लिखिये।

५—आप जो कुछ कहते हैं, क्या उसके अनुसार कार्य करते हैं?

६—सम्राट्, देश और निर्वाचन-क्षेत्रमेंसे किसको आप सबसे अधिक महत्त्व देते हैं?

चोरों और ठगोंसे बचनेके लिए

लाखों जन-संख्यावाले बड़े-बड़े नगरोंमें, जहां पुलिस काफी संख्यामें होती है, चोर, उठाईगीरे, गिरहकट, ठग और झांसेबाज भी बहुत ज्यादा तादादमें जमा हो जाते हैं। कलकत्तेमें इस तरहके लोगोंके हथकण्डोंसे जनताको सावधान करनेके लिए पिछले दिनों पुलिसके एक जिम्मेदार अधिकारीने कितने ही उपायोंका सङ्केत किया था। इसमें तो सन्देह ही नहीं है कि पुलिसका काम चोरों और गिरहकटोंसे लोगोंको बचाना और पता लगाकर उन्हें ठिकाने पहुंचाना है। पुलिस यह सब करती भी है; परन्तु इस तरहकी दुर्घटनाओंको रोकनेके लिए जितना कर्त्तव्य पुलिसका है, उससे कम जनताका नहीं है। क्षतिसे बचनेके लिए तो जनताको ही सतर्क रहना होगा।

न्यूयार्क (अमेरिका) में पुलिसने नागरिकोंको चोरों, गिरहकटों और ठगोंके हथकण्डोंसे बचनेके लिए कितनी ही बातोंका निषेध किया है। इनका उल्लेख कम मनोरञ्जक न होगा:—

घरसे बाहर जानेके समय खिड़कियोंपर पर्दा न डालो और न कोई ऐसा काम करो, जिससे यह मालूम हो कि आप कितने समयमें लौटेंगे। चालाक चोर इस जानकारीसे लाभ उठा सकते हैं।

अपनी चाबियोंको चटाईके नीचे, दरवाजेके ऊपर या लेटर बक्समें मत छोड़ जाओ।

रसोईके पासकी आलमारियोंमें ताला लगाना मत भूलो।

दरवाजेके बाहर ताला मत लगाओ, क्योंकि उससे आपके घरमें न होनेका पता चल जाता है।

रातको घरसे बाहर मत जाओ। यदि जाना ही हो, तो कमसे कम एक बत्ती जलती छोड़कर जाओ। साधारणतः चोर उस मकानमें नहीं घुसते, जिसमें प्रकाश होता है।

अगर आपकी चाबी खो गयी हो या किसीने उसे चुरा लिया हो, आपको नया ताला लानेसे चूकना नहीं चाहिए।

दरवाजेको भीतरसे बन्द किये बिना मत रहो। इससे स्त्रियोंके लिए भय नहीं रहता।

बिछौनेके नीचे, तस्वीरोंके पीछे, गद्दोंमें या दूसरी चीजोंमें न तो रुपये रखो और न अन्य मूल्यवान् वस्तुयें। घरमें घुसते ही चोर पहले इन्हीं स्थानोंकी खोज करते हैं।

जिस समय चोर चोरी करनेके प्रयत्नमें हो, उत्तेजित मत हो, प्रकाश भी मत करो, चुपचाप टेलीफोन द्वारा या किसी अन्य उपायसे पुलिसको खबर करो।

एजेण्ट, कनवेसर या बिजली-घरके कर्मचारी आदिके रूपमें जो लोग आयें, उन्हें अपने कमरेमें तब तक मत आने दो, जब तक यह निश्चय न हो जाय कि वे सचमुच वही हैं।

अपरिचित व्यक्तियोंको यह मत बतलाओ कि पड़ोसी कहीं गये हुए हैं।

अजनबी आदमियोंसे ऐसी कोई चीज न खरीदो, जो बहुत सस्ती हो। अक्सर यह पाया जाता है कि ऐसी चीजें या तो बनावटी होती हैं या चोरीकी। अगर जरूरत हो, तो तुरन्त ही पुलिसको भी बुलाना चाहिए।

घरेलू नौकरोंको रखनेसे पहले उनके विषयमें अच्छी तरह जांच कर लो। यह जांच टेलीफोनपर नहीं होनी चाहिए, क्योंकि अक्सर नौकरीके उम्मेदवार अपने मतलबका टेलीफोन नम्बर बतला देते हैं।

जिन व्यक्तियोंके धनी मालूम होने, बातचीत करनेमें कुशल होने या शिष्टाचार दिखलानेके कारण आप आकर्षित हुए हों, उनपर विश्वास मत करो। यह याद रखो कि अप टू डेट चोर कभी चोर नहीं मालूम होते।

बाहर जाते समय कपड़ोंको हवामें बाहर मत टांग जाओ।

किसी दूकानमें जब सौदा देखने लगो, अपना हेण्डबेग हाथसे अलग मत रखो। चोर हमेशा ही ऐसे अवसरकी ताकमें रहते हैं।

रास्तेमें या मोटरमें मत सोओ। इससे गिरहकटोंको अवसर मिल जाता है।

किसी भी आदमीके पूछनेपर जेबसे घड़ी निकालकर समय बतलाते रहनेकी आदत छोड़ो। इससे चोरोंको घड़ी झटककर भाग जानेका मौका मिलता है।

कहीं बाहर जाना हो, तो अपने ग्वाले और अखबारके हाकरको उसकी सूचना पहलेसे ही अवश्य दो; क्योंकि आपकी अनुपस्थितिका इससे अच्छा सबूत दूसरा नहीं हो सकता कि आपके दरवाजेपर दूध रखा हो और अखबार पड़ा हो।

पास बैठे हुए किसी व्यक्तिको अपने चेहरेके पास अखबार मत लाने दो और यह समझ लो कि वह व्यक्ति या तो आपकी किसी चीजकी ताकमें है या आपकी कोई चीज उठानेकी कोशिशमें लगे हुए किसी गिरहकटको आपकी निगाहसे छिपा रहा है।

ये सूचनायें जितनी उपयोगी न्यूयार्कके नागरिकोंके लिए हैं, उतनी ही अन्य बड़े नगरोंके निवासियोंके लिए भी हैं।—माताप्रसाद अग्रवाल, बी० ए०।

युद्ध-क्षेत्रमें कुत्तोंकी सेवा

युद्धमें कुत्ते कितनी मूल्यवान् सेवायें करते हैं, इसे यहां बहुत कम लोग जानते हैं। अर्सा हुआ, हरबिन (मञ्चूको) के एक समाचारमें बतलाया गया था कि "वहां कुत्तोंकी भी बन आयी। रक्षा-सम्बन्धी सैनिक प्रदर्शनमें लगभग १००० कुत्तोंने भाग लिया, सारे नगरमें परेड की। इन सब कुत्तोंको युद्धके लिए खास तौरसे शिक्षा दी गयी है।" उन्हीं दिनों जर्मनीके एक समाचारसे मालूम हुआ था कि वहां युद्धके लिए ५०००० कुत्तोंको तैयार किया जा रहा है। कहा तो यहां तक गया था कि जर्मनीकी पैदल सेनाके प्रत्येक रेजिमेण्टके साथ एक बटालियन कुत्तोंकी भी रहती है। आस्ट्रियामें सैनिक शिक्षा पाये हुए कुत्तोंका महत्त्व इतना अधिक समझा जाता था कि उन्हें गैसके नकाब तक पहनाये जाते थे। इंगलैण्डमें मेजर रिचर्डसनका स्कूल कुत्तोंको सैनिक कार्योंकी शिक्षा देनेके लिए मशहूर ही है।

मनुष्यने जबसे दूसरोंपर चढ़ाइयां करना सीखा है, कुत्ते भी युद्ध-क्षेत्रमें जाते रहे हैं। ईसासे ४००० वर्ष पहलेके जो लेख मिश्रमें दीवालोंपर पाये गये हैं, उनसे प्रकट है कि आक्रमण होनेपर मिश्र देशके निवासी शत्रुओंको भगानेके लिए जङ्गली कुत्तोंसे काम लेते थे। केल्ट लोग बड़े खूंख्वार कुत्ते पालते और उनके गलेमें नुकीले तकुएदार पट्टे बांधकर रखते थे और जब कोई शत्रु चढ़कर आता, उसपर इन कुत्तोंको छोड़ देते थे। इंगलैण्डके राजा ८ वें हेनरीने स्पेनके राजा ५ वें चार्ल्सके पास ४०० कुत्ते भेजे थे और ये कुत्ते इतनी बहादुरीसे लड़े कि फ्रान्सीसियोंको मैदान छोड़कर वहांसे भागना ही पड़ा। फ्रेडरिक महान्‌ने सबसे पहले इस बातको समझा कि आधुनिक ढङ्गकी लड़ाईमें भी इन कुत्तोंका मूल्य हो सकता है। उन्होंने कुत्तोंसे सन्तरियों, हरकारों और एम्बुलेन्सके सहायकोंका काम लिया। वर्तमान महासमरमें कुत्ते क्या काम कर रहे हैं, इस विषयका विवरण यद्यपि अभी तक नहीं आया है, तथापि गत महासमरमें १९१४ से १९१८ तक कुत्तोंने सेनाके साथ रहकर अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्य बड़ी सफलताके साथ किये थे।

फ्रान्समें जब खाइयोंमें युद्ध हो रहा था, ये कुत्ते रेडक्रास और एम्बुलेन्स दलके साथ रहते थे। उनकी सूंघने और सुननेकी शक्ति साधारणतः मनुष्यसे अठगुनी होती है, इसीलिए वे रात-दिन घायलोंका पता लगानेमें व्यस्त रहते थे। कुत्तोंको मुर्दा और जिन्दा आदमीको पहचाननेका अभ्यस्त बना दिया जाता है और यह भी सिखला दिया जाता है कि जब वे किसी घायलके पास पहुंचें, तब भूंकें नहीं। उनके पास प्राथमिक उपचारका सामान तो रहता ही था, वे घायल सिपाहीके पास जाकर खड़े हो जाते। सिपाही यदि स्वयं इस अवस्थामें होता कि पट्टी बांध सके, तो बांध लेता। इसके बाद वह कुत्ता वर्दीमेंसे एक चिथड़ा फाड़कर भाग जाता और उधरसे स्ट्रेचरवालोंके साथ लौटता। इस तरह कई कुत्तोंने सैकड़ों सिपाहियोंकी जान बचायी। फ्रान्सकी सेनाके एक कुत्तेने दो दिन लगातार कोशिश करनेके बाद ५ ऐसे घायलोंका पता लगाया, जिन्हें और कोई नहीं खोज सकता था और जो लाशोंके ढेरमें दबे हुए थे। बेल्जियमके एक फौजी कुत्तेने एक सालसे भी कम समयमें २००० सिपाहियोंकी प्रायः रक्षा की थी।

ब्रिटिश सेनाके साथ एरीडेल जातिके जो फौजी कुत्ते रहते थे, उनसे स्काउटों और सन्तरियोंका काम लिया जाता था। उनके कान और नाक इतनी तेज थी कि वे आध मील दूरसे ही सुन और सूंघ लेते। शत्रु और मित्र सैनिककी वर्दी

तो वे पहचान ही लेते थे, उनकी स्मृति भी इतनी अच्छी थी कि २०० शब्दों तककी आज्ञाको वे समझ लेते और उसका पालन करते थे। तोपके गोलोंका उन्हें डर नहीं लगता था और टोह लगाकर जब वे लौटते, धीरेसे भूंककर पहरेदारोंको यह बतलाते कि कई सौ गज दूर खाइयोंसे जर्मन सैनिक अन्धकारमें आक्रमण करनेके लिए रवाना हो चुके हैं। शत्रु अपनी मशीनगनोंको छिपाकर जहां मोर्चा लगाते, वहां ये फौजी कुत्ते स्काउटोंको पहुंचा देते थे।

बेल्जियममें जिस समय फ्लेण्डर्सके क्षेत्रमें युद्ध चल रहा था, शेफर्ड नामक जातिके कुत्ते मशीनगनोंको खींचते थे। अनुभव यह बतलाता है कि जिस समय तोपें आग उगल रही हों, घोड़ोंकी अपेक्षा कुत्ते अधिक काम देते हैं। वे शत्रुसे बचाते तो हैं ही, उसके हाथ तोपें भी नहीं पड़ने देते। रूसमें गैसके नकाब पहने हुए ये फौजी कुत्ते सनसनाती हुई गोलियों और गैसके बीचसे अपना रास्ता तयकर सैकड़ों कारतूस अपने सैनिकोंके पास पहुंचाते थे। इसी तरह इटलीमें जो सैनिक पहाड़ोंपर, मनुष्यों और घोड़ोंके लिए दुर्गम और कहीं-कहीं अगम पहाड़ोंपर मोर्चा बनाकर डटे हुए थे, उनके पास रसद पहुंचानेका काम फौजी कुत्तोंसे लिया जाता था। फौजी कुत्ते ४५ पौण्ड गोली-बारूद ले जा सकते हैं और साधारण तरीकेसे टेलीफोनका तार भी बिछा सकते हैं।

अमेरिकासे यद्यपि कोई कुत्ता समुद्र-पार नहीं भेजा गया था, तथापि कितने ही कुत्ते छिपाकर वहां पहुंचा दिये गये थे और उन्होंने युद्धमें सराहनीय सेवा की थी। एक कुत्ता विङ्ग तो कोरीडनके केम्पमें ही पैदा हुआ था। एक मशीन-गन कम्पनीने उसे अपने साथ रख लिया और बादमें उसे फ्रान्स आना पड़ा। इस फौजी कुत्तेको ९ क्षेत्रोंमें काम करना पड़ा था। जहरीली गैसके आक्रमणका पता लगानेकी इस कुत्तेमें विचित्र शक्ति थी। इधर आक्रमण हुआ नहीं कि विङ्गको उसका पता चल जाता। उसने कितनी ही बार चेतावनी देकर सैकड़ों अमेरिकन सैनिकोंको बचाया। जहरीली गैससे स्वयं विङ्गको बड़ी हानि हुई थी; परन्तु वह बहुत दिनों तक जीवित रहा और उसनेकई बार सम्मान पाया। संसारमें केवल विङ्ग ही एक ऐसा कुत्ता था, जिसे फौजी भत्ता मिलता था और जिसे सरकारने पदक दिया था। विङ्ग जन्मसे फौजी कुत्ता था, फौजी कुत्तेकी हैसियतमें ही उसका अन्त हुआ और पूरे फौजी सम्मानके साथ ही उसे दफन किया गया।

वर्तमान महासमरसे पहले यूरोपके प्रायः सभी देशोंमें फौजी कुत्ते तैयार किये जा रहे थे। कहते हैं, फ्राङ्कफर्ट (जर्मनी) में इन कुत्तोंका जो स्कूल है, उसमें २००० कुत्तोंको एक साथ शिक्षा दी जाती थी। संसारमें अपने ढङ्गका यह सबसे बड़ा स्कूल है। जेना नामक स्थानमें फौजी कुत्तोंका सरकारी अस्पताल भी है। फ्रान्स, इटली, बेल्जियम, हालैण्ड और बलगेरियामें कुत्तोंको फौजी शिक्षा देनेके लिए कालेज हैं। टोह लगाने जाना, भयावह स्थानोंमें होकर निकलना, खबर और रसद पहुंचाना, ऊंची-नीची जमीनमें मशीन-गनोंको खींचना और गोली-बारूद ले जाना, शत्रुके सैनिकोंको हथियार छोड़ देनेके लिए विवश करना, उन्हें पकड़ लेना और रोक लेना, निश्चित समयपर फूटनेवाले साधारण और गैसके बमोंको ले जाना और उन्हें शत्रुकी लाइनोंमें रख आना—ये सब काम हैं जिनकी शिक्षा इन कालेजोंमें फौजी कुत्तोंको दी जाती थी।

समाचार-पत्रोंकी स्वाधीनता

समाचार-पत्रोंने अपनी स्वतन्त्रताके लिए कितनी ही बार बड़े साहससे काम लिया है। इन साहसपूर्ण कार्योंके सिलसिलेमें "फ्राङ्कफर्टर जीतुङ्ग" नामक जर्मन पत्रकी घटना हमारे सामने है, जो १९२३ में घटित हुई थी। १९२३ में फ्रान्सीसी जर्मनीके रूर प्रान्तपर चढ़ गये थे और फ्राङ्कफर्ट नामक स्थानमें पहुंच गये थे। वहांके नागरिकोंने इसका बड़ा प्रतिवाद किया, दङ्गा हुआ और कितने ही नागरिक गोलीके शिकार हुए। फ्रान्सीसी सेनापतिकी आज्ञासे एक मेजर "फ्राङ्कफर्टर जीतुङ्ग" पत्रके दफ्तरमें गया और सम्पादकोंको पत्रमें जनसाधारणके लिए एक चेतावनी छापनेकी आज्ञा दी। एक घण्टा पीछे वह नोटिस फ्रान्सीसी सेनाके हेड क्वार्टरमें वापिस पहुंच गया। उसके साथ कागजकी स्लिप नत्थी थी, जिसपर लिखा हुआ था—"फ्राङ्कफर्टर जीतुङ्ग" का सम्पादक-मण्डल आपको इस पत्रके साथ लौटाया हुआ नोटिस भेजनेके लिए धन्यवाद देता है, परन्तु अत्यन्त खेद इस बातका है कि उसे छापा न जा सकेगा; किन्तु इससे नोटिसकी उपयोगिताके सम्बन्धमें कोई बात नहीं समझनी चाहिए।

फ्रान्सीसी सेनापतिके लिए सम्पादकका यह पत्र पाकर चुप हो जाना असम्भव ही था। वे क्रोधसे भर गये। थोड़ी देर पीछे कितने ही पदक लगाये हुए एक फ्रान्सीसी जनरल चरमराता हुआ समाचार-पत्रके दफ्तरमें पहुंचा और धमकी देकर कहा—"मैं आज्ञा देता हूं कि यह नोटिस कल सवेरे पहले पृष्ठपर चार कालमोंकी चौड़ाईमें खूब मोटे टाइपमें छापा जाय।"

सम्पादकने उत्तर दिया—"आप भ्रममें हैं। फ्राङ्कफर्टर जीतुङ्गको कभी किसीका हुक्म नहीं मिला। आप पत्र जब्त कर सकते हैं, प्रेस नष्ट कर सकते हैं, इमारत जला सकते हैं और सम्पादकोंको गोलीसे उड़ा सकते हैं; परन्तु यह कोई नहीं कह सकता कि पत्रमें क्या छापा जाय और क्या नहीं।"

यह सुनना था कि फ्रान्सीसी जनरल आगबबूला हो गया। काफी गर्जन-तर्जनके बाद अन्तमें उसे झुकना पड़ा। उसने सोचा, पत्रको नष्ट कर देने और सम्पादकोंको फांसी दे देनेसे भी लाभ क्या होगा। आखिर जनताको सूचना ही तो देनी है।

जनरलका पारा उतर आनेपर सम्पादकने कहा—"अब, अगर आप भलमनसाहतके साथ यह नोटिस छापनेके लिए कहें और अगर हम यह समझें कि लोगोंके फायदेके लिए उसे छापना ठीक है, तो हम उसे जब, जहां ठीक समझेंगे, छाप देंगे।"

इसपर फ्रान्सीसी जनरलने क्षमा-याचना की और इस विवादका अन्त यहीं हो गया।

जर्मनीमें, हिटलरके जर्मनीमें वर्तमान महासमर आरम्भ होनेसे पहले ही समाचार-पत्रोंकी यह स्वतन्त्रता केवल स्मृतिके रूपमें रह गयी थी। फ्राङ्कफर्टर जीतुङ्ग भी हिटलर-शाहीसे अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा नहीं कर सका था।

इस घटनाके कई साल बाद फ्राङ्कफर्टर जीतुङ्गके सम्पादक अमेरिका गये और वहांके एक बड़े अखबारके सम्पादकसे समाचारपत्रोंकी स्वाधीनताके सम्बन्धमें बातचीत की। अमेरिकन पत्रके सम्पादकने कहा—"सब जानते हैं कि पत्रमें वही लिखना होगा, जो उसका प्रकाशक चाहता हो। वैसा न लिखा जाय, तो अपना स्थान खाली कर जाना पड़े।" जर्मन पत्रकारके चकित होनेपर अमेरिकन पत्रके सम्पादकने कहा—"आप इस बातको समझ नहीं सकते; क्योंकि जर्मनीमें समाचारपत्रोंको स्वतन्त्रता नहीं है।"

जर्मन पत्रकारने जब यह कहा कि यद्यपि जर्मनीकी नेशनल प्रेस पालिसी है, तथापि वहां स्थानीय सेंसर नहीं है और जर्मन पत्रकारको स्वयं यह निश्चय करना होता है कि जन-हितके ख्यालसे उसे कब अपने कामपर कुछ प्रतिबन्ध लगा लेने चाहिए, तब अमेरिकन पत्रकारको बड़ा आश्चर्य हुआ। बात-चीतके सिलसिलेमें जर्मन पत्रकारने प्रश्न किया—"समाचार-पत्रोंकी स्वतन्त्रता आपके यहां वास्तवमें कितनी है?"

अमेरिकन पत्रकारने कहा—"स्वभावतः हमें कुछ बातों-का ख्याल रखना ही पड़ता है। हमें प्रकाशकका ख्याल रखना पड़ता ही है और विज्ञापनदाताओंका भी। परन्तु अगर हम सहमत न हों, तो किसी भी अन्य पत्रमें काम कर सकते हैं। इससे हमें स्वतन्त्रताकी अनुभूति होती है।"

अमेरिकन पत्रकारकी दृष्टिमें इस बातका बड़ा महत्त्व था कि पैसोंवाली नौकरी न छोड़नेकी आवश्यकताके सिवाय अन्य कोई उसपर दबाव न डाले। इस सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करते हुए जर्मन पत्रकारने अपने पत्र फ्राङ्क फर्टर जीतुङ्ग-की २७ जनवरी सन् १९३८ की संख्यामें प्रश्न किया था—"क्या किसी व्यक्तिके लिए यह गौरवपूर्ण है कि वह सम्पूर्ण राष्ट्रके सामूहिक ध्येयके निमित्त अपनेको अर्पण कर देनेके बजाय पैसोंको दृष्टिमें रखकर किसी व्यक्तिके स्वार्थों और इच्छाओंको आत्मसमर्पण कर दे?"

इस सिलसिलेमें एक अन्य बात भी उल्लेखनीय है। लियो सी० रोस्टनने "वाशिङ्गटनके संवाददाता" नामक पुस्तकमें एक प्रश्न किया है—"कोई पत्रकार जो कुछ देखता है और सोचता है, उसके सम्बन्धमें ईमानदारीसे लिखकर देनेके लिए वह कितना स्वतन्त्र है?" इस प्रश्नका उत्तर मिस्टर रोस्टनको अक्सर जो मिला, वह यह है—"सब जानते हैं कि लिखना वही चाहिए, जो सम्पादक चाहता हो।"

एक अमेरिकन पत्रके संवाददाताने किसी नये कानूनके सम्बन्धमें कुछ बातें लिखकर दी थीं। संवाददातासे पत्रकी ओरसे पूछा गया कि नये कानूनके मसविदेके सम्बन्धमें वे सब बातें क्या ठीक हैं? संवाददाताने उन सब बातोंको ठीक पाया, परन्तु सम्पादक-मण्डल यह निश्चय न कर सका कि

उस सचाईको छापा जाय या नहीं। फलतः संवाददातासे रोज ही यह प्रश्न किया जाता था कि क्या वे बातें सचमुच ठीक हैं। कई दिन तक परेशान होनेके बाद संवाददाताने उस रिपोर्टको रद्द कर दिया और जिस तरहका विवरण सम्पादकको अभीष्ट था, लिखकर दे दिया।

व्यवहारिक विनोद

फ्रान्सके प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मोशिये क्लिमेंशू उन दिनों पूर्वी द्वीप-समूहके एक टापूमें थे। एक दिन जब वे एक गांवमें होकर जा रहे थे, उन्होंने एक दूकानमें एक छोटी मूर्ति देखी। उन्होंने दूकानदारके पास जाकर कहा—"मुझे यह मूर्ति पसन्द है। इसका मूल्य क्या है?"

"आपकी खातिर ७९) रुपये।"—दूकानदारने उत्तर दिया।

मोशिये क्लिमेंशूने कहा—"अपनी खातिर मैं ४९) दे सकता हूं।"

दूकानदारने आकाशकी ओर हाथ उठाकर कहा—"४९) रुपये! आप मजाक कर रहे हैं। कोई सुनता तो क्या कहता?"

फ्रान्सीसी राजनीतिज्ञने फिर कहा—"४९) रुपये।"

इसपर झल्लाने-जैसा भाव बनाकर दूकानदारने कहा—"हो नहीं सकता। इससे तो मैं आपको यों ही दे देना अच्छा समझूंगा।"

"मञ्जूर।"—यह कहकर मोशिये क्लिमेंशूने वह मूर्ति ली और उसे जेबमें रखते हुए कहा—"धन्यवाद, आपकी बड़ी कृपा है। आपने मुझे एक मित्रके रूपमें ही यह भेंट दी है। इसलिए आप बुरा न मानेंगे, अगर मैं भी आपको कुछ भेंट दूं।"

"नहीं, बिलकुल नहीं।"

मोशिये क्लिमेंशूने अपनी जेबसे ४२) निकाले और उसके हाथमें रखकर चलते हुए कहा—"इन्हें किसी अच्छे काममें लगा दीजियेगा।"

समाजमें लड़कियोंका जन्म

कानपुरसे हमारे परिचित एक सज्जन लिखते हैं—"समाजकी शोचनीय अवस्थाका एक चित्र मेरी आंखोंके सामने है और मैं यह अनुभव करता हूं कि जब तक इस अवस्थामें सुधार नहीं किया जायगा, घरमें लड़कों और लड़कियोंको समान व्यवहार और माता-पिताके समान प्रेम-का अधिकारी नहीं समझा जायगा, तब तक हिन्दू-समाजकी वर्तमान दुर्दशाका अन्त नहीं होगा। आप यह जानकर खुश होंगे कि लगभग तीन सप्ताह पूर्व मेरे लड़की हुई है। मेरे माता-पिता और अन्य गुरुजनोंको जबसे यह मालूम हुआ था कि मेरी स्त्री गर्भवती है, तबसे घरमें एक अजीब खुशी-सी रहती थी। आजकल प्रायः सभी घरोंमें सास और बहूमें जैसी कटुता देखनेमें आती है, वैसी कोई बात मेरे घरमें नहीं थी, फिर भी जो मुंहफुलौअल कभी-कभी हो जाती थी, स्त्रीके गर्भवती होनेके बाद वह भी बन्द हो गयी। मेरी माताको मेरी स्त्रीका बड़ा ध्यान रहने लगा, उससे बड़ी-बड़ी आशायें की जाने लगीं। पता नहीं, वे क्या सोचती थीं। मुझसे वे इस सम्बन्धमें कुछ ज्यादा न कहती थीं; परन्तु जब कुछ कहतीं, उनकी आंखों और उनकी बातोंसे आशा और हर्ष टपकता था। प्रसव-काल जब समीप आने लगा, माताके कहनेसे पिताजी घरमें तरह-तरहकी चीजें लाकर जमा करने लगे, मानों कोई बड़ा समारोह होनेवाला हो। आखिर वह दिन भी आया। उस दिन दोपहरको जब मैं कुछ देरके लिए कार्यवश बाहर गया हुआ था, मेरी स्त्रीने लड़की-को जन्म दिया। मुझे यह समाचार मेरे पड़ोसीने रास्तेमें ही सुनाया—"लड़की हुई है!" उसके यह कहनेमें ही कुछ ऐसा भाव था कि मानो कुछ नहीं हुआ, मानो लड़की होनेसे तो कुछ न होना ही अच्छा था। घर पहुंचनेसे पहले अपने एक वृद्ध पड़ोसीसे मेरी भेंट हो गयी। उन्होंने तमाखू फांकते-फांकते मेरी ओर देखा और अपने होठोंको कुछ इस तरह बनाया, मानो मैं कोई बाजी हार गया होऊं। पिताजी बैठकमें बैठे हुए थे। उन्होंने मुझसे कुछ नहीं कहा; परन्तु उनके चेहरेसे कुछ ऐसा मालूम होता था, मानो कोई जटिल समस्या पैदा हो गयी हो। थोड़ी देर तक हम दोनों इसी तरह चुप रहे। जब पुरोहितजी राशि गिनने आये और मैं किसी कार्यसे भीतर गया, देखा कि मेरी दादी अलग एक कोनेमें मुंह लटकाये बैठी हुई हैं। मेरी मां चल-फिर रही थीं; परन्तु चेहरेसे मालूम होता था कि उनकी आशाओंपर पानी पड़ चुका है और अभिलाषा और उमङ्ग मनकी मनमें ही रह गयी। पड़ोसकी एक बुढ़ियाने मेरी ओर देखकर कहा—डिग्री आ गयी है, डिग्री! अब रुपया जमा करो! सबकी बातोंसे मेरी अजीब हालत थी और मुझसे भी ज्यादा अजीब हालत थी मेरी स्त्रीकी, जिसे लड़की-को जन्म देनेका—कुटुम्बपर एक भार लादनेका कसूरवार समझा जा रहा था और इसी दृष्टिसे उसके साथ सारी बातें की जा रही थीं। किसी बालकके जन्म लेनेपर जो उत्सव मनाये जाते हैं, वह सब भी 'लड़की' की दृष्टिसे मनाये गये। लड़का होनेकी आशासे जो तैयारियां की गयी थीं, वे तैयारियां ही रह गयीं, लड़की हो जानेके कारण वैसी धूम-धामसे उत्सव नहीं मनाये गये।

"यह तो लड़कीके जन्मके सम्बन्धमें हुआ, बादमें तो लड़के और लड़कीके लालन-पालनमें पूरा भेद-भाव देखनेमें आता है। पराया धन समझकर इस तरह रखा जाता है, मानो उसके प्रति कोई खास दायित्व न हो। लड़की जब कभी किसी चीजके लिए जिद करती है, मां कहती है, "तू क्या गयामें हाड़ ले जायगी? पड़ोसिनें मुंह बिचकाकर कहती हैं कि इस पराये धनसे क्या लहना है। यह मनोवृत्ति आरम्भसे अन्त तक अपना काम करती है।......"

ऊपर समाजकी जिस अवस्थाका उल्लेख हुआ है, उसमें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है। लड़कों और लड़कियोंके सम्बन्धमें समाजमें जो यह भेद-भावपूर्ण मनोवृत्ति देखनेमें आती है, वह बिलकुल नयी नहीं है। घाघ कविने "जो पहिलौटी बिटिया होय" लिखकर कहा था कि "घाघ कहैं दुःख कहां समाय?" किन्तु यह मनोवृत्ति चाहे नयी हो या पुरानी और उसके मूलमें चाहे कितनी ही कुरीतियां और प्रतिकूल परिस्थितियां हों, इसमें सन्देह नहीं है कि वह है अत्यन्त घृणित और शोचनीय—इतनी घृणित और शोचनीय कि उसपर विचार करते ही लज्जासे सिर नीचा हो जाता है। विवाहके समय दहेजकी कुप्रथाको दृष्टिमें रखकर माता-पिता या कुटुम्बके अन्य व्यक्तियोंको चिन्ता हो तो हो—यद्यपि इतने समय पहले न तो उसमें कोई औचित्य है और न उसका कोई अर्थ है—परन्तु हम देखते हैं कि लड़की पैदा होनेपर पड़ोसियों तकका, जिन्हें कुछ मतलब नहीं है, उत्साह भङ्ग हो जाता है—जब कि असलियत यह है कि लड़कीको अपने माता-पितासे जो ममता होती है, वह लड़कोंको नहीं होती—कितने ही लड़के तो माता-पिताकी बड़ी दुर्गति करते देखे जाते हैं! इससे अधिक दुःखका विषय और क्या होगा कि जिस समय हमारे घरमें लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा अवतीर्ण हो रही हों, कुटुम्बी हर्षसे स्वागत करनेके बजाय उदास हो रहे हों और उनमेंसे कोई-कोई तो सचमुच ही आंसू भी बहा रहे हों। हतभाग्य हिन्दू समाज ही है, जिसमें यह दृश्य देखनेमें आता है। संसारमें सभ्यताका, सभ्यता-गुरु होनेका दावा रखनेवाली हिन्दू जातिको छोड़कर और किसी भी जातिमें यह शोचनीय अवस्था देखनेमें नहीं आती। आज समाजमें शिक्षिता स्त्रियोंकी संख्या पुरुषोंकी अपेक्षा जो इतनी कम है, देवियोंका स्वास्थ्य पुरुषोंकी अपेक्षा आज जो इतना अधिक गिरा हुआ है और असमयमें कष्टसाध्य बीमारियोंसे पीड़ित होकर वे जितनी ज्यादा संख्यामें मृत्यु-मुखमें जा रही हैं, जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें आज वे पुरुषोंसे जो पिछड़ी हुई हैं और पुरुषोंका सहारा ताकती हैं और अगणित घरेलू अत्याचारोंको चुपचाप बे-जबान बनकर सहन करती हैं, उसका मूल कारण इस मनोवृत्तिमें है, जो लड़कों और लड़कियोंके सम्बन्धमें फैली हुई है। सचमुच वे माता-पिता धन्य हैं, जो कन्यारत्नको जन्म देते हैं। यह कौन नहीं जानता कि जगज्जननी सीता, विदुला, गार्गी, मैत्रेयी, अनुसूया, कुन्ती और कौशल्या, सब लड़कियां ही तो थीं, जिन्होंने न केवल अपने माता-पिताको, सारे देशको गौरव प्रदान किया है। कौन जानता है कि आज जिस लड़कीके जन्म लेनेपर कुटुम्बी उदास हो रहे हैं, वही आगे चलकर दुर्गावती, लक्ष्मीबाई, मीराबाई और जीजाबाई नहीं बनेगी। विवाह-सम्बन्धी कुरीतियोंके कारण माता-पिताको जो कठिनाइयां हो सकती हैं या होती हैं, उनसे हम अनभिज्ञ नहीं हैं; परन्तु इन कठिनाइयोंसे निस्तार पाने और कुरीतियोंके मूलपर कुठाराघात करनेका उपाय भी इसके सिवाय दूसरा नहीं है कि लड़कियोंका लालन-पालन और शिक्षण, लड़कोंके समान ही किया जाय और जन्म लेनेके साथ ही उनके विवाहकी चिन्ता न कर इस बातका सङ्कल्प किया जाय कि उनके प्रति माता-पिताका कर्तव्य कैसे पूरा किया जा सकता है, उन्हें पितृ-गृह और पति-गृहकी शोभा, देशकी गौरव-गरिमा, योग्य कन्या, योग्यतर सहधर्मिणी और योग्यतम माता कैसे बनाया जा सकता है।

बाल-विवाह और बालिकाओंकी शिक्षा

यह तो सभी जानते हैं कि बाल-विवाह और पर्देकी कुप्रथाका सबसे अधिक घातक प्रभाव देशमें बालिकाओंकी शिक्षापर पड़ता है। बालिकाओंका विवाह होनेके बाद बहुत कम माता-पिता उनकी शिक्षाको जारी रखना चाहते हैं। यह विवाह यदि छोटी उम्रमें हो, तो उससे बालिकाओंकी शिक्षाकी और भी अधिक क्षति होती है; क्योंकि छोटी उम्रमें इतनी शिक्षा नहीं हो पाती कि शिक्षाकी दृष्टिसे उसका कुछ मूल्य हो।

हमारे सामने भारत-सरकारकी शिक्षा-सम्बन्धी पञ्च-वर्षीय रिपोर्ट है। इसमें १९३२ से १९३७ तककी शिक्षा-सम्बन्धी प्रगतिपर विचार किया गया है। आरम्भमें जो कुछ लिखा गया है, उसकी दृष्टिसे इस रिपोर्टका बालिकाओंकी शिक्षा-सम्बन्धी यह अंश विशेष महत्त्वपूर्ण है—"आलोच्य कालकी एक खास बात यह है कि बालिकाओंकी शिक्षाके महत्त्वके सम्बन्धमें जनतामें सर्वत्र जागृति हुई। पहले जिन विचारोंके कारण लड़कियोंकी शिक्षामें बाधा पड़ती थी, वे अब धीरे-धीरे नष्ट होते जा रहे हैं, बाल-विवाह गैरकानूनी ठहरा दिया गया है और पर्दा-प्रथामें भी कुछ शिथिलता आ गयी है। १९३२ में कुल २४९३००० लड़कियां पढ़ रही थीं; परन्तु १९३७ में प्रतिशत २९.९ वृद्धि होकर उनकी संख्या ३१३८००० हो गयी। प्राथमिक स्कूलोंके सिवाय शिक्षा-सम्बन्धी अन्य सभी संस्थाओंकी संख्या भी बढ़ गयी। बालिकाओंकी शिक्षाका व्यय १९३१-३२ के २३९००००० रुपयोंसे बढ़कर १९३६-३७ में २६९००००० हो गया; परन्तु अभी तक साधारणतः यह मनोवृत्ति देखनेमें आती है कि शिक्षाके लिए जब कोई रकम मिलती है, उसका ज्यादा हिस्सा लड़कियोंकी अपेक्षा लड़कोंकी शिक्षाके लिए दिया जाता है। सहशिक्षाको लोग जैसा पहले पसन्द करते थे, वैसा ही करते रहे। कई प्रान्तोंमें लड़कोंकी शिक्षा संस्थाओंमें पढ़नेवाली लड़कियोंकी संख्या बढ़ रही है। १९३६-३७ में जो ३१३८००० लड़कियां पढ़ रही थीं, उनमेंसे १३६२००० लड़कियां लड़कोंके स्कूलोंमें थीं।"

बालिकाओंकी शिक्षाके सम्बन्धमें जनसाधारणमें जो जागृति देखनेमें आ रही है और उसके सम्बन्धमें पुराने विचारोंका प्रभाव जिस तरह नष्ट होता जा रहा है, वह तो प्रत्यक्ष ही है, बालिकाओंकी शिक्षाके लिए जो समाज-सेवक प्रयत्नशील हैं, उनके लिए रिपोर्टके इस अंशमें कई महत्त्वपूर्ण सूचनायें हैं। उन्हें यह जान लेना चाहिए कि शिक्षा-प्रसार-सम्बन्धी प्रयत्न सफल: होनेके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि बाल-विवाह और पर्देकी कुप्रथाओंको बिलकुल ही उठा दिया जाय और इस मनोवृत्तिको बदल दिया जाय कि जब कोई रकम शिक्षा-प्रसारके लिए मिल सके, तब उसका ज्यादा भाग लड़कोंकी शिक्षाकी मदमें दिया जाय, लड़कियोंकी शिक्षाके मुकाबिलेमें लड़कोंकी शिक्षाको ज्यादा महत्त्व दिया जाय। शिक्षित पुरुषों और स्त्रियोंकी संख्यामें जो इतना अन्तर है, उसके लिए यह दूषित मनोवृत्ति भी कम जिम्मेदार नहीं है।

अप्रासङ्गिक न होगा, यदि इस स्थानपर रिपोर्टकी एक अन्य बातका भी उल्लेख कर दिया जाय। हमें यह बतलाया गया है और ठीक है कि "कई प्रान्तोंमें हरिजन छात्रोंकी संख्या भी बहुत ज्यादा हो गयी है और सार्वजनिक स्कूलोंमें उनके पढ़नेके सम्बन्धमें जनतामें जो विरोध था, वह बड़ी शीघ्रतासे दूर हो रहा है।" यह शुभ-लक्षण है, जो यह बतला रहा है कि देश करवट ले रहा है, समाजका चोला बदल रहा है।

समाज-सेवाका एक क्षेत्र

स्वदेशके कितने ही भागोंमें, खासकर पहाड़ी इलाकोंमें कितनी ही जातियां हैं जो सामाजिक दृष्टिसे बहुत पिछड़ी हुई हैं। राजपूताना, छोटानागपुर, आसाम और मध्य-प्रान्तके कितने ही पहाड़ी इलाकों और पहाड़ी जातियोंके नाम इस सिलसिलेमें लिये जा सकते हैं। ये पहाड़ी जातियां जङ्गलोंमें छोटी-छोटी बस्तियोंमें झोंपड़ोंमें रहती हैं। इनमें रहन-सहन, खान-पान और भेष-भूषासे लगाकर रीति-रिवाज तक सारी बातोंमें अपनापन पाया जाता है। इनकी भाषा अपनी है, परन्तु शिक्षाके लिए कोई खास व्यवस्था नहीं है और न कोई ऐसी संस्था ही है जो इन जातियोंके सम्पर्कमें आकर उनकी सामाजिक स्थितिको ऊंचा उठाने, उनके जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोणको उन्नत बनानेका श्रेष्ठ कार्य इस समस्याकी व्यापकताकी तुलनामें कर रही हो। क्या हुआ यदि कुछ संस्थायें अपनी अल्प शक्तियोंसे इन जातियोंमें कहीं-कहीं कुछ कार्य कर रही हों—यह प्रश्न कई करोड़ देशवासियोंकी सामाजिक स्थिति सुधारनेका, उन्हें हृदयसे लगानेका है और अपनी धुनके पक्के समाज-सेवकोंको वैसे ही व्यापक सङ्गठनके साथ प्रयत्नशील होना चाहिए।

हमारे सामने मध्यप्रान्तकी कुछ पहाड़ी जातियोंका विवरण है, जिनमें चोरीका पेशा बहुत ही अच्छा समझा जाता है। ये घास-फूस या ताड़के पत्तोंके झोंपड़ों या बांसकी खपच्चों और मिट्टीके बने हुए घरोंमें रहती हैं। झोंपड़े तो ये साफ-सुथरे रखती हैं, परन्तु इनके कपड़े बड़े मैले होते हैं। फट

जानेके डरसे ये लोग कपड़े बहुत कम धोते हैं। अगर कोई उन्हें कपड़ा धोना सिखलाये, तो ये उसे अपना शत्रु समझते हैं। वे सब प्रायः मांस खाते हैं और बहुतेरे तो किसीका भी मांस खा सकते हैं। अलबत्ता, उनमें जो अपनेको हिन्दू कहते हैं, वे गो-मांस नहीं खाते हैं। जब मांस आसानीसे नहीं मिलता, बस्तीके पेशेवर चोरोंको वे यह काम सौंपते हैं और ये पेशेवर चोर बाहरसे जानवर उठा लाते हैं। इस प्रयत्नमें अगर वे पकड़े जाते हैं और सजा हो जाती है, तो सारी बस्ती मिलकर उनके परिवारके भरण-पोषणका भार उठाती है।

पुराने ढर्रेके करघोंपर वे अपनी जरूरतके लिए मोटा-झोटा कपड़ा तैयार कर लेते हैं। फलोंका खाना आवश्यकतामें शामिल नहीं है। चावल उन्हें बहुत पसन्द आता है। पृथ्वीको वे माता मानते हैं। उनका विश्वास है कि हल जोतनेसे माताको चोट पहुंचती है इसीलिए वे हल नहीं चलाते और डण्ठलोंको जला देनेसे खेतमें जो राख हो जाती है, उसीमें बीज बो देते हैं।

शराब पीनेका इनमें बहुत चलन है। जब तक शराब न पी जाय, इनका कोई भी सामाजिक कार्य पूरा नहीं होता। ये अपने देवताओंकी पूजामें भी शराबका व्यवहार करते हैं। एक जातिमें कुछ समय पहले तक यह रिवाज भी प्रचलित था कि लड़कीको जबर्दस्ती उड़ा ले जाकर विवाह कर लेते थे। मृतकोंको या तो जलाया जाता है या गाड़ दिया जाता है। एक जातिमें प्रमुख व्यक्तियोंको मरनेपर जलाया जाता है और गरीबोंको गाड़ दिया जाता है। जलाने या गाड़नेकी जगह मृतकके सिरकी ओर एक बड़ा पत्थर रख देते हैं। मृतकका स्थान समाजमें जितना ही ऊंचा हो, पत्थर उतना ही बड़ा होता है। यदि कोई व्यक्ति घरमें मर जाय, तो परिवारके अन्य लोग उस घरको छोड़ जाते हैं, उसे मृतकका स्मारक मानने लगते हैं; परन्तु उसकी मरम्मत नहीं करते, परिणाम यह होता है कि कुछ समय पीछे वह स्मारक अपने आप नष्ट हो जाता है।

यह विवरण कुछ विस्तारके साथ देनेमें हमारा उद्देश्य यह है कि इन इलाकोंकी अर्धसभ्य अवस्थाकी ओर, सेवाके एक विस्तृत क्षेत्रकी ओर समाज-सेवकोंका ध्यान विशेष रूपमें आकर्षित हो और वे यह देखें कि लाखों देशवासियों-को हृदयसे लगानेका कैसा अच्छा अवसर उनके सामने है। जो अवस्था मध्यप्रान्तके इलाकोंमें है, वही न्यूनाधिक अन्य भागोंमें भी है। एक जमाना था, जब असभ्य और अर्ध-सभ्य देशोंमें आर्य संस्कृतिका विस्तार करनेके लिए इस देशके आर्यजन संसारके कोने-कोनेमें पहुंचते थे, क्या हम इसी देशमें अपने इन करोड़ों भाइयोंके पास नहीं पहुंचेंगे, जो अपने एक रूपमें हिन्दू ही हैं और जिन्हें ईसाई धर्ममें लाने और रोमन लिपि सिखलानेके लिए कितने ही मिशन काम कर रहे हैं।
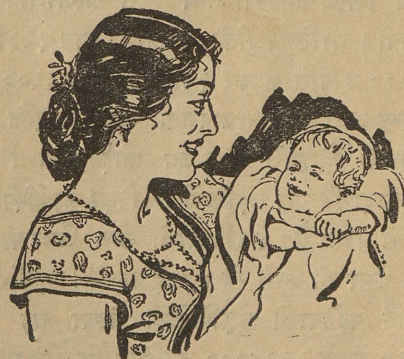
प्रगतिशील साहित्य

प्रगतिशील साहित्यके सम्बन्धमें इन दिनों जो हलचल है, उसका अपना महत्त्व है और उस प्रगतिका परिणाम है, जो देशमें विभिन्न क्षेत्रोंमें देखनेमें आ रही है। साहित्य जनताकी मानसिक भावनाओंका चित्र है और जब हम जनताकी इन भावनाओंको आगे बढ़ते और ऊंचा उठते हुए पाते हैं, तब साहित्यपर भी उसका प्रभाव पड़ना ही चाहिए। सच्ची प्रगति वही है, जो सर्वाङ्गीन हो—चाहे इस प्रगतिका क्षेत्र राजनीतिक हो या साहित्यिक। एक ही दिशामें बढ़कर हम वास्तविक अर्थमें उन्नति नहीं कर सकते, उससे अपेक्षित हितसाधन नहीं हो सकता। पूर्वकालमें साहित्यमें कविता-की कुछ दिशाओंमें खूब उन्नति हुई; परन्तु उससे बहुत ही सीमित हित हुआ। हमारे शरीरका कोई एक अङ्ग खूब पुष्ट भी हो जाय, तो उससे कितना हित हो सकता है, यदि उसी अनुपातमें हमारे शरीरके अन्य अवयवोंका विकास न हो। साहित्य-शरीरके सम्बन्धमें भी यही बात है और यह साहित्यके केवल विभिन्न अङ्गोंके सम्बन्धमें ही सच नहीं है, उन विचारों, भावनाओं और विषयोंके सम्बन्धमें भी सच है, जिनका साहित्यमें विवेचन होता है। इन विचारों और भावनाओंको भी एकाङ्गी नहीं, सर्वाङ्गीन होना चाहिए—उनसे जनताकी सभी आवश्यकताओंकी पूर्ति होनी चाहिए। जो साहित्य जनताकी सभी तरहकी सामयिक आवश्य-कताओंकी पूर्ति नहीं करता, वह अधूरा है, वह प्रगतिशील होनेका दावा नहीं कर सकता।

प्रगतिशील साहित्यके लिए केवल यही आवश्यक नहीं है कि वह जनताकी सामयिक भावनाओंको व्यक्त करे—सामयिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करे, उसमें यह क्षमता भी होनी चाहिए कि वह सामयिक भावनाओंको ऊंचा उठाये और आवश्यकताओंका प्रगतिशील भविष्यके साथ साम-ञ्जस्य स्थापित करे, जनसाधारणको एक ऐसे धरातलपर पहुंचाये, जहांसे उसे अपनी आगेकी दिशाका स्पष्ट बोध हो सके। जो साहित्य वर्तमान आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेके साथ ही भविष्यकी दिशाका बोध कराता है और उसके लिए जनसाधारणको अनुप्राणित करता है, वही प्रगतिशील साहित्य है। यह तो पहले ही मान लिया गया है कि आवश्यकताओंसे हमारा अभिप्राय सभी तरहकी आवश्यकताओंसे है।

एक बात और—अमेरिकाके प्रसिद्ध साहित्यिक अप्टन सिनक्लेयरने एक स्थानपर लिखा है—"मार्क्स क्या कहते हैं, इससे मुझे क्या? सेण्ट ल्थरके कथनसे भी मुझे कोई मतलब नहीं है। मेरा विचार तो यह है कि जीवनको, जीवनकी समस्याओंको अपनी आंखोंसे देखो और विवेक जो निर्णय करे, उसे सरल भाषामें लिख डालो।" अप्टन सिनक्लेयरके इस कथनका यह अभिप्राय नहीं है कि हमें संसारको प्रगति देनेवाले विचारकोंकी ओरसे अपनी आंखें बन्द कर लेनी चाहिए और उनके अनुभवसे कोई लाभ नहीं उठाना चाहिए। जो साहित्यकार हमसे पहले हो चुके हैं या जो हमारे समकालीन हैं और जिन्होंने संसारको अपने विचारोंके रूपमें अमूल्य निधि प्रदान की है, हमें उससे तो

पूरा लाभ उठाना ही है; परन्तु जो बात अच्छी तरह जान लेनेकी है, वह यह है कि केवल मार्क्स या लूथरके विचारोंसे काम नहीं चल सकता, केवल उनसे हमारे समाज और साहित्यको प्रगति नहीं मिल सकती, यदि हमारा जीवन जनसाधारणके जीवनके साथ घुलमिल न गया हो, हमारा साहित्य जनसाधारणके जीवनका एक अङ्ग न बन गया हो और इस तरह अङ्गीभूत जीवनकी समस्याओं और परिस्थितियोंका उन विचारोंके साथ सामञ्जस्य न कर लिया गया हो, जिन्होंने संसारके कितने ही भागोंको प्रगति दी है। अपनी अनुभूतिके अभावमें मार्क्स या लूथरके प्रगतिशील विचारोंका मूल्य कितना हो सकता है, इस विषयमें सबका एकमत होना तो असम्भव ही है; परन्तु जनसाधारणके जीवनके साथ अपनेको मिला देने और समस्याओं एवं परिस्थितियोंका मनन कर उनका हल निकालनेका प्रयत्न करनेसे स्वदेशमें भी मार्क्स और लूथर पैदा हो सकते हैं।

अमीर खुसरोका स्वदेश-प्रेम

हिन्दीके मुसलमान कवियोंमें अमीर खुसरोका बड़ा ऊंचा स्थान है। वे बड़े जिन्दादिल कवि थे। उनकी मुकरियां और पहेलियां सर्वसाधारणमें खूब प्रचलित हैं। वे हिन्दीके अपने ढङ्गके पहले कवि थे। आज जिस खड़ी बोलीको हम सब फलता-फूलता देख रहे हैं, उसका बीज उनकी कवितामें विद्यमान था। यद्यपि वे तुर्क थे और फारसीके एक माने हुए सर्वश्रेष्ठ कवि थे, फारिस तकमें उनका बड़ा आदर था, तथापि इस देशकी प्रत्येक वस्तुसे उन्हें बड़ी ममता थी। फारसीमें उनकी लिखी हुई एक पुस्तक है नूहे-सि-पेहर। दिल्लीके पठान बादशाह अल्लाउद्दीन खिलजीके उत्तराधिकारी कुतुबुद्दीनको उन्होंने यह पुस्तक समर्पित की है। कहते हैं, इस किताबके लिए उन्हें एक हाथीके वजनके बराबर रुपये दिये गये थे। इस पुस्तकमें ९ अध्याय हैं। अमीर खुसरोने पुस्तकके तीसरे अध्यायमें इस देशकी बड़ी प्रशंसा की है, इसे संसारके सब देशोंसे बड़ा बतलाया है और कितने ही गुणोंका बखान करनेके बाद इस देशकी श्रेष्ठताके १० कारण बतलाये हैं। वे लिखते हैं—"मैंने जो कुछ कहा है, उसमें सन्देह कर उसकी उपेक्षा न की जाय, इसी कारण मैं एक नहीं, दस सबूत देता हूं :—(१) हिन्दुस्तानमें सर्वत्र विद्या और ज्ञान बहुत पाया जाता है। (२) दूसरे लोगोंकी भाषाको हिन्दुस्तानी बहुत आसानीसे और अच्छी तरह बोल लेते हैं, जब कि तुर्क, मुगल और अरब हिन्दुस्तानियोंकी भाषा नहीं बोल सकते। (३) ज्ञान सीखनेके लिए अन्य देशोंसे लोग हिन्दुस्तानमें आये हैं; परन्तु हिन्दुस्तानके ब्राह्मणोंने अन्य देशोंके लोगोंसे ज्ञानकी भिक्षा मांगनेके लिए कभी अपने देशकी सीमासे बाहर कदम नहीं रखा। (४) ये हिन्दुस्तानी ही तो थे, जिन्होंने 'हिन्दसा' और 'सिफर' का आविष्कार किया और जिसे बादमें यूनानियोंने भी स्वीकार किया। (५) पञ्चतन्त्र हिन्दुस्तानमें लिखा गया था। (६) शतरञ्जका आविष्कार हिन्दुस्तानियोंने किया है। (७) हिन्दुस्तानकी सङ्गीत-कला संसारके अन्य देशोंकी सङ्गीत-कलासे निश्चय ही श्रेष्ठ है। (८) ब्राह्मण अपने बुद्धि-बलसे अरस्तूके ग्रन्थोंकी धज्जियां उड़ा सकते हैं। (९) बुद्धिके प्रत्येक क्षेत्रमें हिन्दुस्तान संसारके अन्य देशोंसे कहीं अधिक आगे है। (१०) शरीर-तत्त्व, गणितकला, ज्योतिष, ग्रह-नक्षत्र-विज्ञान, सभी विषयोंमें हिन्दुस्तानी बाकी सब लोगोंसे बढ़-चढ़कर हैं। फिर, हिन्दुस्तान इसलिए भी श्रेष्ठ है कि उसने खुसरोको जन्म दिया है।"

अमीर खुसरोका जन्म १२५३ ई० में पटियालीमें हुआ था और उन्हें अपने हिन्दुस्तानी होनेका बड़ा गर्व था। उन्होंने उस कालके अन्य मुसलमान बादशाहों और सर्वसाधारण मुसलमानोंकी तरह हिन्दुस्तानको अपना लिया था। हिन्दुस्तानकी शोभा, हिन्दुस्तानकी विद्या और कला, हिन्दुस्तानकी जल-वायु और हिन्दुस्तानकी बोली, सबपर उन्हें अभिमान था। कोई आश्चर्य नहीं है, यदि अमीर खुसरोने अपनी कवितामें फारसी शब्दोंके साथ ही उपयुक्त हिन्दी शब्दोंको रखा और एक नयी प्रगतिको जन्म दिया।

अमीर खुसरोको इस देशकी बोलीसे इतना प्रेम था कि वे अपनी फारसी कवितामें भी हिन्दीके शब्दोंको रख देते थे। यह माना जाता है कि किसी अन्य कविने फारसी कवितामें इतने ज्यादा हिन्दी शब्दोंका व्यवहार नहीं किया। इस देशके फूलों, फलों, सर्वसाधारणके कामकी चीजों और देहातमें बोले जानेवाले शब्दों तकका व्यवहार वे अपनी कवितामें करते थे। उन्होंने अपनी फारसीकी कवितामें एक

लाइनमें 'साल' शब्दका व्यवहार वृक्ष-विशेषके अर्थमें किया था। फारसिमें साल शब्दका व्यवहार "वर्ष" के अर्थमें होता है। इसलिए वहां खुसरोकी कविताकी वह पंक्ति समझनेमें एक बार बड़ी कठिनाई हुई थी।

अमीर खुसरो कवि ही नहीं, सङ्गीतज्ञ भी थे। उन्होंने नये तर्जकी नौ चीजोंको निकाला था—कौल, कलबाना, तराना, खयाल, नक्श, गुल, बसीत, तिल्लाना और सोहला। ये सब फारसी और हिन्दीकी राग-रागिनियोंकी मिलावटसे तैयार किये गये थे। उनके 'कौल' के गायनसे एक बार बादशाह अलाउद्दीन खिलजी इतने प्रसन्न हुए कि उन्हें कव्वालीकी उपाधि ही दे दी।

आगामी सम्मेलन और उसके अध्यक्ष

भाषा और साहित्यकी और उसके द्वारा देश एवं मानव-समाजकी जो सेवा की जा रही हो, उसे भुलाकर यदि हममेंसे कुछ लोग तुच्छ स्वार्थोंके पीछे अपना कर्तव्य भूल जायं और वह करनेपर उतारू हो जायं जो नहीं करना चाहिए, तो इससे ज्यादा दुःखकी बात और क्या हो सकती है? हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका जो अधिवेशन पूनामें होने जा रहा था, उसके सिलसिलेमें कुछ इसी तरहकी खेदजनक घटनायें हुई हैं और नहीं कहा जा सकता कि इनका अन्त किस तरह होगा।

सम्मेलनको महाराष्ट्रके लिए काका कालेलकरके निमन्त्रण देने, पूनेमें स्वागत-समितिके बनने और उसके निर्वाचनसे राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिके सञ्चालकों—काका कालेलकर पार्टीके हट जाने, श्री वैशम्पायनके स्वागताध्यक्ष चुने जाने और बादमें सम्मेलनको बम्बईके लिए काका कालेलकरके पुनः आमन्त्रित करनेकी घटनायें सर्वसाधारणका विषय बन चुकी हैं। इन सब बातोंपर सम्मेलनकी स्थायी समितिमें विचार हुआ। स्वागत-समितिकी ओरसे श्री देशमुखने स्थायी समितिको बतलाया कि "स्वागत-समितिकी सारी कार्यवाही नियमानुकूल थी। अन्य पक्षके लोग निर्वाचनमें हराये नहीं गये, बल्कि उनके नाम ही वापिस ले लिये गये, जिससे स्वागत-समिति उन्हें चुन नहीं सकी। इस दशामें स्वागत-समितिपर पक्षपातका दोषारोपण करना और उसका निमन्त्रण अस्वीकार करना उचित न होगा।" काका कालेलकरने जो कुछ
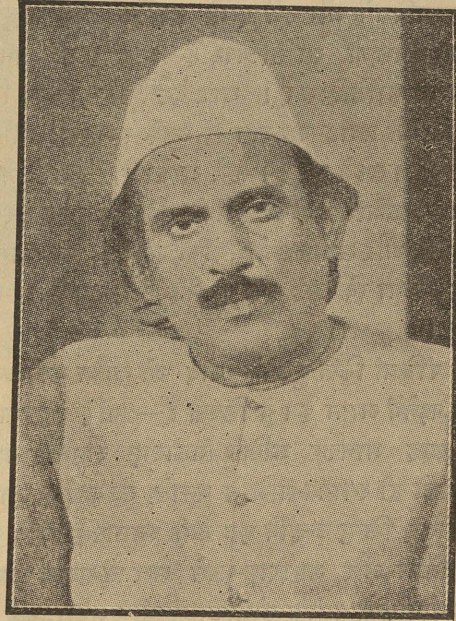
श्री सम्पूर्णानन्दजी

कहा, उसका यही तात्पर्य था कि स्वागत-समितिके सङ्गठनमें कुछ भी परिवर्तन हुए बिना उनका और उनके साथियोंका सहयोग सम्भव नहीं है।

सम्मेलनकी स्थायी समितिने अपनी उपसमितिकी सिफारिशके अनुसार "मेल-मिलापके अन्य मार्ग खोज निकालनेके लिए" यह निश्चय किया कि सम्मेलनकी तिथियां हटा दी जायं और दोनों पक्षोंके सहयोगसे पूनेमें ही सम्मेलन करानेका यत्न किया जाय। इसके लिए स्थायी समितिने एक कमेटी बना दी है, जो सम्भवतः वर्धा और पूनामें जाकर दोनों पक्षोंको मिलानेकी कोशिश करेगी।

इस विवरणसे यह तो साफ ही है कि स्वागत-समिति सम्बन्धी सारा झगड़ा किसी सिद्धान्तके लिए नहीं, स्वागत-समितिके पदों और स्थानोंके लिए है और यह बड़े खेदकी बात है। हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि स्थायी समितिने सम्मेलनको पूनेमें ही करानेके लिए सचेष्ट होनेका निश्चय किया है। सम्मेलनको जब पूनेमें करनेका निश्चय किया गया था, तब पूनेमें ही उसके होनेमें प्रतिष्ठा है।

सम्मेलनके सभापति-पदके लिए संयुक्त प्रान्तके भूतपूर्व शिक्षा-मन्त्री श्री सम्पूर्णानन्दजीका निर्वाचन सर्वथा उपयुक्त

और सामयिक है और हमें इससे हार्दिक प्रसन्नता हुई है। श्री सम्पूर्णानन्दजी साहित्यिक हैं और देशकी प्रगतिको जाननेवाले साहित्यिक हैं। आज देशमें हिन्दी और हिन्दुस्तानीका जो प्रवाह चल रहा है, उसके सम्बन्धमें भी उनके विचार बहुत सुलझे हुए हैं। हमें आशा है, वे अपने प्रभावसे स्वागत-समितिके दोनों पक्षोंको मिलाकर एक कर देनेमें समर्थ होंगे और साहित्य-प्रेमियोंको शीघ्र ही यह जाननेका अवसर मिलेगा कि उन्हें पूना चलनेके लिए कब तैयार होना चाहिए।

ये पंक्तियां लिख चुकनेके बाद श्री काका कालेलकरका वक्तव्य पढ़नेमें आया है। वे लिखते हैं—"यदि शङ्करराव देव मेरी सलाह मानकर अखिल महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिको ही स्वागत-समिति बनाते, तो कोई झगड़ा नहीं पैदा होता; किन्तु उन्होंने एक नयी स्वागत-समिति बनाना पसन्द किया और महाराष्ट्र-भरसे स्वागत-सदस्य बनाये। जब उन्होंने सभी पक्षोंके लोगोंका सहयोग मांगा, तब उनको खयाल भी नहीं था कि पूनाके चन्द लोग उसी दिन सदस्य बनकर और अपना बहुमत बनाकर उनको और उनके साथियोंको हटा देंगे।"

इससे स्पष्ट है कि काका कालेलकर और उनके साथी स्वागत-समितिके पदाधिकारियोंके स्थानोंपर जिन्हें चाहते थे, उनके नहीं चुने जानेकी ही शिकायत मुख्य है। काका कालेलकरने "उसी दिन सदस्य बनकर अपना बहुमत बना लेने" की जो बात लिखी है, वह यदि सच हो तो अनुचित है; परन्तु उसमें ऐसी कोई बात नहीं है कि साथियों समेत उनके स्वागत-समितिसे अलग हो जानेमें औचित्य समझा जा सके। सार्वजनिक संस्थाओंमें जहां बहुमतसे प्रत्येक विषयका निर्णय होता है, कार्यकर्ताओंको वैसी स्थितिके लिए पहलेसे ही तैयार रहना चाहिए।

हमें आशा है, इस विवादका अब अन्त होगा और दोनों पक्ष एक होकर सम्मेलनको सफल बनानेकी चेष्टा करेंगे।

युद्धको भयङ्कर स्थिति

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति आज इतनी गम्भीर है कि कोई भी निश्चित रूपसे यह नहीं कह सकता कि कल क्या होगा और इस अवस्थाका अन्त किस तरह होगा। जर्मनीकी दृष्टिमें आज किसी देशकी तटस्थताका कोई मूल्य नहीं है, प्रश्न केवल उसकी जरूरत और सुविधाका है। गत अप्रैलमें एक ही साथ डेनमार्क और नारवेको अचानक जर्मनीके अन्यायपूर्ण आक्रमणका शिकार होना पड़ा था। डेनमार्कने तो अपनी सैनिक स्थितिसे विवश होकर जर्मनीका मुकाबला नहीं किया और प्रतिवादके साथ जर्मनीकी जबर्दस्तीके आगे शिर झुका दिया; परन्तु नारवेने लड़नेका निश्चय किया और शक्ति-भर जर्मनोंसे मोर्चा लिया। नारवेकी सहायताके लिए यद्यपि मित्र सेनायें पहुंच गयी थीं, तथापि जर्मनीने जितनी शीघ्रतासे दक्षिण नारवेके सभी महत्त्वपूर्ण स्थानोंपर अधिकार कर लिया था, उसका परिणाम यह हुआ कि अन्तमें मित्र सेनाओंको ट्रॉण्डीमसे लौट आना पड़ा और नारवेमें ब्रिटेनकी इस विफलताके परिणाममें उस मन्त्रि-मण्डलका अन्त हुआ, जो म्यूनिक काण्ड जैसे अन्यायके लिए जिम्मेदार था और जिसकी नीतिसे जर्मनीको वर्तमान महासमरसे पहले कम प्रोत्साहन नहीं मिला था। मिस्टर चेम्बरलेनके स्थानपर आज मि० विंस्टन चर्चिल प्रधान मन्त्री हैं और रक्षा-विभागका दायित्व भी उन्हींपर है।

ब्रिटेनमें जिस समय यह परिवर्तन हो रहा था, जर्मनीने तीन अन्य तटस्थ देशों—हालैण्ड, बेल्जियम और लक्समबर्गपर आक्रमण कर दिया। जबसे युद्ध आरम्भ हुआ है, हालैण्ड और बेल्जियम बड़े यत्नसे अपनी तटस्थताकी रक्षा करते आ रहे थे; परन्तु जर्मनीने उन्हें तटस्थ नहीं रहने दिया। फ्रान्स और जर्मनीकी सीमापर जैसी सुदृढ़ मोर्चेबन्दी है, उससे पहलेसे ही हालैण्ड और बेल्जियमके जर्मन आक्रमणका शिकार होनेकी पूरी सम्भावना थी। घटनाओंने यह साबित कर दिया है कि यह सम्भावना अयथार्थ नहीं थी।

हालैण्ड, बेल्जियम और लक्समबर्गने यद्यपि जर्मनीके खिलाफ युद्ध-घोषणा की है और भयङ्कर संग्राम हो रहा है, तथापि हालैण्डकी रानी विलहेलमिना और उनकी सरकार लन्दन चली गयी है। लक्समबर्गकी डचेजने पेरिसमें आश्रय लिया है और बेल्जियमके राजाने बड़ी वीरतासे अपनी सेनाओंके साथ युद्ध-क्षेत्रमें १८ दिन तक जर्मनोंसे मोर्चा लेते रहकर अन्तमें आत्मसमर्पण कर दिया; किन्तु बेल्जियमके मन्त्रियोंने इस स्थितिको स्वीकार नहीं किया है, राजाका यह कार्य अवैध बतलाया है और अन्त तक लड़ते रहनेका निश्चय किया है। मित्र सेनायें भी उनका साथ दे रही हैं। किन्तु इस आत्मसमर्पणसे जर्मनोंके डङ्कर्क तक पहुंचनेका रास्ता साफ हो गया है।

जर्मनोंने हालैण्ड और बेल्जियमपर हमला करने और उत्तरकी ओरसे फ्रान्सकी सीमामें भी बहुत दूर तक बढ़ जानेमें एक नये कौशलसे काम लिया है, जिसकी पहले कल्पना भी नहीं की गयी थी। नारवेपर आक्रमण करनेके समय जर्मनोंने हवाई जहाजोंसे छतरीके सहारे सैनिकोंको उतारनेकी नीतिका परिचय दिया था; परन्तु हालैण्ड और बेल्जियमपर आक्रमण करनेमें इस तरीकेसे इतने अधिक सैनिकोंको उतारा गया कि चकित रह जाना पड़ा। जर्मनों-ने जिस दूसरे तरीकेसे काम लिया, वह यह था कि थोड़े-से

सैनिकोंकी टुकड़ियां तेज मोटर-साइकिलों और अन्य मोटरों-पर बड़ी शीघ्रतासे आगे बढ़ जातीं और ऐसे स्थानों तक जा पहुंचतीं, जहां साधारणतः उनके इतने शीघ्र पहुंचनेकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इन टुकड़ियोंके पीछे जर्मनीकी आधुनिक यन्त्रोंसे सुसज्जित सेना उन स्थानोंमें अपनी स्थिति सुदृढ़ बनानेके लिए बढ़ती। आक्रमण करनेमें जर्मन सेनाओंने आरम्भमें जो वेग दिखलाया, उससे सभीको चकित रह जाना पड़ा; परन्तु उसके बाद तो फ्रान्स और ब्रिटेनकी सेनाओंने जिस तरह साहसके साथ जर्मनीका मुकाबला किया है, उससे पेरिसकी ओर जर्मनीकी गति रुक गयी है और कितने ही स्थानोंसे जर्मनोंको पीछे हटा दिया गया है। जिस समय ये पंक्तियां लिखी जा रही हैं, जर्मनी कैलेकी ओर बढ़नेका प्रयत्न कर रहा है—यद्यपि जर्मनीकी ओरसे कैलेपर अधिकार कर लेनेका दावा किया गया है। इंगलिश चैनलके इस पार फ्रान्समें कैले और उस पार ब्रिटेनमें डोवर है। जर्मनीकी यह प्रगति बतला रही है कि वह इंगलैण्डपर सीधा आक्रमण करनेके लिए उपयुक्त स्थानपर अधिकार कर लेना चाहता है।

नारवे, हालैण्ड, बेल्जियम, लक्समबर्ग और फ्रान्सके उत्तरी भागमें असैनिक जनताके साथ जर्मन सैनिक जो अत्याचार कर रहे हैं, जिस बर्बरताका परिचय दे रहे हैं और राक्षसी वृत्तिसे जिस तरह बम बरसाकर स्त्रियों, बच्चों, बूढ़ों और निःशस्त्र जनताको भून रहे हैं, उसकी कल्पनासे ही दिल दहल उठता है। अमेरिकाके प्रेसीडेण्ट रूजवेल्टके शब्दोंमें "यूरोपके इस भयङ्कर नर-संहार और जर्मनीके बर्बर अत्याचारोंकी ऐसी बातें सुननेमें आयी हैं, जिनपर सहसा विश्वास नहीं होता और जिन्हें सुनकर संयुक्तराज्य अमेरिकाको बड़ा धक्का लगा है।"

बहुत दिनों तक युद्ध चलानेकी दृष्टिसे जर्मनीकी अवस्था ठीक नहीं है। सम्भवतः इसीलिए जर्मनी इस समय अपनी सारी शक्ति लगाकर आक्रमण कर रहा है। एक समाचारमें यह भी बतलाया गया था कि हिटलरने नाजी अफसरोंकी कान्फरेन्समें १९ अगस्त तक शान्ति स्थापित कर देनेकी प्रतिज्ञा की है। १९ अगस्त तक शान्ति स्थापित हो सकेगी या नहीं, यह आज किसीके लिए भी कहना कठिन है; परन्तु जो बात सब देख रहे हैं, वह यह है कि युद्ध अपने महाभयङ्कर रूपमें अब आरम्भ हुआ है और इससे भी अधिक भयङ्कर रूपमें आगे उसके प्रकट होनेकी सम्भावना है। साथ ही यह भी निश्चित है कि आज फ्रान्स और बेल्जियममें जो भयङ्कर युद्ध हो रहा है, उसके परिणामपर युद्धकी भावी दिशा निर्भर है। यह दिशा जाननेके लिए संसारको अभी कुछ समय तक यूरोपकी घटनाओंकी प्रतीक्षा करनी होगी।

जर्मन सेनाकी पांचवीं श्रेणी

जर्मन सेनाकी पांचवीं श्रेणी क्या बला है? हालैण्डपर जर्मनीका आक्रमण होनेसे पहले उसका नाम बहुत कम सुननेमें आया था; परन्तु उसके बाद उसके सम्बन्धमें जो कुछ मालूम हुआ है, वह विभिन्न देशों, खासकर यूरोपके विभिन्न देशोंको चौकन्ना और सतर्क कर देनेके लिए काफी है। कहते हैं कि यह जर्मन सेनाका गुप्त सङ्गठन है। जर्मनी-को जिन देशोंकी अवस्था अपने उद्देश्योंके अनुकूल बनानी होती है, उनमें वह अपनी सेनाकी इस श्रेणीका उपयोग करता है। उन देशोंमें जो जर्मन पहलेसे ही बसे रहते हैं, वे इस श्रेणीसे सम्बन्ध जुड़ जानेके बाद पहले तो उस देशके लोकमतको जर्जर करनेका प्रयत्न करते हैं। इसके लिए वे उन देशोंकी वर्तमान सरकारके विरुद्ध राजनीतिक पार्टियों और अल्प-संख्यक आन्दोलनका उपयोग करते हैं। यूगोस्लाविया-में यही हुआ। जर्मनीका जिस क्षेत्रपर अधिकार हो गया है, उसमें रहनेवालोंके जो स्वजन-सम्बन्धी शरणार्थी बनकर अन्य देशोंमें चले गये हैं, उनका भी उपयोग किया जाता है। सैनिक महत्त्वकी बातोंको जानकर जर्मन अधिकारियोंके पास पहुंचाना भी इस श्रेणीके सैनिकोंका काम है। वैसे ये सैनिक गुप्त रहकर अपना काम करते हैं; परन्तु उपयुक्त समय आनेपर बेतारके स्टेशनों, टेलीफोन-घरों और बिजलीके कारखानों आदि महत्त्वपूर्ण स्थानोंपर अधिकार कर लेना भी इनके कार्यक्रममें शामिल है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सङ्गठन बिलकुल चुस्त और खूब व्यापक होनेपर भी उसका भेद नहीं फूटता। हालैण्डमें जब जर्मनीका हमला हुआ और हवाई जहाजोंसे छतरीके सहारे असंख्य सैनिक जगह-जगह उतरे, पांचवीं श्रेणीके इस सङ्गठनसे उन्हें बड़ी सहायता मिली, हालैण्डमें पांचवीं श्रेणीके जो गुप्त सैनिक पहलेसे ही थे, उन्होंने बड़ी सहायता पहुंचायी।

हालैण्डमें जर्मन सेना-विभागके इस सङ्गठनका जो रूप देखनेमें आया और उसने जिस तरह अपना काम किया,

उससे फ्रान्स, ब्रिटेन और यूरोपके अन्य देशोंका पहलेसे ही सावधान होना स्वाभाविक ही है। इस पांचवीं श्रेणीके सङ्गठनसे केवल यूरोपके देश ही सतर्क नहीं हुए हैं, अमेरिका तकको चौकन्ना होनेकी जरूरत पड़ गयी है। उस दिन प्रेसीडेण्ट रूजवेल्टने जर्मन सेनाकी इस श्रेणीका उल्लेख करते हुए कहा—"जासूसों, भेदियों और विश्वासघातियोंके साथ कड़ी कार्यवाही की जानी चाहिए। नये दलोंको छोड़ा जा रहा है। जो भयावह स्थिति सामने है, उसमें हममें फूट डालने और हमें कमजोर बनानेके लिए योजनापूर्वक प्रचार-कार्य आरम्भ हो रहा है। फूट डालनेवाले ये दल विष हैं, असली रूपमें विष हैं और पुरानी दुनियाकी तरह इन्हें नयी दुनियामें नहीं फैलना चाहिए।"

युद्ध और अमेरिका

वर्तमान महासमरके आरम्भसे ही सारे संसारकी दृष्टि अमेरिकाकी ओर लगी हुई है। इसका एक खास कारण यह भी है कि गत महासमरके आरम्भमें अमेरिका मित्रराष्ट्रोंके साथ नहीं था, परन्तु बादमें वह साथ हो गया और ऐसे समयमें साथ हुआ कि मित्र-पक्षकी विजय निश्चित हो गयी। वर्तमान युद्ध आरम्भ होनेसे पहले ही अमेरिकाने यूरोपके झगड़ोंसे तटस्थ रहनेकी नीति ग्रहण कर रखी थी। स्पेनके गृह-युद्धको अभी बहुत समय नहीं बीता है, जब अपनी तटस्थताकी रक्षा करनेके लिए अमेरिकाने बड़ी शीघ्रतासे कानून बनाकर जहाजपर लदी हुई युद्ध-सामग्रीको नहीं चलने दिया था। जहां तक वर्तमान युद्धका सम्बन्ध है, अमेरिका अपनी तटस्थताके उस रूपमें उचित सुधार कर चुका है और आज अमेरिकाके कारखाने मित्रराष्ट्रोंके लिए ५० हजार हवाई जहाज और अन्य युद्ध-सामग्री बनानेमें लगे हुए हैं और प्रेसीडेण्ट रूजवेल्ट एवं अमेरिकन सरकारके प्रमुख व्यक्तियोंका प्रत्येक शब्द यह बतला रहा है कि उनकी हार्दिक सहानुभूति मित्रराष्ट्रोंके साथ है; परन्तु अमेरिकामें ऐसा भी एक दल है और वह दल काफी शक्तिशाली है, जो यह चाहता है कि अमेरिका इस युद्धसे बिलकुल अलग रहे। इस दलका ख्याल है कि यूरोपमें नर-संहार होता है तो होता रहे, अमेरिकाका उससे क्या बिगड़ता है; मानवताके नामपर जो सहायता की जा सकती हो, वह करनी चाहिए; परन्तु युद्धसे दूर ही रहना चाहिए। दूसरा पक्ष इससे पूर्ण सहमत नहीं है। उसका विचार है कि युद्धसे रहना तो दूर ही चाहिए; परन्तु यह सोचना ठीक नहीं है कि यूरोपमें जो युद्ध हो रहा है, उसका अमेरिकापर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। प्रभाव तो पड़ ही रहा है और ज्यों-ज्यों अधिक समय बीतता जा रहा है, प्रभाव भी अधिकाधिक बढ़ रहा है।

यूरोपकी घटनाओंकी प्रतिक्रिया अमेरिकापर जिस रूपमें हो रही है, उससे अमेरिकाको युद्धसे अलग रखनेवाले पक्षकी आवाज कुछ मन्द होती जा रही है। उस दिन हालैण्डके एक जनरलने जब आत्मसमर्पण किया, अमेरिकाके पत्रोंने खुले रूपमें अमेरिकाका हस्तक्षेप होनेकी सम्भावना प्रकट की। नारवे, हालैण्ड, बेल्जियम और लक्समबर्गके साथ जर्मनीने न्यायके विरुद्ध जो जबर्दस्ती की है, उससे अमेरिकाकी तटस्थताके पक्षकी बड़ी क्षति हुई है। गत मईके अन्तिम सप्ताहमें प्रेसीडेण्ट रूजवेल्टने कहा है कि "अमेरिकाके सबसे अलग रहनेका ख्याल व्यर्थ है। सबसे अलग रहनेके इस सिद्धान्तके आधारपर जो रक्षा-नीति स्थिर की जायगी, उससे भविष्यमें दूसरोंको आक्रमण करनेका प्रोत्साहन मिलेगा। पिछले दो सप्ताहोंकी घटनाओंने सबसे अलग रहनेके पक्षपातियोंका भ्रम दूर कर दिया है। उनका यह भ्रम दूर हो गया है कि अमेरिका दूर और अलग है, इसलिए जो खतरे दूसरे देशोंको हैं, वे अमेरिकाको नहीं।" इन सब बातोंसे पता चलता है कि अमेरिकाका लोकमत स्थितिकी गम्भीरताको धीरे-धीरे अनुभव कर रहा है और हवाका रुख बतला रहा है कि वह इस युद्धको अनिश्चित काल तक यों ही नहीं देखता रह सकता।

गत महासमरमें अमेरिकन सेनाओंके कमाण्डर जनरल परशिङ्ग थे। उन्होंने पिछले दिनों यह कहा है कि "कोई नहीं कह सकता कि हमें युद्धमें कब फंस जाना पड़े।" जहां तक अमेरिकाका प्रश्न है, जनरल परशिङ्गका कथन ठीक प्रतीत होता है।

इटलीका रुख

इटलीकी सहानुभूति तो जर्मनीकी ओर है ही, एक बार तो ऐसा भी मालूम होने लगा कि जर्मनीका साथी बनकर उसका युद्धमें शामिल होना, कुछ दिनोंका प्रश्न है। इटलीमें छात्रोंके प्रदर्शन बढ़ रहे हैं। इन प्रदर्शनोंमें मित्र-राष्ट्र-विरोधी नारे लगाये जाते हैं। मिलानमें छात्रोंके एक

प्रदर्शनमें कहा गया कि "जर्मनी चिरञ्जीवी हो, फ्रान्स और ब्रिटेनकी मृत्यु हो।" छात्रोंने दीवालोंपर यह भी लिख दिया—"हम लन्दनमें हिटलरको और पेरिसमें मुसोलिनी-को चाहते हैं।" इसी तरहके प्रदर्शन इटलीके कितने ही नगरोंमें हुए हैं, जिनमें "अभी नहीं, तो कभी नहीं" की ध्वनिसे आकाश गुंजाया गया है। इटलीमें ब्रिटिश विरोधी भावोंकी गहराईका कुछ अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि लार्ड हारविकेको एक क्रीड़ा-गृहमें इसीलिए एक तमाचा खाना पड़ा कि उन्होंने अपने सामनेकी मेजसे एक ब्रिटिश विरोधी पर्चेको नीचे गिरा दिया था।

इटली यह अनुभव करता है कि भूमध्य सागर उसका क्षेत्र है और उसपर केवल इटलीका ही प्रभुत्व होना चाहिए। उसे भूमध्य सागरपर किसी अन्य शक्तिका प्रभाव स्वीकार नहीं है। लन्दनमें इधर आयी हुई रिपोर्टोंके अनुसार गत २१ अप्रैलको सीन्योर मुसोलिनीने फासिस्टोंकी एक सभामें कहा कि "जो परिस्थिति है, उसमें हम हमेशा ही तमाशाई नहीं रह सकते। हमें तैयार होना चाहिए। हम सचमुच जिब्राल्टर और स्वेजके बीच कैद हैं।"

यह मनोभाव होनेपर भी इटली अभी तक तटस्थ बना हुआ है। इसमें रहस्य कुछ भी नहीं है। भूमध्य सागरमें इटलीको यदि अपने प्रभुत्वका विस्तार करना हो, तो उसे अपनी नौ-शक्तिका विस्तार पहले करना होगा। मालूम होता है, अभी तक इस दृष्टिसे इटली पूरी तरह तैयार नहीं है। पिछले दिनों इटालियन सिनेटमें जल-सेना सम्बन्धी बजट पेश करते हुए एडमिरल कावानारीने कहा था कि "३५ हजार टनका चौथा जङ्गी जहाज जूनमें समुद्रमें उतार दिया जायगा। ३४०० टनके कई क्रूजर बनकर तैयार हो जानेवाले हैं और निश्चित समयपर पूरे हो जायेंगे। पन-डुब्बियां करीब-करीब तैयार हो चुकी हैं।" इस स्थितिमें इटलीके इन प्रदर्शनोंका कारण यही मालूम होता है कि उसे मित्र-राष्ट्रोंकी शक्ति बंटाये रखना अभीष्ट है। देखा गया है कि जर्मनीने जब-जब कोई जोरदार आक्रमण किया, इटलीमें उसके पहले या साथ ही प्रदर्शनोंका जोर बढ़ गया है।

———

नये भारतमन्त्री और उनकी नीति

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलमें इधर जो परिवर्तन हुआ है, मि० चेम्बरलेनकी जगहपर मि० चर्चिल प्रधान मन्त्री और लार्ड जेटलैण्डकी जगहपर मि० एमेरी भारत-मन्त्री हुए हैं, यह इस देशकी दृष्टिसे कैसा है ? यह प्रश्न बहुत लोगोंके मनमें उठ सकता है और उठता है। जहां तक स्वदेशकी राजनीतिक समस्या हल होनेकी बात है, वह इसी देशवासियोंके सङ्कल्प, सङ्गठन और त्यागपर निर्भर है और हमारा यह विश्वास कभी नहीं रहा है कि समुद्र-पार बैठे हुए कोई चर्चिल या एमेरी यह समस्या हल कर सकते हैं। अलबत्ता, यदि ब्रिटिश अधिकारियोंमें सद्विवेक, दूरदर्शिता और समयकी प्रगतिको जाननेकी क्षमता हो, तो वे भारत और ब्रिटेनके पारस्परिक सम्बन्धको सद्भावपूर्ण बनाये रखनेमें सहायक हो सकते हैं। खेद है कि मि० चर्चिल और मि० एमेरी इस कोटिके ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंमें नहीं हैं।

मि० चर्चिल अपनी साम्राज्य-भक्तिके लिए विख्यात हैं, वे ब्रिटिश साम्राज्यका एक कोना भी इधरसे उधर नहीं होने देना चाहते। इस देशकी महत्त्वाकांक्षाओंका तो उन्होंने हमेशा ही विरोध किया है। मार्च १९३१ में इण्डियन एम्पायर सोसायटीके तत्वावधानमें एक सभा मार्लबरोके ड्यूककी अध्यक्षतामें 'हिन्दुस्तानमें हमारा कर्तव्य' इस विषयपर विचार करनेके लिए हुई थी। उसमें मि० चर्चिलने कहा था—"मैं गांधीको आत्मसमर्पण करनेके विरुद्ध हूं। मैं इन वार्तालापों और समझौतोंके खिलाफ हूं, जो लार्ड इरविन और मि० गांधीके बीच हो रहे हैं। गांधी चाहते हैं हिन्दुस्तानसे ब्रिटेनको निकाल देना, ब्रिटेनके व्यापारको हमेशाके लिए उठा देना और ब्रिटिश शासनके बजाय ब्राह्मणोंका प्राधान्य स्थापित करना। गांधीके साथ कभी आपका समझौता नहीं हो सकेगा।......प्रत्येक ब्रिटिश स्वार्थ, आवश्यक संरक्षण और शान्ति रखने एवं उन्नति करनेके साधनोंको छोड़कर अगर गांधीके साथ समझौता किया, तो उसी समयसे हिन्दुस्तानमें गांधीका प्रभाव नहीं रह जायगा।........गांधीके पीछे भागना, उनकी बातोंको मानकर कोई कार्य करनेकी कोशिश करना और यह सोचना कि मि० रामजे मैकडानल्ड, मि० गांधी और लार्ड इरविन हिन्दुस्तानमें शान्ति बनाये रख सकेंगे, उन्नति कर सकेंगे, सपनेको कार्यान्वित करना है। इसका परिणाम जागनेपर भयङ्कर होगा। इन भयावह मार्गोंसे समय और शक्ति रहते हट जाओ।"

गांधी-इरविन समझौता हो जानेपर १९३१ में ब्रिटिश पार्लमेण्टमें मि० चर्चिलने कहा था—"हमारा मत है कि भारतीय जनताकी भलाईका दायित्व ब्रिटिश पार्लमेण्टपर है और व्यवहारतः उसे छोड़ा नहीं जा सकता। पार्लमेण्ट यदि कोई वैधानिक परिवर्तन करना चाहे, तो यह भारतीय लोकमतके गरम दल या किसी अन्य दलके साथ समझौता होनेपर निर्भर नहीं है—यद्यपि इन दलोंकी रजामन्दी खुशीकी बात होगी। वे केवल इसी बातपर निर्भर हैं कि हिन्दुस्तानकी जनताके प्रति हम अपना सही-सही कर्तव्य पूरा करें। यदि हिन्दुस्तानियोंको और अधिक निर्णायक अधिकार दिये जायं, तो परीक्षणके रूपमें देना चाहिए, उनपर लगातार निगाह रखनी चाहिए और यदि अधिकारोंका दुरुपयोग हो, उनसे ठीक तरहसे काम न लिया जाय, तो उन्हें लौटा भी लेना चाहिए।"

यही मि० चर्चिल हैं, जिनके हाथमें आज ब्रिटिश साम्राज्यकी बागडोर है। यह हम मानते हैं कि जिम्मेदारी बहुधा चौकड़ी बन्द कर देती है, मनुष्यको बहुत सोच-समझकर बोलनेके लिए विवश कर देती है; परन्तु अभी तक यह माननेके लिए कोई कारण नहीं है कि मि० चर्चिलने इस देशकी राजनीतिक समस्याओंके सम्बन्धमें अपना वह दृष्टि-कोण बदल दिया है।

अब देखना चाहिए कि भारत-मन्त्री मि० एमेरीके पूर्व विचार क्या थे और इस समय वे क्या कह रहे हैं? मि० एमेरीके राजनीतिक विचार उदार हैं। उनका विश्वास 'स्वशासन' में है। ब्रिटिश पार्लमेण्टमें जब वर्तमान भारतीय विधानपर विचार हो रहा था और मि० चर्चिल सुधारोंकी प्रगतिपर जो आक्षेप करते थे, उनका करारा उत्तर मि० एमेरी दिया करते थे। इन्होंने एक बार ऐसे ही अवसरपर पार्लमेण्टमें कहा था—"अतीत कालमें हमने जहां कहीं स्वशासनाधिकार दिये हैं, सफलता मिली है।......यदि हम इस समय कार्य करें, हमारे देरी करनेके फलस्वरूप निराशा-से सारे हिन्दुस्तानका जी खट्टा हो जाय और कटुता पैदा हो जाय, इससे पहले ही कुछ कर गुजरनेका अभी समय है। अलबत्ता, इसमें खतरे हैं; परन्तु इस साम्राज्यको बनानेमें अनेक बार हमने महान् कार्य करनेका साहस किया है और ये कार्य सफल हुए हैं।"

मि० एमेरीके विचार यहीं तक सीमित नहीं हैं। भारत-मन्त्रीके पदका उत्तरदायित्व संभालनेके लगभग १ महीने पहले उन्होंने कहा था—"हिन्दुस्तान स्वतन्त्रता पानेके योग्य होनेकी स्थितिमें पहुंच गया है। जहां तक मानसिक उन्नतिका प्रश्न है, हिन्दुस्तान एशियाके सभी राष्ट्रोंमें सबसे बढ़कर है। ब्रिटिश पार्लमेण्टके सभी मेम्बर चाहते हैं कि हिन्दुस्तानकी शिकायतोंको जल्दीसे जल्दी दूर किया जाना चाहिए। जानकारी रखनेवालोंने सब बातोंके विषयमें अच्छी तरह तलाश कर लिया है और प्रत्येकको यह विश्वास हो गया है कि अपना प्रबन्ध स्वयं करनेकी योजना बना सकनेकी स्थितिमें हिन्दुस्तान हो गया है, शर्त यही है कि सभी सम्प्रदायोंमें वह समझौता भी कर सके। हमने घर बनानेमें हिन्दुस्तानियोंकी सहायता की; परन्तु यदि वे अपना घर फिर बनाना चाहते हों, ब्रिटेनको उसपर आपत्ति नहीं हो सकती—किन्तु यह घर होशियारीसे अच्छी तरह बनाया जाना चाहिए, जिससे भविष्यमें गिर न पड़े। मेरी रायमें हिन्दुस्तानके लिए विभिन्न प्रान्तोंके १०-१२ प्रतिनिधियों-की विधान परिषद् उपयुक्त होगी। ये प्रतिनिधि यूरोपियनों समेत सभी वर्गोंके प्रतिनिधि होने चाहिए।"

भारत-मन्त्री मि० एमेरीके इन विचारोंको जब हम उनके पार्लमेण्टवाले बयानमें खोजते हैं, तब बड़ी निराशा होती है और मालूम होता है कि वे पहलेकी अपनी सारी बातें भूल गये हैं। उस दिन उन्होंने पार्लमेण्टमें भारत-सम्बन्धी नीति बतलाते हुए कहा कि "हमारा ध्येय है ब्रिटिश राज्यसङ्घमें हिन्दुस्तान द्वारा स्वतन्त्र और समान साझेदारी प्राप्त किया जाना। हम यह मानते हैं कि यह काम स्वयं हिन्दुस्तानियोंका है कि वे हिन्दुस्तानकी परिस्थिति और दृष्टिकोणके लिए उपयुक्त विधान तैयार करनेमें महत्त्वपूर्ण भाग लें। युद्धके अन्तमें वर्तमान विधान-की योजना और जो नीति और योजना उसके आधार-भूत हैं, उसपर पुनः विचार करनेका जो वचन दिया जा चुका है, उसका अभिप्राय यह है कि वैसा आपसी वाद-विवाद और समझौतेकी बातचीतसे होगा, कोई निर्णय लादकर नहीं। सभी सम्प्रदायों और स्वार्थोंमें सर्वसम्मत उचित समझौता होनेका रास्ता साफ होनेके लिए जो कुछ करनेकी जरूरत हो, उसमें देरी करनेकी हमारी इच्छा नहीं है। इसके विपरीत वैसा समझौता होनेमें अपने हिस्सेका कार्य करनेके लिए हम बहुत उत्सुक हैं; परन्तु इस समय कठिनाई यह है कि हिन्दुस्तानमें तीव्र मतभेद है, जिसका प्रभाव भावी विधान सम्बन्धी मौलिक प्रश्नोंपर और इस समस्यापर विचार करने तक पर पड़ रहा है। मैं यह नहीं मानता कि यह मतभेद मिट नहीं सकता। किसी-न-किसी तरह ऐसा कोई अस्थायी उपाय निकालना मैं हिन्दुस्तानी राज-नीतिज्ञोंकी शक्तिके बाहर नहीं समझता कि प्रान्तोंमें पद स्वीकार कर लिये जायं और शासन-सभाओंमें जनताके प्रतिनिधियोंको नियुक्त किया जा सके।"

भारत-मन्त्रीके इस वक्तव्यसे स्वदेशकी राजनीतिक परि-स्थितिमें कोई अन्तर नहीं हुआ है। इसमें उन्हीं सब बातों-का पिष्ट-पेषण है, जिन्हें उनसे पहलेके अधिकारी कह चुके हैं। कांग्रेस विधान-परिषद् चाहती है, जिसे स्वदेशके लिए

शासन-विधान बनानेका पूरा अधिकार हो। भारत-मन्त्री यह विधान बनानेमें हिन्दुस्तानियोंका भी "महत्त्वपूर्ण भाग" रहनेकी बात कहते हैं। साम्प्रदायिक समस्या सम्बन्धी "तीव्र मतभेद" तो एक बहाना मात्र है, जिसका हमारे जन्मसिद्ध अधिकारके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तो हमारी घरेलू समस्या है, जिसे किसी न किसी तरह हल कर ही लिया जायगा; परन्तु इसकी आड़में इस देशका अपना विधान स्वयं तैयार कर सकनेका अधिकार तो अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। भारत-मन्त्री हमारा यह स्वभाग्य-निर्णयका अधिकार अस्वीकार कर रहे हैं, यही खेदका विषय है। ब्रिटिश अधिकारियोंने जिस ढङ्गसे साम्प्रदायिक समस्याको रखा है, उससे अभी तक उस तीव्र मतभेदको प्रोत्साहन ही मिला है, जिसे मिटाया जा सकता है और जिसके दूर होनेका सर्वोत्तम उपाय महात्मा गांधीने सुझाया है; परन्तु मि० एमेरीने महात्मा गांधीके अनुभवसे लाभ न उठाकर पहलेके अधिकारियोंके स्वरमें स्वर मिलानेका प्रयत्न किया है। औपनिवेशिक पदके ध्येयकी बात तो देशवासी एक युगसे सुनते आ रहे हैं और यह आज भी उतनी ही दूर है, जितना पहले कभी था।

उत्तरदायित्व आ पड़नेपर, बातें बनानेका समय बीत जानेके बाद कुछ कर दिखलानेका अवसर आनेपर किसी व्यक्तिके विचारोंमें कितना अन्तर हो सकता है, इसका एक उदाहरण नये भारत-मन्त्री मि० एमेरी हैं।

चिन्ताका विषय

देशकी जन-संख्या जिस हिसाबसे बढ़ रही है, उसी हिसाबसे यदि शिक्षाका भी प्रसार हो, तो अनन्त काल तक वह दिन नहीं आ सकता, जब इस देशसे निरक्षरता बिलकुल ही दूर हो जायगी; परन्तु यहां तो अवस्था ही कुछ और है—देशकी जन-संख्या जिस अनुपातमें बढ़ रही है, उसी अनुपातमें शिक्षाका प्रसार नहीं हो रहा है। १९२१-३१ तक जन-संख्याकी औसत वृद्धि जहां १० प्रतिशत है, वहां साक्षर जनोंकी संख्यामें कुल १ प्रतिशत वृद्धि हुई है। इसका अभिप्राय यह है कि देशमें निरक्षरताका प्रसार हो रहा है। यह बड़े खेदका विषय है और इसकी कोई सीमा नहीं रहती, जब यह मालूम होता है कि जो बच्चे पढ़ना-लिखना आरम्भ करते हैं, उनमेंसे लगभग ७२ प्रतिशत साक्षर होनेसे पहले ही स्कूल छोड़ देते हैं। यहां यह मान लिया गया है कि किसी व्यक्तिको साक्षर होनेके लिए कमसे कम प्राइमरी स्कूलकी चतुर्थ श्रेणी तककी शिक्षा होनी ही चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि नाम लिखानेके बाद प्रतिशत ७२ लड़के चतुर्थ श्रेणी तक पहुंचनेसे पहले ही पढ़ना-लिखना बन्द कर देते हैं और प्राथमिक शिक्षापर जो ७ करोड़ रुपया व्यय होता है, उसका अत्यधिक भाग एक तरहसे व्यर्थ ही चला जाता है। यद्यपि चतुर्थ श्रेणी तक पहुंचनेवाले छात्रोंकी संख्या बढ़ रही है, १९२७-३२ में जहां वह ४१८६००० थी, वहां १९३२-३७ में ४९३३००० हो गयी, तथापि यह तो मानना ही होगा कि ७२ प्रतिशत छात्रोंका चतुर्थ श्रेणी तक न पहुंचना बड़ी चिन्ताका विषय है। सरकारी रिपोर्टमें इसका मुख्य कारण यह बतलाया गया है कि बच्चे जहां थोड़े बड़े होकर इस लायक हुए कि माता-पिताके काममें सहायता पहुंचा सकें, हाथ बंटा सकें, वैसे ही उन्हें स्कूलसे उठा लिया जाता है। इसके सिवाय अन्य कारण भी हैं, जैसे कितने ही स्कूलोंमें प्राइमरी तककी शिक्षाकी व्यवस्था न होना, योग्य अध्यापकोंका काफी संख्यामें न होना, प्रभाव-शून्य शिक्षाप्रणाली और निरीक्षणकी व्यवस्था आदि। इन सब बातोंके अलावा एक अन्य कारण यह भी है कि लोगोंको इस बातके लिए कोई प्रोत्साहन नहीं दिया जाता कि उन्हें अपने बच्चोंको पढ़ाना चाहिए और स्कूलमें नाम लिखानेके बाद कमसे कम प्राइमरीकी चतुर्थ श्रेणी तक शिक्षाको जरूर जारी रखना चाहिए। यही कारण है कि इस देशमें निरक्षरताने डेरा डाल दिया है और अभी उसके पैर उखड़नेकी कोई सूरत सामने नहीं है।

जहां हिन्दू शवदाह नहीं कर सकते

ट्रिनीडाड ब्रिटिश साम्राज्यका उपनिवेश है और देशवासियोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि वहां रहनेवाले हिन्दुओंको अपना अन्त्येष्टि-संस्कार तक धर्मविधिके अनुसार करनेकी सुविधा नहीं है। हिन्दुओंको सार्वजनिक स्वास्थ्यके नामपर अपने मुर्दोंको जलाने नहीं दिया जाता और मजबूर होकर उन्हें जमीनमें गाड़ना पड़ता है। यह कहा जाता है कि आस-पास जो अन्य लोग रहते हैं, उन्हें

शवदाहपर आपत्ति है। यह अवस्था केवल ट्रिनीडाडकी ही नहीं है, ब्रिटिश गायना और जमैकामें भी हिन्दुओंको अपना मुर्दा जलानेके अधिकारसे वञ्चित रखा गया है—यद्यपि हिन्दू इस बातके लिए तैयार हैं कि श्मशानके लिए ऐसी जगह निश्चित कर दी जाय कि सार्वजनिक स्वास्थ्यको क्षति न पहुंचे, वह स्थान चारों ओरसे घिरा हुआ हो जिससे किसीको आपत्ति न हो और शवकी भस्म किसी नदीमें प्रवाहित न कर समुद्रमें छोड़ी जाय। शव-संस्कारकी भांति ही एक अन्य समस्या है विवाह। ब्रिटिश गायना, जमैका और ट्रिनीडाडका कानून हिन्दू-विवाह-विधिको नहीं मानता, जब तक उसकी रजिस्ट्री न करा ली गयी हो। ब्रिटिश गायनामें तो कानूनन् विवाह होनेसे पहले उसके सम्बन्धमें सरकारी सार्टिफिकेट ले लेना आवश्यक है। यदि यह सार्टिफिकेट न लिया जाय और विवाह कर लिया जाय, तो उसे जायज नहीं माना जाता और न उस विवाहकी सन्तान जायज समझी जाती है। इसी तरह यदि विवाहसे पहले सार्टिफिकेट ले लिया जाय; किन्तु यदि उसकी रजिस्ट्री न करायी जाय, तो भी विवाह नाजायज हो जाता है। यह स्थिति बहुत ही शोचनीय है और इसके कारण ट्रिनीडाड, ब्रिटिश गायना और जमैकाके प्रवासी हिन्दुओं और उनके उत्तराधिकारियोंको नित्य ही बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। लगभग डेढ़ वर्ष पहले १९३८ के नवम्बर-दिसम्बरमें एक रायल कमीशन ऊपर बतलाये हुए उपनिवेशोंकी अवस्था देखने गया था और उस समय प्रवासी हिन्दुस्तानियोंकी शिकायतें कमीशनके सामने रखनेके लिए मि० जे० डी० टाइसनको भेजा गया था। यह सब हुआ; परन्तु हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिमें अभी तक कुछ भी अन्तर नहीं आया है और सामाजिक और धार्मिक ही नहीं, राजनीतिक शिकायतें भी ज्योंकी त्यों बनी हुई हैं। साम्राज्य-परिषद्ने मुद्दत हुई, उपनिवेशोंमें हिन्दुस्तानियोंको समान सुविधायें दिये जानेका प्रस्ताव पास कर दिया था; परन्तु वैसा प्रस्ताव पास कर देनेका अर्थ ही क्या है, जब हम देखते हैं कि प्रायः सभी उपनिवेशोंमें प्रवासी हिन्दुस्तानियोंको कितनी ही सुविधाओंसे वञ्चित रख छोड़ा गया है और कई उपनिवेशोंमें तो प्रस्ताव पास हो जानेके बाद भी कितने ही अधिकारोंको छीन लिया गया है। प्रवासी भाइयोंकी यह परिस्थिति मातृभूमिकी अवस्थाकी छाया-मात्र है और जब स्वदेश अपना गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करेगा, उनकी परिस्थिति भी बदल जायगी।

जहाज-निर्माणका व्यवसाय

स्वदेशका समुद्र-तट लगभग ५००० मील लम्बा है, फिर भी जहाजका उद्योग-धन्धा अत्यन्त शोचनीय अवस्थामें पड़ा हुआ है। जहाजके उद्योग-धन्धेसे हमारा अभिप्राय है जहाज बनाना और अन्य देशों तथा भारतके बीच जहाजोंको चलाना—माल और यात्रियोंको ले जाना और ले आना। इस उद्योग-धन्धेके महत्त्वपूर्ण होनेका कारण एक और भी है और वह यह है कि इतना लम्बा समुद्र-तट रखकर हमें उसकी रक्षा करनेमें भी तो समर्थ होना चाहिए। इस दृष्टिसे आज हम निश्चित रूपसे ब्रिटिश जल-सेनापर निर्भर हैं और भारतीय जल-सेना हमारी आवश्यकताकी दृष्टिसे कुछ भी नहीं है। जहां तक यात्रियों और मालको लाने और ले जानेका प्रश्न है, इस उद्योगपर अन्य देशोंकी जहाजी कम्पनियोंने दखल कर रखा है और भारतीय समुद्र-तटके स्थानोंके बीच ही भारतीय जहाज माल ढोते और यात्रियोंको ले जाते हैं और इसमें भी कभी-कभी विदेशी कम्पनियोंके जहाजोंके साथ कठोर स्पर्धाका सामना करना पड़ जाता है। इन कठिनाइयोंके बीच कौन यह आशा कर सकता है कि जहाजोंका उद्योग-धन्धा पनप सकता है, यदि सरकार उसे समुचित प्रोत्साहन और यथेष्ट संरक्षण न दे। इस उद्योग-धन्धेकी ओर सरकारका ध्यान आकृष्ट होनेका प्रयत्न हमेशा ही होता रहा है; परन्तु उसका कुछ निश्चित प्रतिफल देखनेमें नहीं आया। यूरोपीय महासमरने आज उस आवश्यकताको हमारे सामने बिलकुल ही स्पष्ट रूपमें रख दिया है। ब्रिटेन भी आज यह अनुभव कर रहा है कि साम्राज्यके विभिन्न देशोंमें यदि जहाज बनानेके बड़े-बड़े कारखाने हों, तो यह सबके सम्मिलित लाभकी दृष्टिसे अच्छा ही है। ब्रिटेनने कनाडाको जल-सेना सम्बन्धी कितनी ही नौकाओंका आर्डर दिया है। आस्ट्रेलियाकी सरकारने जहाज बनानेके उद्योग-धन्धेको सफल बनानेके लिए आर्थिक सहायता देनेकी नीति स्वीकार की है। स्वयं ब्रिटेनने भी जहाजी कम्पनियोंको आर्थिक सहायता देनेकी नीति इसलिए

अङ्गीकार की है कि वे अपने जहाजोंको स्वयं इंगलैण्डमें बनानेमें समर्थ हो सकें। इस अवस्थामें यह उचित ही होगा कि भारत-सरकार जहाजोंके निर्माणऔर यातायातके उद्योग-धन्धेकी आर्थिक सहायता करने, उसे उचित प्रोत्साहन और संरक्षण देनेके प्रश्नपर गम्भीरतासे विचार करे। यह राष्ट्रीय महत्त्वका प्रश्न है और अधिक समय तक इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। स्वराज्यशाली भारत अपने जहाजोंके लिए दूसरे देशोंपर निर्भर होनेकी कल्पना नहीं कर सकता।

प्रत्येक भारतीयकी औसत आय

प्रत्येक भारतीयकी सालाना औसत आमदनी कितनी है—इस ओर हमेशा ही देशके राजनीतिज्ञों और अर्थ-शास्त्रियोंका ध्यान आकर्षित होता रहा है। दादाभाई नौरोजीके समयसे लगाकर इस समय तक लगभग ११ बार औसत आमदनी निकालनेका प्रयत्न किया गया है। यह औसत आमदनी सालाना २०) से लगाकर १०७) तक जांची गयी है। इस अन्तरके कई कारण हो सकते हैं। एक कारण तो लगभग ५० वर्षका समय ही है, जब विभिन्न वर्षोंमें औसत आमदनीका हिसाब लगाया गया, फिर इतने अर्सेमें आमदनीमें काफी अन्तर भी पड़ सकता है। इसके अलावा आंकड़ोंके अभाव और औसत आमदनी निकालने-वालोंकी भूलोंका भी बड़ा असर पड़ सकता है। जो हो, हालमें ही अहमदाबादके डा० वी० के० आर० वी० रावने प्रत्येक भारतीयकी सालाना औसत आमदनी १९३१-३२ के आंकड़ोंके आधारपर निकालकर बतलायी है। उनके मतानुसार यह ६२) है। इस देशमें आंकड़े पूरे नहीं मिलते। फिर, जो आंकड़े मिलते हैं, उनपर कितना भरोसा किया जा सकता है, यह भी एक प्रश्न है। उदाहरणके लिए कृषिकी उपजके आंकड़े लीजिये, जिनमें प्रायः कम उपज दिखलायी जाती है। इसी तरह इनकम टैक्सकी रकमके आधारपर भी आमदनीकी यथार्थ रकम नहीं निकाली जा सकती। फिर, यह भी सम्भव है कि डा० रावने स्वयं भी हिसाब लगानेमें आमदनीका ज्यादा अनुमान कर लिया हो। उदाहरणके लिए राष्ट्रको दूधसे कितनी आय होती है, यह निकालनेके लिए डा० रावने मान लिया है कि शहरोंमें रुपयेका ४ सेर और गांवोंमें ६॥ सेर दूध बिकता है। यह अनुमान सर्वथा ठीक नहीं है, इसीलिए यह दावा नहीं किया जा सकता कि सालाना आमदनीका जो औसत निकाला गया है वह बिलकुल ठीक है, फिर भी इस अनुमान और वास्तविक आयमें कमसे कम अन्तर रहनेकी सम्भावना है और डा० रावके मतानुसार यह अन्तर प्रतिशत ६ से ज्यादा नहीं हो सकता। जो हो, ६२) की औसत आमदनी यह बतलाती है कि स्वदेशवासी कैसी भयङ्कर गरीबीमें अपने दिन बिता रहे हैं। यह राष्ट्रके जीवन और मरणका प्रश्न है। कौन नहीं जानता कि गरीबीने हमारी जीवनी शक्तिको कम कर दिया है, देशवासियोंको सुखा डाला है और उनके सूखे हुए चेहरोंपर, निराशापूर्ण नेत्रों और शरीर ढकनेके चिथड़ोंमें उसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। ग्राम-उद्योगोंके ह्रास और शिक्षित वर्गकी बेकारीने देशकी इस गरीबीको गत २०-२५ वर्षमें और भी अधिक बढ़ा दिया है, इसमें सन्देह नहीं है। महात्माजी ग्राम-उद्योग-धन्धोंको जब नया जीवन दे रहे हैं, तब निश्चय ही देशकी गरीबी और बेकारी दूर करनेके लिए ऐसा प्रयत्न कर रहे हैं, जो कभी व्यर्थ नहीं जा सकता; परन्तु इस सम्बन्धमें सरकार क्या कर रही है? देशकी गरीबी और बेकारी दूर करनेके लिए उसने क्या कोई योजना तैयार की है? यह दुःखका विषय है कि असीम साधन होनेपर भी देशवासी गरीबी और बेकारीका असह्य कष्ट भोग रहे हैं—और प्रतिवर्ष कितने ही विवश होकर आत्मघात तक कर रहे हैं। माता अन्नपूर्णाके देशकी यह दुर्दशा!

स्थायी बन्दोबस्त प्रणालीका भविष्य

लगभग १५० वर्ष पहले बङ्गालमें लार्ड कार्नवालिसने जमीनका स्थायी बन्दोबस्त किया था; परन्तु बङ्गाल-सरकारके एक कमीशनके बहुमतकी सिफारिशोंके अनुसार यदि कभी कार्य हुआ, तो लार्ड कार्नवालिसका वह बन्दोबस्त अस्थायी साबित होने जा रहा है। कमीशनकी नियुक्ति ५ नवम्बर १९३८ को हुई थी। उसके अध्यक्ष सर फ्रान्सिस फ्लाउड थे। कमीशनके बहुमतने अपनी रिपोर्टमें सिफारिश की है कि "१७९३ ईस्वीमें स्थायी बन्दोबस्त करनेमें चाहे कुछ भी औचित्य रहा हो; परन्तु वर्तमान अवस्थाके लिए वह उपयुक्त नहीं है। जमींदारी प्रथामें इतने दोष आ गये हैं

कि राष्ट्रीय स्वार्थोंके लिए अब उसका कोई उपयोग नहीं है, अतएव स्थायी बन्दोबस्तकी वर्तमान प्रणालीके स्थानपर जमीनकी किसी ऐसी बन्दोबस्त-प्रणालीको जारी करना चाहिए, जिसमें खेत जोतनेवाले किसानका सरकारके साथ सीधा सम्बन्ध रहे।" यह रैयतवारी बन्दोबस्त-प्रणाली तभी सम्भव है, जब किसान और सरकारके बीच जमींदारी-अधिकारोंको सरकार अमान्य ठहरा दे या खरीद ले। कमीशनके बहुमतने मुनाफेसे १० गुना अधिक मूल्य देकर ये अधिकार खरीद लेनेकी सलाह दी है और अनुमान लगाया है कि इस तरह जमींदारियां खरीदनेके लिए सरकारको ७७ करोड़ ९० लाख रुपये कर्ज लेने पड़ेंगे। कमीशनके अल्पमतकी दृष्टिमें बङ्गालके किसानोंकी वर्तमान शोचनीय अवस्थाके लिए स्थायी बन्दोबस्त जिम्मेदार नहीं है। अल्पमतकी रायमें उसका कारण है—बढ़ती हुई जन-संख्याका जमीनपर भार और उत्तराधिकार सम्बन्धी हिन्दू-मुसलिम कानून, जिससे जमीन छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बंट गयी है, वर्षमें अधिक समय तक किसानोंकी बेकारी और १९२९ से इधर खेतीसे पैदा होनेवाली जिंसोंकी मन्दी। जमींदारियां खरीदनेकी योजना आर्थिक दृष्टिसे तो भयावह है ही, वास्तविक अवस्थाकी दृष्टिसे भी अवाञ्छनीय है। अल्पमतका अनुमान है कि जमींदारियोंके मुनाफेसे लगभग २२॥ लाख आदमियोंकी गुजर होती है। फिर बङ्गालमें इतनी जमीन भी तो नहीं है कि किसानोंकी कमसे कम आवश्यकताओंकी पूर्ति हो सके। बङ्गालमें एक परिवारके लिए औसतसे ५ से लगाकर ८ एकड़ तक जमीन पर्याप्त समझी जाती है; परन्तु खेतीकी सारी जमीनको यदि बांटा जाय, तो औसत ४॥ एकड़ आता है और इस समय ४१.९ प्रतिशत किसान-परिवारोंके पास कुल दो एकड़ या इससे भी कम जमीन है।

कमीशनके बहुमत और अल्पमतकी इन सम्मतियोंके बीच एक सचाई यह है कि बङ्गालके किसानोंकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय है और इसे दूर किया जाना चाहिए। कमीशनके अल्पमतके एक सदस्यकी दृष्टिमें बङ्गालके किसानोंकी अवस्था जापानके किसानोंसे अच्छी है। एक अन्य सदस्यने उनपर देशके अन्य प्रान्तोंसे लगानका बोझ कम बतलाया है। यह हो सकता है; परन्तु इससे बङ्गालके किसानोंकी समस्याका महत्त्व कम नहीं होता। यह सही है कि किसानोंकी वर्तमान अवस्थाके मुख्य कारणोंपर विचार करनेके समय उन बातोंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, जिन्हें अल्पमतने बतलाया है; परन्तु स्थायी बन्दोबस्त यदि न रहे और किसान एवं सरकारके बीचमें जमींदारी अधिकार न रह जायं, तो किसानोंका लगान कम किया जा सकता है, उनपर लगानका जो बोझ लदा हुआ है, उसे हलका किया जा सकता है। क्या इस बातको अल्पमत अस्वीकार कर सकता है? रहा २२॥ लाख आदमियोंकी गुजरका प्रश्न—यह विषय हमारी दृष्टिमें कई करोड़ जनताके हितके मुकाबलेमें ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं है, विशेषतः जब कमीशनके बहुमतने मुनाफेसे १० गुना ज्यादा मूल्य देकर जमींदारी-अधिकार खरीदनेकी सिफारिश की हो। जो हो, एक बार यह सिद्धान्त मान लिये जानेकी जरूरत है कि जमीनकी बन्दोबस्त-प्रणालीको बदला जा सकता है, यदि जमीनसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखनेवाले किसानोंका हित उसमें हो। यह सिद्धान्त निश्चित हो जानेपर इस प्रश्नको बादमें सुलझाया जा सकता है कि उसे कैसे बदला जाय, जिससे किसी वर्गके साथ अन्याय नहीं हो। लार्ड कार्नवालिसने कभी बङ्गालकी वर्तमान बन्दोबस्त-प्रणालीको स्थायी रखनेका वादा किया था, यह कोई दलील नहीं है। जमाना बदल रहा है और जमीनकी बन्दोबस्त-प्रणाली भी उसके लिए अपवाद नहीं है।

———

'विश्वमित्र' प्रेस, १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट कलकत्तासे पं० मातासेवक पाठक द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।